891·433
875

ग॰ ॥

BINDING WORKS
Chand Baori
AJMER

शरत्-साहित्य

(सोलह-सत्रहवाँ भाग)

गृह-दाह

Govt. Model Girls Sec: School
AJMER
LIBRARY
Class No. 891.433
Accession No. ग.11
Book No. 875
Date

१६
१७

अनुवादकर्त्ता

धन्यकुमार जैन

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई

पहली बार
जनवरी १९४०
मूल्य सवा रुपया

Govt. Model Girl Sec: School
AJMER
LIBRARY
Class No ....
Accession No. J ..11........
Book No ....

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६ केलेवाडी, गिरगाँव, बम्बई नं. ४

GOVT. NORMAL SCHOOL FOR WOMEN.
No.
Date
AJMER.

निवेदन

लगभग छह महीनेके बाद शरत्साहित्यके ये १६-१७ वें भाग एक साथ प्रकाशित हो रहे हैं। कई अनिवार्य कारणोंसे इसके पहले हम इन्हें प्रकाशित न कर सके।

शरत्साहित्यमें गृह-दाहका विशेष स्थान है। उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कौन है, इस विषयमें आलोचक विद्वानोंमें मत-भेद है। कोई श्रीकान्त (पहलेके तीन भागों) को, कोई चरित्रहीनको, कोई लेन-देनको और कोई गृह-दाहको सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं। परन्तु यह सभी मानते हैं कि गृह-दाह शरद् बाबूकी श्रेष्ठ रचनाओंमेंसे एक है।

मूल पुस्तकमें खण्ड या भाग नहीं हैं, इसलिए 'पथेर दावी' के समान इसे भी हम खण्डशः प्रकाशित न करके एक ही प्रकाशित कर रहे हैं। इसकी पृष्ठसंख्या भी ठीक दो भागोंके बराबर ३०० हो गई है, इसलिए पाठक भी किसी तरह घाटेमें नहीं रहेंगे।

युद्धके कारण कागज बहुत महँगा हो गया है और इससे इस सुलभ पुस्तकमालाके मार्गमें बड़ी भारी बाधा खड़ी हो गई है, फिर भी हम अच्छे कागजके एडीशनका मूल्य अभी नहीं बढ़ा रहे हैं। अच्छे कागजका भाव तो पहलेसे लगभग डयोढ़ा ही हुआ है; परन्तु न्यूज ग्लेज और रफका भाव ढाई गुनेके लगभग हो गया है। इसलिए हमने इस पुस्तकका न्यूज एडीशन निकालना उचित नहीं समझा। एक तो पड़ता ही नहीं बैठता और दूसरे अच्छे और न्यूजके भावमें इतना कम फर्क रह गया है कि उतनेसे फर्कके लिए बढ़िया कागजकी जगह हलका कागज लगानेमें कोई बुद्धिमानी भी नहीं है। आशा है, पाठक इससे असन्तुष्ट न होंगे।

—प्रकाशक

गृह-दाह

महिमका परम मित्र था सुरेश। एक साथ एम० ए० पास करनेके बाद सुरेश तो जाकर मेडिकल कालेजमें भरती हो गया; पर महिम अपने पुराने सिटी कालेजमें ही बना रहा।

इससे सुरेशके आत्म-सम्मानमें चोट-सी लगी, उसने कहा—महिम, मैं बार-बार कह रहा हूँ, बी० ए० एम० ए० पास करनेसे कोई लाभ नहीं। अब भी समय है, तुम्हें मेडिकल कालेजमें भरती हो जाना चाहिए।

महिमने हँसकर कहा—हो तो जाना चाहिए, मगर खर्चकी बात भी तो सोचना चाहिए ?

"खर्च ऐसा क्या ज़्यादा है, जो तुम नहीं उठा सकोगे ? इसके सिवा तुम्हें तो स्कालरशिप भी मिलता है।"

महिम मुसकराकर चुप रह गया।

सुरेशने अधीर होकर कहा—नहीं नहीं हँसीकी बात नहीं, महिम, अब और देर करनेसे काम न चलेगा, तुम्हें इसी दरम्यान ऐडमिशन लेना पड़ेगा, सो मैं कहे देता हूँ। खर्च-वर्चकी बात पीछे सोच ली जायगी।

महिमने कहा—अच्छी बात है।

सुरेश कहने लगा—सुनो महिम, कौन-सी तुम्हारी 'अच्छी बात' है और कौन-सी नहीं सो आज तक मैं समझनेसे रहा। लेकिन, रास्तेमें तुमसे मैं प्रतिज्ञा नहीं कर सकता, कारण मुझे कालेजको देर हो रही है। मगर, कल-परसोंके अन्दर

अन्दर जैसा भी कुछ हो, इसका एक किनारा कराये बगैर मैं न छोड़ूँगा। कल सबेरे डेरेपर रहना, मैं आऊँगा। यह कहता हुआ सुरेश तेजीसे कालेजकी तरफ चल दिया।

पन्द्रह दिन बीत गये। कहाँ रहा महिम, और कहाँ गया उसका मेडिकल कालेजमें ऐडमिशन लेना! एक दिन, रविवारको दोपहरके वक्त सुरेश बहुत ढूँढ़-खोज करनेके बाद एक दीन-हीन छात्रावासमें जा पहुँचा। सीधे ऊपर जाकर उसने देखा कि सामनेकी अँधेरी सीलवाली कोठरीमें जमीनपर फटे-पुराने कुशासन बिछाकर छै-सात जने भोजन करने बैठे हैं। महिमने मुँह उठाते ही अकस्मात् मित्रको देखकर कहा—अचानक डेरा बदलना पड़ा, इसलिए तुम्हें खबर न दे सका;—पर तुमने पता कैसे लगा लिया?

सुरेश उसकी बातका कुछ जवाब न देकर चटसे चौखटपर बैठ गया, और एकटक लड़कोंके भोजनकी तरफ देखने लगा। बहुत ही मोटे चावलोंका भात, पानी जैसी कोई एक दाल; साग, डंठल और अरुई मिलवाँ एक तरकारी और उसीके पास थोड़ी-सी कोंहड़ेकी जली-सी भुँजिया पड़ी हुई है। दही नहीं, दूध नहीं, किसी तरहकी मिठाई तक नहीं।

सबोंके साथ महिम प्रसन्न मुखसे अत्यन्त तृप्तिके साथ भोजन करने लगा। मगर उसे देख देख कर सुरेशकी आँखोंमें आँसू भर आये। वह किसी कदर मुँह फेरकर आँसू पोंछता हुआ उठके खड़ा हो गया। मामूली-सी बातपर सुरेशकी आँखोंमें आँसू भर आते थे।

भोजन कर चुकनेके बाद महिमने जब अपने बिस्तरपर सुरेशको ले जाकर बिठाया तब सुरेश रुँधे हुए स्वरमें बोला—बार-बार तुम्हारी यह ज़्यादती नहीं सह सकता, महिम!

महिमने शान्त-भावसे पूछा—इसके मानी?

सुरेशने कहा—ऐसा गंदा-भद्दा मकान भी शहरमें हो सकता है और ऐसा भद्दा खाना भी कोई आदमी खा सकता है, आँखोंसे बगैर देखे मैं इस बातपर हरगिज विश्वास न कर सकता था। खैर, जो भी हो, इस जगहको तुमने खोज कैसे निकाला? तुम्हारा पहलेका 'मेस',—चाहे वह कितना ही खराब क्यों न हो, उसके साथ इसकी तुलना ही नहीं हो सकती,—उसे भला क्यों छोड़ दिया?

निवारणकी कोशिश करेगी, ऐसा उसने नहीं सोचा था। उसने सूखे स्वरमें पूछा—यह खबर आपने महिमसे सुनी होगी, मैं समझता हूँ।

अचलाने सिर हिलाकर कहा—हाँ, उन्हींने एक दिन बताया था।

सुरेशने कहा—देखता हूँ, वह मेरे दोषकी बात कहना नहीं भूला।

अचला जरा म्लान हँसी हँसकर बोली—इसमें दोषकी क्या बात है? सब आदमियोंकी एक-सी प्रवृत्ति नहीं होती। जो लोग आप लोगोंका संसर्ग छोड़कर चले गये हैं, उनका संसर्ग अगर आपको अच्छा न लगे, तो इसमें मैं तो कोई दोषकी बात नहीं समझ सकती।

यह उत्तर यद्यपि सुरेशके मन-माफिक था, और अन्यत्र कहीं सुनता तो शायद वह उछल पड़ता, परन्तु इस संयतवादिनी तरुणी ब्राह्म-महिलाके मुँहसे ब्राह्म-समाजके प्रति उसकी अरुचिकी बात सुनकर आज उसे जरा भी खुशी नहीं हुई। वास्तवमें, इन सब दलबन्दियोंकी मीमांसा सुननेके लिए उसने यह बात कही भी नहीं थी। बल्कि प्रत्युत्तरमें अपने बारेमें वह यही जानना चाहता था कि महिमके मुँहसे उसके और किसी सद्‌गुणकी बात उनके कानोंतक पहुँची है या नहीं। मगर अचला शायद उसकी इस छिपी हुई अभिलाषाको भाँप न सकी; इसलिए प्रश्नका सीधा जवाब देकर चुप रह गई।

सुरेशने क्षुण्ण होकर कहा—आप लोगोंके प्रति मेरा सामाजिक विद्वेष है या नहीं, इसकी चर्चा महिम भले ही करे; पर उसके प्रति मेरा लेशमात्र भी विद्वेष नहीं, इस बातपर आप मेरे मुँहसे सुनकर भी अविश्वास न करें। फिर भी, शायद मैं उसका सांसारिक गार्हस्थिक प्रसंग छेड़ने यहाँ नहीं आता—अगर वह मेरे सामने उस दिन इस सत्यको अस्वीकार न करता।

अचलाने सुरेशके मुँहकी ओर स्थिर दृष्टिसे देखते हुए अविचलित स्वरमें कहा—लेकिन, वे तो कभी झूठ बोलते नहीं।

अबकी बार सुरेश वास्तवमें ही मारे आश्चर्यके हतबुद्धि-सा हो गया। स्त्रियोंके मुँहसे ऐसा शान्त और दृढ़ प्रतिवाद निकल सकता है, एक क्षणके लिए भी मानो इस बातकी कल्पना न कर सका। परन्तु वह सिर्फ एक ही क्षणके लिए। नमें उसने कभी संयम नहीं सीखा; लिहाजा दूसरे ही क्षण वह आत्म-विस्तृत कर कह उठा—मुझे माफ कीजिएगा, वह मेरा बाल्य-बन्धु है। आपसे मैं उसे म नहीं जानता। यहाँ अपनेको आबद्ध करके स्पष्ट अस्वीकार करनेको मैं सत्य-

वादिता नहीं कह सकता।

अचलाने उसी तरह शान्त मृदु-कंठसे कहा—उन्होंने तो यहाँ अपनेको आबद्ध नहीं किया।

सुरेशने कहा—आपके पिताजीने तो यही कहा है। इसके सिवा अपनी हीन अवस्थाको आप लोगोंसे छिपा लेनेको भी ठीक सत्यप्रियता नहीं कहा जा सकता। स्त्री-पुत्रादि परिवारके भरण-पोषणकी अपनी अक्षमताको औरोंसे न सही, पर, कमसे कम आपसे तो उसे प्रकट ही कर देना चाहिए था।

अचला चुप रही। सुरेश कहने लगा—आप जो इस तरहसे उसके दोष ढक रही हैं, बताइए भला, सारी बातें पहलेहीसे अगर मालूम हो जातीं तो क्या आप उसे इतना प्रश्रय दे सकती थीं?

अचला पूर्ववत चुपचाप बैठी रही। उसकी तरफसे किसी प्रकारका जवाब न पाकर सुरेश और भी ज्यादा उत्तेजित होकर कहने लगा—मेरे सामने उसने अपने मुँहसे स्वीकार किया है कि इस कलकत्ता शहरमें आपको प्रतिपालन करनेका न तो उसमें सामर्थ्य है और न संकल्प। अपने उस छोटेसे संकीर्ण गाँवमें एक अत्यन्त विरुद्ध हिन्दू समाजके बीचमें वह जिस निर्धन मिट्टीके घरमें आपको खींचके ले जाना चाहता है, उस बातको क्या अपसे कहना उसका कर्तव्य न था? इतना कष्ट आप सहनेके लिए तयार हैं या नहीं, इस बातको आपसे पूछनेकी क्या वह आवश्यकता नहीं समझता?—यह कहकर उत्तरके लिए उसने आँखें उठाकर देखा। अचला चिन्तित होकर नीचेको सिर झुकाये स्थिर भावसे बैठी रही। जवाब न पानेपर भी सुरेशने समझ लिया कि उसकी बातें काम कर गई हैं। बोला—देखिए, आपसे अब मैं सच बात ही कहूँगा। आज मैं सिर्फ अपने मित्रको बचानेका संकल्प करके ही आया था,—मेरा सिर्फ यही उद्देश्य था कि वह आफतमें न पड़े। मगर, अब देखता हूँ कि उसे बचानेकी अपेक्षा आपको बचाना मेरा और भी ज्यादा कर्तव्य हो गया है। कारण, उसकी विपत्ति इच्छाकृत है, परन्तु आप कूद रही हैं अन्धकारमें। अभी हाल ही आपके पिता मुझहीको सबूत देनेका भार दे गये हैं,—तब सोचा था कि मित्रके विरुद्ध इस भारको मैं ग्रहण न करूँगा, पर अब देख रहा हूँ कि यह काम मुझे करना ही पड़ेगा,—न करनेसे अन्याय होगा।

अचलाने कहा—परन्तु, वे सुनेंगे तो क्या दुःखित न होंगे?

मित्रके स्नेहने मित्रके हृदयको चोट पहुँचाई। महिम अपनी निर्विकार गम्भीरताको कायम न रख सका। आर्द्रकंठसे बोला—सुरेश, तुमने मेरा गाँवका घर नहीं देखा; देखते तो समझ जाते कि इस मेसमें मुझे जरा भी तकलीफ नहीं हो सकती। और खाने-पीनेकी कहते हो, सो और पाँच भले घरके लड़के जिसे मजेसे खाते हैं, उसे मैं क्यों नहीं खा सकता ?

सुरेश उत्तेजित हो उठा, बोला—यह 'क्यों' की बात नहीं। अच्छी-बुरी चीजें तो दुनियामें हैं ही। पर अच्छी अच्छी ही है और बुरी बुरी ही, इसमें तो कोई शक है नहीं। मैं सिर्फ इतना जानना चाहता हूँ कि तुम्हें इतना दुःख भोगनेकी जरूरत क्या आ पड़ी ?

महिम चुप रह गया और मन्द मन्द मुसकराने लगा, कुछ बोला नहीं।

सुरेशने कहा—तुम्हारी जरूरत तुम्हारे ही पास रहे, मैं नहीं जानना चाहता। लेकिन, मुझे जरूरत है तुम्हें उद्धार कर ले जानेकी। मैं गाड़ी मँगवाकर अभी तुरत तुम्हारी चीज-वस्त सब लदवाकर अपने घर लिये जाता हूँ। अगर यहाँ मैं तुम्हें छोड़ जाऊँगी तो मेरी आँखोंमें नींद नहीं आयेगी, मुँहमें अन्न नहीं जायगा। तुम अपने मेसके नौकरको बुलाओ,—एक गाड़ी ले आवे जाकर।—इतना कहकर सुरेशने महिमको खींचकर उठाया और अपने हाथसे उसके बिस्तर समेटना शुरू कर दिया।

महिमने रोकनेके लिए खींचा-तानी नहीं की; बल्कि शान्त-गम्भीर स्वरमें कहा—पागलपन न करो सुरेश ?

सुरेशने आँख उठाकर कहा—पागलपन किस बातका ? तुम नहीं जाओगे ?

" नहीं। "

" क्यों नहीं जाओगे ? मैं क्या तुम्हारा कोई नहीं ? मेरे घर जानेमें क्या तुम्हारा अपमान होगा ? "

" नहीं। "

" तो ? "

महिमने कहा—सुरेश, तुम मेरे मित्र हो। ऐसा मित्र मेरा और कोई नहीं। और संसारमें ऐसे मित्र और कितनोंके हैं, सो भी मैं नहीं जानता। इतने दिनों बाद इस चीजको मैं जरा-सी देरके आरामके लिए खो दूँ,—मुझे क्या तुमने इतना बड़ा बेवकूफ समझ रखा है ?

सुरेशने कहा—मित्रता चीज तो तुम्हारी अकेलेकी नहीं है महिम, मेरा भी उसमें एक हिस्सा है। अगर वह खो जाय, तो वह कितना बड़ा नुकसान होगा, इतना समझनेकी ताकत भी मुझमें नहीं हो,—मैं क्या इतना बड़ा मूर्ख हूँ? और, इतनी ज्यादा सतर्क-सावधानी न रखनेसे, इतना ज्यादा हिसाब लगाकर न चलनेसे अगर वह नष्ट हो जाती हो, तो हो जाने दो महिम। ऐसी उसकी क्या कीमत है जिसके लिए शरीरके आरामकी उपेक्षा की जाय?

महिमने हँसते हुए कहा—नहीं नहीं, अबकी मैं हार गया। पर एक बात मैं तुमसे निश्चित कहे देता हूँ सुरेश। तुम समझते हो कि मैं शौकसे दुःख सहनेके लिए यहाँ आया हूँ, मगर यह सच नहीं।

सुरेशने कहा—अच्छा, सच न सही। मैं कारण जानना भी नहीं चाहता, लेकिन, रुपया बचाना ही अगर तुम्हारा उद्देश्य हो तो हमारे घर चलकर रहो न। इसमें तुम्हारा उद्देश मट्टी न हो जायगा।

महिमने गरदन हिलाकर संक्षेपमें उत्तर दिया—अभी रहने दो सुरेश, सचमुच अगर तकलीफ होगी, तो तुम्हें कह दूँगा।

सुरेश जानता था कि महिमको उसके संकल्पसे चिगाना असाध्य है। वह फिर जिद न करके एक तरहसे गुस्सा होकर ही चला गया। मगर मित्रके इस तरह रहने और खानेकी व्यवस्था अपनी आँखोंसे देखकर उसके मनमें यह बात काँटे-सी चुभने लगी।

सुरेश धनवानकी सन्तान है, और महिमको वह निष्कपट मनसे चाहता है उसके हृदयकी आकांक्षा है कि किसी भी तरह मित्रके वह किसी काममें आवे। परन्तु महिमको वह आज तक कभी किसी दिन सहायता स्वीकार करनेके लिए राजी नहीं करा सका, और न आज ही करा सका।

२

पाँचेक साल बाद दोनों मित्रोंमें इस तरह बातचीत हो रही थी—

सुरेश—तुमपर मेरी कितनी अधिक श्रद्धा थी महिम, सो मैं कह नहीं सकता।

महिम—कहनेके लिए मैं तुम्हें परेशान भी तो नहीं कर रहा सुरेश।

सुरेश—वह श्रद्धा अब रहती नहीं मालूम होती।

महिम—न रहनेपर मैं तुम्हें दण्ड दूँगा, ऐसा डर तो मैंने कभी नहीं दिखाया

सुरेश—तुमपर कपटताका दोष तो तुम्हारा बड़ेसे बड़ा शत्रु भी नहीं लगा सकता था।

महिम—शत्रु जो काम नहीं कर सकता, उसे मित्र भी न कर सके, दर्शन-शास्त्रका ऐसा तो कोई अनुशासन है नहीं।

सुरेश—छिः छिः, अन्तमें जाकर तुम एक ब्राह्म-लड़कीको पकड़ाई दे गये? क्या है उसमें? सूखा-सा लकड़ी-नुमा चेहरा, किताबें रटते रटते शरीरमें खूनकी एक बूँद तक बाकी नहीं, धक्का देनेसे आधी देह टूटकर गिर पड़नेका डर-सा लगा रहता है,—गलेका स्वर तक ऐसा चीं-चीं करता है कि सुननेसे घृणा होती है।

महिम—सो, सच हो सकता है।

सुरेश—देखो महिम, मजाक करो अपने उन गँवई-गाँवके लोगोंसे जिन्होंने ब्राह्म लड़कियोंको कभी आँखसे नहीं देखा,—जो लोग 'औरतें अँग्रेजीमें पता-ठिकाना लिख लेती हैं' सुनकर दंग रह जाते हैं और उनके आ पहुँचनेपर इज्जतके साथ दूर खड़े हो जाते हैं। आश्चर्यसे चकित उन गाँवके आदमियोंको जाकर करो जो ऐसोंको देव-देवी समझकर जमीनसे सिर लगा देंगे। मगर हमारा घर तो देहात नहीं, हम लोगोंको इतनी आसानीसे तुम भुलावेमें नहीं डाल सकते।

महिम—मैं तुमसे सौगंध खाकर कहता हूँ सुरेश, तुम्हारे शहरवालोंको भुलावा देनेका मेरा जरा भी खोटा इरादा नहीं। मैं उन्हें अपने गँवई-गाँवोंमें ही ले जाकर रखूँगा। इसमें तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं?

सुरेश गुस्सेमें आकर कहने लगा—आपत्ति नहीं? सैकड़ों, हजारों, लाखों, करोड़ों आपत्तियाँ हैं। तुम समस्त जगत्के वरणीय, पूजनीय हिन्दूकी सन्तान होकर क्या एक स्त्रीके मोहमें पड़कर अपनी जाति नष्ट कर दोगे? यह मोह है! एक बार उसके जूते-मोजे और शौकीनी पोशाक छुड़ाकर हम लोगोंकी गृह-लक्ष्मियोंकी रंगीन साड़ी पहनाकर देखो, वह मोह दूर होता है या नहीं! तब उस निर्जीव कठपुतलीका रूप देखकर तुम्हारा भ्रम दूर होता है या नहीं! क्या है उसमें? क्या कर सकती है वह? मान लिया कि तुम्हें सिलाई और ऊनके कामकी ही बहुत ज़्यादा जरूरत है, तो, कलकत्ता जैसे शहरमें दरजियोंकी कोई कमी नहीं। एक चिट्ठीका पता लिखानेके लिए तो तुम्हें किसी ब्राह्म लड़कीकी शरण लेनेकी

जरूरत नहीं। तुम्हारे बुरे दिनोंमें क्या वह मसाला पीसकर, साग-तरकारी बनाकर तुम्हें रसोई बनाके खिला सकती है? बीमारीमें क्या वह तुम्हारी सेवा-टहलकर सकती है? ऐसी शिक्षा क्या उन लोगोंको दी गई है? भगवान न करें कि वे, दिन आयें, पर, बुरे दिनोंमें वह अगर तुम्हें छोड़के न चली जाय तो मेरा नाम सुरेशके बदले जो चाहो सो रख देना, मैं दुःखित न होऊँगा।

महिम चुप हो रहा। सुरेश फिर कहने लगा—महिम, तुम तो जानते हो, मैं हितके सिवा भूलकर भी कभी तुम्हारा अहित नहीं चाह सकता। मैंने बहुत-सी ब्राह्म महिलाएँ देखी हैं। दो-एक अच्छी भी न देखी हों सो बात नहीं; पर हमारे हिन्दू-घरानेकी लड़कियोंसे उनकी तुलना ही नहीं हो सकती। अगर तुम ब्याह ही करना चाहते थे तो मुझसे क्यों नहीं कहा? अच्छा खैर, जो होना था सो हो गया; अब तुम्हें वहाँ जानेकी जरूरत नहीं। मैं तुम्हें वचन देता हूँ, एक महीनेके अन्दर मैं तुम्हें ऐसी लड़की चुन दूँगा कि जीवनमें कभी दुःख नहीं उठाना पड़ेगा। अगर न दे सका, तो फिर तुम जैसा जीमें आवे करना;—इसीके श्रीचरणोंमें सर मुड़ा लेना, मैं तुम्हें रोकूँगा नहीं। मगर, महीने-भरको तुम्हें धीरज धरकर हमारी बचपनकी मित्रताकी इज्जत रखनी ही पड़ेगी। बोलो, रखोगे?

महिम पहलेकी तरह मौन रहा। उसने 'हाँ, ना' कुछ भी जवाब नहीं दिया। परन्तु, मित्र अपने मित्रकी शुभ-कामनाके लिए कैसे मर्मान्तिक रूपसे विचलित हुआ है, इस बातका उसने सम्पूर्णतया अनुभव किया।

सुरेशने कहा—जरा याद तो करो महिम, ब्राह्म न होनेपर भी जब तुमने ब्राह्म-मन्दिरमें जाना-आना शुरू किया था, तब मैंने क्या तुम्हें बार-बार मना नहीं किया? तुम्हारे लिए, इतने बड़े कलकत्ता शहरमें क्या एक भी हिन्दू मन्दिर नहीं था, जो तुम्हें इस तरह कपट करनेकी जरूरत हुई? मैंने तभी सन्देह किया था कि इसी तरहकी किसी न किसी विडम्बनामें तुम्हें फँसना ही पड़ेगा।

महिम अब जरा हँस दिया, बोला—माना कि किया था; पर, मैंने तो किया नहीं था कि मेरे जानेमें कोई कपट था? लेकिन एक बात तुमसे पूछता हूँ सुरेश, तुम खुद तो जब भगवान तकको नहीं मानते, तब हिन्दुओंके देवी-देवताओंको क्यों मानोगे! ऐसी दशामें मैं ब्राह्म-मन्दिरमें जाऊँ चाहे हिन्दू मन्दिरमें, इससे तुम्हारा क्या बनता बिगड़ता है?

सुरेशने दृढ़ स्वरमें कहा—जो है ही नहीं, उसे मैं नहीं मानता। भगवान् नहीं हैं, देवी-देवता भी झूठी कल्पना है! परन्तु जो हैं, उन्हें तो अस्वीकार नहीं करता। समाजपर मैं श्रद्धा करता हूँ, मनुष्यकी मैं पूजा करता हूँ, मैं जानता हूँ, मनुष्यकी सेवा करना ही मनुष्य-जन्मकी सार्थकता है। जब कि हिन्दूके घरमें पैदा हुआ हूँ, तब हिन्दू समाजकी रक्षा करना मेरा काम है। मैं प्राण निकल जानेपर भी तुम्हें ब्राह्म-घरमें ब्याह करके ब्राह्मोंके दलकी पुष्टि न करने दूँगा। केदार मुखर्जीकी लड़कीको ब्याह करनेका तुमने वचन दे दिया है?

महिम—नहीं, वचन देना जिसे कहते हैं सो अभी नहीं दिया।

सुरेश—दिया नहीं है? अच्छी बात है। तो चुप अब मारके बैठे रहो। मैं इस महीनेके अन्दर ही तुम्हारा ब्याह करा दूँगा।

महिम—मैं ब्याहके लिए पागल हो रहा हूँ, यह तुमसे किसने कहा? तुम भी चुप मारे बैठे रहो, और कहीं ब्याह करना मेरे लिए असम्भव है।

सुरेश—क्यों असम्भव है? क्या किया है? उस औरतसे प्रेम कर चुके हो?

महिम—कोई आश्चर्य नही। मगर उस भद्र महिलाके सम्बन्धमें तुम सम्मानके साथ बात करो सुरेश।

सुरेश—सम्मानके साथ बात करना मैं जानता हूँ, तुम्हें सिखाना न होगा। उस सम्भ्रान्त महिलाकी उमर कितनी है, मैं पूछ सकता हूँ?

महिम—मैं नहीं जानता।

सुरेश—नहीं जानते? बीस, पचीस, तीस, चालीस, या और भी ज्यादा,—कुछ भी नहीं जानते?

महिम—नहीं।

सुरेश—तुमसे छोटी है या बड़ी,—सो भी शायद नहीं जानते?

महिम—नहीं।

सुरेश—जब कि तुम्हें फन्देमें फँसा लिया है तो निहायत नन्हीं न होगी,—इस बातका अनुमान करना असंगत न होगा। क्या कहते हो?

महिम—नहीं, तुम्हारे लिए कुछ भी असंगत नहीं। लेकिन, मुझे जरा अभी काम है सुरेश, एक बार बाहर जाना चाहता हूँ।

सुरेशने कहा—अच्छी बात है महिम, मुझे भी अभी कोई काम नहीं,—लो, तुम्हारे ही साथ थोड़ा घूम आऊँ।

दोनों ही मित्र सड़कपर निकल आये। कुछ देर चुपचाप चलनेके बाद सुरेशने धीरेसे कहा—तुम्हें आज मैंने जान-बूझकर ही व्यथा दी है, यह बात शायद समझाकर कहनेकी जरूरत नहीं।

महिमने कहा—नहीं।

सुरेशने उसी तरह मृदु कंठसे पूछा—अच्छा, मैंने क्यों दी महिम?

महिम हँस दिया। बोला—पहली बात अगर न समझानेपर भी समझ गया होऊँ, तो आशा है इसे भी तुम्हें समझाना न होगा।

महिमका एक हाथ सुरेशके हाथमें था। सुरेशने आर्द्र चित्तसे उसके हाथको जरा मसककर कहा—नहीं महिम, मैं तुम्हें समझाना नहीं चाहता। दुनियामें और सभी मुझे गलत समझ सकते हैं, पर, तुम मुझे गलत न समझोगे। फिर भी मैं तुम्हारे मुँहपर ही कहता हूँ, मैं तुमसे जितना प्रेम करता हूँ, तुम मुझसे उससे आधा भी नहीं कर सके। मैं मानता हूँ कि तुम कुछ परवाह नहीं करते, पर, मैं तुम्हारा जरा-सा भी दुःख बरदाश्त नहीं कर सकता। बचपनमें इस बातको लेकर कितना झगड़ा हो चुका है, एक बार याद तो करो। अब, इतने दिनों बाद जिनके लिए मुझे भी त्यागे दे रहे हो, महिम, उनको लेकर भी तुम जीवनमें सुखी होगे अगर यह मैं निश्चयसे जानता, तो अपना सारा दुःख मैं हँसते-हँसते सह लेता, हरगिज एक शब्द भी न कहता।

महिमने कहा—उन्हें लेकर सुखी न भी हो सकूँ, पर यह तुमने कैसे जाना कि तुम्हें छोड़ दूँगा?

सुरेश—तुम छोड़ो या न छोड़ो, मैं तुम्हें छोड़ दूँगा।

महिम—क्यों? मैं तुम्हारा ब्राह्म मित्र भी तो हो सकता था?

सुरेश—नहीं, हरगिज नहीं। ब्राह्मोंको मैं फूटी आँखों नहीं देख सकता। मेरा ब्राह्म मित्र एक भी नहीं है।

महिम—उन्हें देख क्यों नहीं सकते?

सुरेश—बहुत-से कारण हैं। एक तो यह कि जो लोग हमारे समाजको बुरा बताकर छोड़ गये हैं उन्हें अच्छा कहकर किसी कदर भी मैं अपने पास नहीं खींच सकता। हमारे समाजको जो लोग देशमें, विदेशमें, सबके सामने हेय साबित करना चाहते हैं, उनकी भलाई उन्हींके पास रहे,—हम लोग उनके शत्रु हैं।

महिम मन ही मन असहिष्णु होता जा रहा था। बोला—अब तुम मुझे क्या करनेको कहते हो?

सुरेशने कहा—वही जो तबसे बराबर कह रहा हूँ।

महिम—अच्छा, और भी एक बार कह दो।

सुरेश—इस युवतीका मोह तुम्हें, जैसे भी बने, छोड़ना होगा। कमसे कम महीने-भर तुम उससे मिल नहीं सकोगे।

महिम—लेकिन, उससे भी अगर न छूटे? अगर मोहसे बढ़कर और भी कुछ हो?

सुरेशने कुछ देर सोचकर कहा—सो सब मैं नहीं समझता महिम। मैं समझता हूँ, तुमसे मेरा प्रेम है; और उससे भी बहुत ज्यादा प्रेम करता हूँ अपने समाजसे। पर, एक बार सोचो तो सही, अपने बचपनकी उस चेचककी बीमारीकी बात, और मुँगेरकी गंगामें नाव डूब जानेपर दोनोंके दोनों जब मर रहे थे तबकी हालत! भूली हुई कहानीकी याद दिला दी इसके लिए मुझे माफ करना महिम। अब मुझे और कुछ नहीं कहना है, मैं चल दिया।

यह कहकर सुरेश अत्यन्त अकस्मात् तेजीसे पीछेकी तरफ चल दिया।

३

एक ओर सुरेशके शरीरमें जैसा असाधारण जोर था, दूसरी ओर उसका हृदय भी उतना ही कोमल और वैसा ही स्नेहशील था। परिचित-अपरिचित किसीके भी दुःख-कष्टकी बात सुन लेता तो उसे रोना आ जाता। बचपनमें कभी मच्छड़ मक्खी तकको न मार सकता था। जैन मारवाड़ियोंकी देखादेखी वह कितने ही दिन जेबमें सूजी और चीनी भरकर, स्कूलका नागा करके, पेड़ोंके नीचे घूम घूम कर चींटियोंको खिलाया करता था। जिन्दगीमें उसने कितनी बार मांस-मछली खाना छोड़ा है और ग्रहण किया है उसकी कोई गिनती नहीं। जिससे वह प्रेम करता, उसके लिए कैसे क्या करे, उसकी कुछ समझमें नहीं आता। स्कूलमें महिम था अपनी क्लास-भरमें सबसे अच्छा लड़का, किन्तु उसके कपड़े-लत्ते फटे-पुराने, जूते फटे-टूटे, शरीर दुबला-पतला, चेहरा मुरझाया हुआ रहता था। इन्हीं सब बातोंको देखकर सुरेश उसकी तरफ आकृष्ट हुआ था, और थोड़े ही दिनोंमें दोनोंका यह आकर्षण बाढ़के पानीकी तरह ऐसा बढ़ गया कि सारे स्कूलके

लड़कोंके लिए वह एक आलोचनाका विषय हो गया। महिम छात्रवृत्तिकी परीक्षामें वजीफा पाकर सिर्फ उन्हीं चार रुपयोंके भरोसेपर कलकत्ता आया था और अपने गाँवके एक मोदीकी दूकानपर रहकर स्कूलमें भरती हुआ था। तभीसे सुरेश उसे अनेक प्रकारसे अपने मकानपर लाकर रखनेकी कोशिश करता रहा। किन्तु किसी तरह उसे राजी न कर सका। यहीं रहकर महिमने किसी दिन आधा-पेट खाकर और किसी दिन भूखे रहकर एण्ट्रेन्स पास किया। इसके बादकी घटना पहलेके परिच्छेदोंमें कही जा चुकी है।

उस दिनसे एक सप्ताह हो गया, सुरेशकी महिमसे मुलाकात नहीं हुई; इससे वह उसके बासेपर जा पहुँचा। आज किसी पर्वके उपलक्षमें स्कूल-कालेजोंकी छुट्टी थी। बासेपर जाकर उसने सुना कि महिम सबेरेसे कहीं बाहर गया है, अभी तक वापस नहीं आया। वह अवश्य ही पटलडाँगाके केदार मुखर्जीके घर छुट्टीका दिन बिता रहा होगा, इसमें सुरेशको जरा भी सन्देह न रहा।

जिस निर्लज्ज मित्रने उसकी बचपनसे चली आई हुई मित्रताकी सम्पूर्ण मर्यादाको एक साधारण स्त्रीके मोहमें फँसकर ठुकरा दिया और यहाँ तक कि सात दिनका भी धीरज न रख सका, दौड़ा-दौड़ा वहीं जा पहुँचा,—एक ही क्षणमें सुरेशके मनमें उसके विरुद्ध एक तरहकी विद्वेषकी आग आकस्मिक अग्न्युत्पातकी तरह जल उठी। उसने एक क्षण भी कुछ सोच-विचार न करके गाड़ीमें बैठकर सीधे पटलडाँगाकी तरफ गाड़ी हाँकनेका हुक्म दिया और मन ही मन कहना शुरू किया—अरे ओ बेहया, अरे ओ अकृतज्ञ, तू अपनी जिस जानको आज इस स्त्रीको देकर अपनेको धन्य समझ रहा है, वह जान आज रहती कहाँ? अपनी जानकी जरा भी परवाह न करके दो दो बार किसने तेरी जान बचाई थी? उसकी क्या जरा भी इज्जत नहीं रखनी चाहिए थी?

केदार मुखर्जीके मकानकी गली सुरेशको मालूम थी। मामूली दो-एक बार पूछने-ताछनेके बाद उसकी गाड़ी ठीक जगहपर पहुँच गई। गाड़ीसे उतरकर सुरेशने वहाँके नौकरसे पूछा और सीधा वह ऊपर जाकर बैठकवाले कमरेमें घुस गया।

नीचे फर्शपर बिछे हुए गद्देपर एक तकियेके सहारे बैठे हुए एक वृद्ध-से सज्जन अखबार पढ़ रहे थे; उन्होंने उसकी तरफ देखा। सुरेशने नमस्कार करके अपना परिचय दिया—मेरा नाम सुरेशचन्द्र बनर्जी है;—मैं महिमका मित्र हूँ।

वृद्धने प्रतिनमस्कार करके चश्मा उतारकर रखते हुए कहा—बैठिए।

सुरेशने बैठते हुए कहा—महिमके बासेमें जाकर मैंने सुना कि वह यहाँपर आया है; इसीसे, सोचा कि चलो इसी बहाने महाशयजीके साथ भी परिचय हो जायगा।

वृद्धने कहा—मेरा परम सौभाग्य कि आप आये। लेकिन, महिम भी इधर दस-बारह दिनसे नहीं आये। हम लोग आज सबेरे ही सोच रहे थे कि क्या जाने, वे कैसे होंगे?

सुरेशने जरा मन ही मन आश्चर्यान्वित होकर कहा—लेकिन उसके बासेके लोगोंने तो कहा कि—

वृद्धने कहा—और कहीं गये होंगे शायद। खैर, अच्छी तरह हैं, सुनकर निश्चिन्त हुआ।

रास्तेमें आते आते सुरेशने जो सब उद्धत संकल्प मन ही मन तय कर लिये थे, वृद्धके सामने वह उन्हें ठीक न रख सका। उनके शान्त मुँहकी धीर-मृदु बातोंने उसके भीतरकी गरमीको बहुत कुछ शान्त कर दिया।

फिर भी वह अपने कर्तव्यको भूला नहीं। वह मन ही मन अपनेको यह कह-कर उत्तेजित करने लगा कि ये चाहे कितने भी अच्छे क्यों न हों, आखिर हैं तो ब्राह्म ही। लिहाजा इनका साराका सारा शिष्टाचार कृत्रिम है। ये लोग इसी तरह बेवकूफोंको भुलावा देकर अपना काम बना लिया करते हैं। इसलिए इन सब शिकारी जीवोंके सामने किसी भी कदर अपनेको भूलनेसे काम न चलेगा। जैसे भी बने, इनके ग्राससे अपने मित्रको बचाना ही होगा।

उसने कामकी बात छेड़ दी। बोला—महिम मेरा बचपनका मित्र है। अगर आज्ञा दें तो उसके सम्बन्धमें आपसे दो एक बात करूँ?

वृद्धने जरा हँसकर कहा—बड़ी खुशीसे कर सकते हैं। मैंने आपका नाम उनके मुँहसे भी सुना है।

सुरेशने कहा—महिमके साथ आपकी कन्याका विवाह क्या तय हो चुका है?

वृद्धने कहा—हाँ, सो एक तरहसे तय ही समझिए।

सुरेशने कहा—मगर महिम तो आपके ब्राह्म समाजमें शामिल नहीं है, फिर भी आप विवाह कर देंगे?

वृद्ध चुप रहे। सुरेश कहने लगा—अच्छा, उस बातको अभी रहने दीजिए।

लेकि ... की कैसी आर्थिक अवस्था है, स्त्री-पुत्रादिके भरण-पोषणकी यो ... हीं, गँवई-गाँवके विरुद्ध हिन्दू-समाजके बीच टूट-फूटे मिट्टी ... म ... । कन्या रह सकेगी या नहीं, न रह सकनेपर महिम क्या उपाय करेगा,—ये सब बातें आपने सोच देखी हैं क्या ?

वृद्ध केदार बाबू एक बार सीधे सतर होकर बैठ गये। बोले—नहीं तो सब बातें तो मैंने नहीं सुनीं। महिमने भी किसी दिन ये सब ... नहीं बताईं।

सुरेशने कहा—मगर मैंने ये सब बातें सोच देखी हैं, महिमसे भी कहीं हैं, और आज ये सब अप्रिय प्रसंग छेड़नेके लिए ही आपके पास उपस्थित हुआ हूँ। अपनी कन्याके विषयमें आप सोच देखिएगा; पर मेरे परम मित्र इस भारी जिम्मेवारीको सिरपर लादे जीवन-भर उसके असह्य बोझसे जीवन्मृत बने रहें, ऐसी बात मैं हरगिज नहीं होने दे सकता।

केदार बाबूका चेहरा फक पड़ गया, बोले—आप कह क्या रहे हैं सुरेशबाबू ?

"बापूजी !" एक सोलह-सत्रह वर्षकी लड़की सहसा कमरेमें घुसते ही पिताके पास किसी अपरिचित युवकको देखके ठिठककर खड़ी हो गई।

"कौन, अचला ? आओ बेटी। शरम किस बातकी, ये अपने महिमके परम मित्र हैं।"

लड़कीने जरा-कुछ आगे बढ़कर दोनों हाथ उठाके सुरेशको नमस्कार किया। सुरेशने देखा, लड़की सलोनी-साँवली, छरछरे बदनकी है। कपोल, ठोड़ी, ललाट, —सारे चेहरेका डौल अत्यन्त सुन्दर और सुकुमार है। आँखोंकी दृष्टिमें एक तरहकी स्थिर-बुद्धिकी आभा है। नमस्कार करके वह पास ही बैठ गई। सुरेश उसके चेहरेकी तरफ देखकर लहमे-भरमें मुग्ध हो गया। उसके पिता कहने लगे—महिमकी बातें सुनीं बेटी ? हम लोग सोच-फिकरमें मर रहे थे कि वे आते क्यों नहीं ! इनसे सुनो, ये उनके परम मित्र ठहरे, इसीसे बताने आये हैं; नहीं तो क्या होता बताओ तो ? कौन जानता था कि वह ऐसा विश्वासघातक, ऐसा झूठ बोलनेवाला होगा ? उसके गँवई-गाँवमें सिर्फ एक टूटा-फूटा मकान है, सो भी मिट्टीका ! तुमको तो खिलायेगा ही क्या, स्वयं उसके लिए भी मोटा-झोंटा खाने-पहरनेका ठिकाना नहीं। उःफ्, कैसा भयंकर आदमी है ! ऐसे आदमीके भी मनके भीतर जहर ! ऐं !

बात सुनकर अचलाका चेहरा पीला पड़ गया; सुरेशके चेहरेप ... आपको किसने स्याही पोत दी। वह निर्वाक् काठके पुतलेकी तरह उस ... दुःखकी दृष्टि किये स्थिर बैठा रहा।

४

सुरेशको एक बार तो ऐसा लगा, जैसे उसका निष्ठुर सत्य सीधा जाकर अचलाके हृदयमें गहराईतक चुभ गया है। परन्तु पिताने इधर जरा भी नहीं देखा। बल्कि वे उलटे लड़कीको सुना-सुनाकर कहने लगे—सुरेश बाबू, आप जो वास्तविक मित्रका कर्तव्य पालने आये हैं, इस बातपर हम लोग भूलकर भी अविश्वास न करें। होने दो अप्रिय, होने दो कठोर, मगर फिर भी यही तो सच्चा प्रेम है। मा जब अपने बीमार बच्चेको अन्नसे वंचित रखती है तब वह क्या उसे कठोर नहीं मालूम होता? परन्तु फिर भी तो उस कामको उसे करना ही पड़ता है। सच कहता हूँ सुरेश बाबू, महिम भी हम लोगोंके साथ इतना बड़ा अन्याय कर सकते हैं, यह बात मैंने स्वप्नमें भी नहीं सोची थी। करीब दो साल पहले 'समाज' में जब उनकी बातों और सलूकपर मुग्ध होकर मैं खुद ही उन्हें सम्मानके साथ अपने घर बुला लाया था और अचलाके साथ जान-पहचान करा दी थी, तब क्या जानता था कि वह इस तरह उसका बदला चुकायेगा! उःफ्, इतनी बड़ी धोखेबाजी मैंने अपने जीवनमें नहीं देखी!—यह कहते कहते केदार बाबू अपने भीतरके आवेगके मारे उठके खड़े हो गये और इधरसे उधर टहलने लगे।

सुरेश और अचला दोनोंके दोनों चुपचाप सिर झुकाये बैठे रहे। केदार बाबू सहसा एकदम ठिठकके खड़े हो गये और लड़कीके लिए कह उठे—नहीं बेटी, यह नहीं होनेका। हरगिज नहीं। सुरेश बाबू, आप जिस तरह कर्तव्यको सबसे ऊँचा स्थान देकर मित्रताका काम करने आये हैं, मैं भी उसी तरह उस कर्तव्यको ही सामने रखकर पिताका फर्ज अदा करूँगा। अचलाके साथ महिमका सम्बन्ध जहाँ तक आगे बढ़ चुका है, उसके देखते अगर मैं बिना किसी प्रमाणके अपने घरका दरवाजा उसके मुँहके सामने बन्द कर दूँ, तो ठीक न होगा। इसलिए इस बातका एक सबूत जरूर चाहिए। आप यह न खयाल कीजिएगा सुरेश बाबू, कि आपकी बातपर हम विश्वास नहीं कर सके; पर यह

कि- लिए एक कर्तव्य है। क्यों बेटी अचला, एक सबूत हम लोगोंको रखना चा- या नहीं ?

दो ही उसी तरह चुप बैठे रहे, उचित-अनुचित किसी भी तरहकी किसीने राय जाहिर नहीं की। केदार बाबू क्षण-भर प्रतीक्षा करके फिर कहने लगे—मगर इसके प्रमाणका भार आपहीके ऊपर रहा सुरेश बाबू, महिमकी गार्हस्थिक अवस्था जानना तो दूर रहा, कहाँ किस गाँवमें उसका घर है, सो भी हम लोग नहीं जानते।

नौकरने आकर कहा—नीचे विकास बाबू बैठे हैं।

समाचार सुनकर केदार बाबूका मिजाज खुश्क हो गया। बोले—आज तो उनके आनेकी बात नहीं थी। अच्छा, कह दो, मैं आ रहा हूँ।—फिर सुरेशकी तरफ मुँहकर कहने लगे—सुरेश बाबू, मुझे पाँचेक मिनटके लिए माफ कीजिएगा,—जरा उसे बिदा कर आऊँ। जब कि आ ही गया है, तो बगैर मुलाकात किये तो टलनेका नहीं। बेटी अचला, सुरेश बाबूको अपना परम मित्र समझना। जो कुछ तुम्हें मालूम करना हो इनसे कर लेना,—मैं अभी आया। इतना कहकर वे नीचे चले गये।

तब, एक क्षणके लिए दोनोंकी चार आँखें होते ही दोनोंने सिर झुका लिया। सुरेश कुछ देरतक चुप रहनेके बाद धीरेसे बोला—हम दोनों बचपनके मित्र हैं। मगर उसके व्यवहारसे आप लोगोंके आगे मारे शरमके मेरा सर नीचा हो जाता है।

अचलाने मृदु स्वरसे कहा—उनके लिए आपको कोई लज्जित होनेकी वजह नहीं।

सुरेशने कहा—आप कहती क्या हैं! उसके इस तरहके कपट-आचरण और पाखंडीके जैसे सलूकसे मैं मित्र होकर भी लज्जित न होऊँ, तो और कौन होगा बताइए? असलमें मुझे तो उसी वक्त समझ लेना चाहिए था कि जब वह मुझहीसे शुरूसे लेकर अब तक सब छिपाता चला जा रहा है तब जरूर भीतर ही भीतर कहीं न कहीं वह कोई बड़ी-सी गलती कर रहा है।

अचला बोली—हम ब्राह्मसमाजी हैं। परन्तु, आप इस समाजके किसी आदमीके सम्पर्कमें रहना नहीं चाहते, शायद इसीसे उन्होंने आपसे यह बात नहीं छेड़ी।

बात सुरेशको अच्छी नहीं लगी। अचला उसीके मुँहपर महिमके दोष

सुरेशने कहा—कोई उपाय नहीं। जिस आदमीने पाखंडीकी तरह आपको इतना बड़ा धोखा दिया है, मित्र होनेपर भी उसके सुख-दुःखकी चिन्ता करनेकी मैं आवश्यकता नहीं समझता। मगर आफत तो यह है कि मैं उसके गाँवका नाम तक नहीं जानता। किसी भी तरह आज अगर मुझे मालूम हो जाय, तो कल सबेरे ही मैं खुद जाकर वहाँ पहुँच जाऊँ, और सब प्रमाणोंको खींच लाकर आपके पिताजीके सामने रखके मित्रके पापका प्रायश्चित्त करूँ।

अचलाने कहा—मगर आप क्यों इतना कष्ट करेंगे? पिताजीसे कह दीजिए न, वे अपने विश्वासी आदमीसे सब बातें जान लेंगे। चौबीस परगनेका राजपुर गाँव तो ज्यादा दूर नहीं।

सुरेश आश्चर्य-चकित होकर बोला—राजपुर! तो मालूम होता है गाँवका नाम आप जानती हैं। और कुछ जानती हैं?

अचलाने स्वाभाविक ढंगसे जवाब दिया—आपने जो कुछ कहा, मैं भी बस उतना ही जानती हूँ। राजपुरके उत्तरपाड़ामें एक मिट्टीका मकान है। भीतरकी तरफ तीन घर हैं, बाहर चण्डीमण्डप है जिसमें गाँवकी पाठशाला है।

सुरेशने पूछा—महिमकी घरकी हालत?

अचलाने कहा—इस विषयमें भी आपने जो बताया, वही है। मामूली-सी कुछ सम्पत्ति है, उससे किसी कदर दुःख-कष्टसे खाने-पहरनेकी गुजर चल जाती है।

सुरेशने कहा—तब तो देखता हूँ, आपको सब कुछ मालूम है।

अचलाने कहा—इतना ही जानती हूँ; कारण इतना ही मैंने उनसे एक दिन पूछा था। और आप तो जानते ही हैं, वे कभी झूठ नहीं बोलते।

सुरेशका चेहरा स्याह पड़ गया, बोला—जब आप सब-कुछ जानती हैं, तो आप लोगोंको सावधान करने आना मेरे लिए बिलकुल ही फिजूल हुआ। देखता हूँ, आपको उसने धोखा नहीं देना चाहा।

अचलाने कहा—मैं कुछ कुछ जानती जरूर हूँ, मगर आप तो मुझे जताने नहीं आये,—आप जिनको जताने आये थे वे अभी तक कुछ भी नहीं जानते। हाँ, अगर आप कहें, तो मैं जितना जानती हूँ, पिताजीको जता सकती हूँ।

सुरेशने उदास स्वरमें कहा—आपकी इच्छा। लेकिन, मुझे जाकर महिमसे बातें कहके इसके लिए क्षमा माँगनी पड़ेगी। तब ही मैं निश्चिन्त हो सकूँगा।

अचलाने कहा—इसकी क्या कोई जरूरत है ?

सुरेश फिर उत्तेजित हो उठा। बोला—जरूरत नहीं ? बिना जाने-सुने आज उसपर जो कुछ दोषारोप किये हैं, यह मेरा कितना बड़ा अपराध है, आपने क्या मन ही मन इस बातको नहीं समझा ? उसे पाखंडी, झूठा,—कुछ भी कहना तो बाकी नहीं रक्खा। ये सब बातें उसके सामने मंजूर किये बगैर मैं कैसे छुटकारा पा सकता हूँ ?

अचला कुछ देर तक चुपचाप बैठी रहनेके बाद धीरेसे बोली—बल्कि मैं तो कहती हूँ, इन बातोंकी कुछ भी जरूरत नहीं है सुरेश बाबू ! यह मैं नहीं मानती, कि मन ही मन क्षमा चाहनेकी अपेक्षा प्रकट रूपसे क्षमा माँगना ही हर हालतमें सबसे बड़ी बात है। जब कि वे सुननेसे ही दुःखित होंगे, तो जरूरत क्या उन्हें सुनानेकी ? मैं बापूजीसे भी बल्कि मना कर दूँगी कि आपकी बात वे उनसे न कहें।

सुरेशने कहा—अच्छा।—फिर अचलाके मुँहकी तरफ कुछ देर तक चुपचाप देखते रहकर कहा—मैंने एक बातपर बराबर लक्ष्य किया है कि महिमको किसी भी कारणसे जरा भी व्यथा न पहुँचे, इस बातकी आप बराबर कोशिश कर रही हैं। अच्छी बात है, यही सही, मैं उससे कोई भी बात न कहूँगा। आज उसके विषयमें मेरे मनमें जितनी बातें उठ रही हैं, उन्हें भी नहीं कहना चाहता; मगर आपसे एक बात बगैर कहे मुझसे किसी भी तरह बिदा नहीं हुआ जाता।

अचलाने अपनी स्निग्ध आँखें उठाते हुए कहा—अच्छी बात है, कहिए।

सुरेशने कहा—उससे क्षमा नहीं माँग सका, पर आपसे क्षमा चाहता हूँ, आप माफ कीजिएगा।—कहकर सहसा उसने दोनों हाथ जोड़ लिये।

छि छि, यह क्या करते हैं!—कहकर अचलाने पलक मारते ही सहसा सुरेशके दोनों हाथ पकड़ लिए और उसी वक्त उन्हें छोड़कर कहा—यह कैसा अन्याय है, बताइए तो ?—कहते कहते उसका तमाम चेहरा मारे शरमके सुर्ख हो उठा।

सुरेशका सारा शरीर रोमांचित हो उठा। इस आश्चर्यजनक स्पर्श और इस सलज्ज मुखकी अपूर्व रक्तिम दीप्तिने पल-भरमें उसे एकबारगी अवश कर डाला। वह अचलाके अवनत मुँहकी ओर कुछ देर तक स्तब्ध भावसे देखता रहा, और अन्तमें धीरेसे बोला—नहीं, मैंने कोई अन्याय नहीं किया। बल्कि मेरे करोड़ों अन्यायोंमेंसे अगर कोई ठीक काम हुआ है, तो वह यही है। आपके क्षमा करनेसे ही मेरे मनका सारा क्षोभ धुल-पुछ जायगा।

अचलाने व्याकुल होकर कहा—आप ऐसी बात न कहिए। जिनको आपने दो दो बार मौतके हाथसे बचाया है—

"यह भी सुन चुकी हैं?"

"हाँ। आपके समान मित्र उनका और है कौन?"

"नहीं, शायद आपके सिवा और कोई नहीं है। और उस हिस्सेमें हम दोनों—"

अचलाके चेहरेपर फिर जरा रंगीन आभा दिखाई दे गई। उसने कहा—हाँ बन्धु, आप उन्हें मौतके रास्तेसे लौटा लाये हैं। इसीसे उनके सम्बन्धमें आपके किसी भी कामको मैं अन्याय नहीं समझ सकती। मनके अन्दर किसी तरहका क्षोभ,—किसी तरहकी लज्जा आप न रखिएगा,—क्षमा शब्द उच्चारण करनेसे ही अगर आपको तृप्ति मालूम हो, तो मैं वह भी कहनेके लिए राजी थी अगर वह मेरे मुँहसे निकलनेमें अटकता नहीं।

अच्छा, जरूरत नहीं।—कहकर सुरेश उठके खड़ा हो गया, और बोला—आपके पिताजीके साथ भेंट न हो सकी, शायद वे व्यस्त होंगे। महिमके साथ शायद किसी रोज आ भी सकता हूँ। नमस्कार।

अचलाने जरा मुसकराकर कहा—नमस्कार। लेकिन उनके साथ ही आना होगा, इसके तो कोई मानी नहीं।

"सच कह रही हैं?"

"सच ही कहती हूँ।"

"मेरा परम सौभाग्य!" कहकर सुरेशने फिर एक बार नमस्कार किया और वह चल दिया।

५

बाहर आकर मानो नशेकी तरह उसका सारा शरीर और मन डगमगाने लगा। आकाशकी तेज धूप तब निस्तेज हो चुकी थी। गाड़ी वापस करके वह अकेला पैदल ही चल दिया। उसके मनमें आया कि कलकत्तेकी जनाकीर्ण कोलाहलमय सड़कोंमें अपनेको वह बिलकुल मग्न करके अपनी अवस्थाको एक बार अच्छी तरह सोच ले।

अचलाका चेहरा, उसके अवयव, भाषा, व्यवहार,—सब-कुछ शुरूसे आखिर

तक बार बार उसे याद आने लगा, और वह अपनेको मानो उससे कुछ छोटा-अनुभव करने लगा।

उस चेहरेके सौन्दर्यमें कोई अलौकिकत्व नहीं था; बातचीत, व्यवहार, ज्ञान और विद्या-बुद्धिमें कहीं कुछ अपूर्वता भी नहीं मालूम हुई; मगर फिर भी न न जाने क्यों उसे बार बार यही खयाल होने लगा कि ऐसी एक आश्चर्यजनक चीज वह देख आया है जो अब तक कहीं भी उसके देखनेमें नहीं आई। रास्तेमें चलते चलते अपने आपसे वह हर दम यही प्रश्न करने लगा कि यह आश्चर्य किस बातके लिए? किस चीजने उसे आज इस तरह इतना ज्यादा अभिभूत कर दिया?

इस तरुणीमें उसे आज ऐसी कोई चीज दिखाई दी है जिससे अपनेको आपमें लीन समझते हुए भी उसका सम्पूर्ण हृदय किसी एक अज्ञात सार्थकतासे भर गया है। यह ठीक है कि इस लड़कीका सचमुचका कोई परिचय उसके भाग्यमें अभी तक नहीं जुटा, मगर फिर भी यह संशय एक बार भी उसके मनमें क्यों नहीं उठा कि वह बड़ी है, बहुत बड़ी है,—उसे प्राप्त करना किसी भी पुरुषके लिए दुर्भाग्य नहीं कहा जा सकता? सोचते सोचते सहसा एक समय उसकी चिन्ताकी धारा ठीक जगहपर चोट कर बैठी। उसे मालूम हुआ कि यह लड़की शिक्षामें, ज्ञानमें, उमरमें,—सम्भव है सभी विषयोंमें उसकी अपेक्षा छोटी है, फिर भी इसने इन कुछ ही क्षणोंकी बातचीतमें उसे जो इस कदर पराजित कर दिया, सो सिर्फ अपने असाधारण संयमके बलपर ही। इसीलिए वह इतनी शान्त होकर भी इतनी दृढ़, इतना जानकर भी इतनी नीरव है। महिमके विषयमें जब कि वह खुद प्रगल्भकी भाँति लगातार बकता चला गया है, तब इस लड़कीने चुपचाप नीचेको निगाह किये सुना है, सहा है परन्तु एक क्षणके लिए भी चंचल होकर, बहस करके, कलह करके, अपनेको छोटा नहीं किया। बराबर अपनेको दमन किया है, छिपाया है, जब कि कुछ भी उससे छिपा नहीं था। माना कि यह बात उसने जानने नहीं दी कि महिमको वह कितना ज्यादा चाहती है, परन्तु यह बात उसने कितने सहज और संक्षेपमें जता दी! उसकी अविचलित श्रद्धाको जो किसी भी कदर रंचमात्र भी धक्का नहीं पहुँचा।

यह विद्या उसने महिमसे ही सीखी है और अच्छी तरह सीख ली है, यह बात वह कितनी ही मरतबा अपने आपसे कहने लगा। और खुद उसके अन्दर

AJMER LIBRARY ... 21 11 ... Book No ...

बचपनहीसे संयम जैसी चीजका बिलकुल ही अभाव था, इसीलिए औरोंमें उस चीजका इतना आधिक्य देखकर उसका शिक्षित भद्र अन्तःकरण अपने आप ही इस गौरवमयीके चरणतले झुकाकर अपनेको धन्य मानने लगा।

* * * *

बहुतसे रास्तों और गली-कूचोंमें घूम-फिरकर,—बिलकुल थक-थकाकर सुरेश शामके बाद घर पहुँचा। बैठकके कमरेमें घुसते ही उसने आश्चर्यके साथ देखा कि महिम आँखोंपर हाथ रखे एक कोचपर पड़ा है। उसके पहुँचते ही वह उठके बैठ गया और बोला—आओ सुरेश!

अच्छा, आ गये!—कहकर सुरेश धीरेसे एक चौकी खींचकर उसके पास बैठ गया।

महिम शायद ही कभी आता है, लिहाजा उसके आनेसे सुरेशकी सानन्द अभ्यर्थना कुछ उग्र हो उठती थी। मगर आज उसके मुँहसे और कोई बात ही नहीं निकली। महिम मन ही मन आश्चर्यान्वित होकर बोला—बासेपर जाकर सुना कि तुम पहुँचे थे। इसलिए सोचा कि—

"कृपाकर एक बार सूरत दिखा आयें,—क्यों, यही बात है न? कितने दिनों बाद आये, याद कर सकते हो?"

महिम हँसकर बोला—कर सकता हूँ। लेकिन वक्त ही नहीं निकाल पाता था।—कहकर उसने गौर किया कि गैस-बत्तीके उजालेमें सुरेशका चेहरा अत्यन्त म्लान और कठोर दिखाई दे रहा है। उसे प्रसन्न करनेके अभिप्रायसे वह स्निग्ध स्वरमें फिर बोला—तुम गुस्सा हो सकते हो, यह मैं हजार बार मंजूर करता हूँ सुरेश, पर वास्तवमें मुझे समय ही नहीं मिलता। आजकल पढ़ने-लिखनेका बोझ भी जरा ज्यादा है; इसके सिवा सुबह-शाम दो एक ट्यूशनें—

फिर ट्यूशने कर लीं?

महिमने इसका ठीक जवाब न देकर पूछा—मुझे ढूँढ़ने गये थे, कोई खास जरूरत थी क्या?

सुरेशने कहा—हाँ, तुम आज न आते तो फिर कल सबेरे मुझे जाना पड़ता।

महिम कारण पूछनेके लिए जिज्ञासु मुँहसे उसकी तरफ देखता रहा। सुरेश बहुत देर तक चुपचाप उसके जूतोंकी तरफ देखता रहा, फिर बोला—इधर कई दिनोंसे शायद तुम केदार बाबूके घर नहीं गये?

महिमने कहा—नहीं।

"क्यों नहीं गये, मेरी ही वजहसे न? आज तुम्हें उस वचनसे मैं छुटकारा देता हूँ। अपनी इच्छानुसार तुम वहाँ जा-आ सकते हो।"

महिम हँस दिया; बोला—जाऊँगा नहीं, ऐसी प्रतिज्ञा मैंने की हो—ऐसा तो मुझे याद नहीं पड़ता।

सुरेशने कहा—नहीं पड़ता तो अच्छा ही है। फिर भी मेरी तरफ़से जानेमें अगर कोई बाधा हो, तो उसे मैं वापस लेता हूँ।

"यह अनुग्रह है या निग्रह, सुरेश?"

"तुम्हें क्या मालूम होता है, महिम?"

"हमेशासे जो मालूम होता रहा है, वही।"

सुरेशने कहा—इसके मानी यह कि मेरी यह खामखयाली है। यही तो? अच्छी बात है; तुम जो चाहो, समझ सकते हो। मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं तो सिर्फ़ अपनी उस बाधाको उठाये लेता हूँ जो मैंने दी थी।

"मगर उसका कारण पूछ सकता हूँ क्या?"

"खामखयालीका कोई कारण भी होता है जो तुम्हारे पूछनेपर मुझे बताना ही होगा?"

महिम क्षण-भर मौन रहकर गम्भीर होकर बोला—मगर सुरेश, तुम्हारे खयालके वश ही सारी दुनियामें बाधाएँ आएँ और उठ जायँ, तब तो अच्छा ही हो। लेकिन वास्तवमें ऐसा होता नहीं। तुम्हारे लिए जहाँ बाधा नहीं है, मेरे लिए वहाँ हो सकती है।"

"इसके मानी?"

"इसके मानी यह कि तुमने उस दिन ब्राह्म महिलाओंके विषयमें जो कुछ कहा था, उसपर मैंने विचार किया है। हाँ, यह तो बताओ कि उस दिन जो तुमने कहा था कि एक महीनेके भीतर मेरे लिए तुम पात्री ठीक कर दोगे, उसका क्या हुआ?"

सुरेशने मुँह उठाकर देखा कि महिम गम्भीरताकी ओटमें तीव्र परिहास कर रहा है। उसने गम्भीर होकर जवाब दिया—मैंने तो विचार कर देख लिया महिम, सगाई-ब्याह कराना मेरा रोज़गार नहीं। इसके बाद हँसकर कहा—लेकिन मज़ाक छोड़ो। इधर कई दिनोंतक तुमने जो मेरी इज्ज़त रखी, इसके

लिए तुम्हें सहस्र धन्यवाद। पर, आज जब कि मेरा हुक्म पा गये, तो कल सबेरे ही एक बार वहाँ जाओगे न ?

" नहीं, कल शामको मैं घर जा रहा हूँ।"

" कब लौटोगे ?"

" दस-पन्द्रह दिन भी लग सकते हैं, और महीने-भरकी भी देर हो सकती है।"

" महीने-भर! नहीं महिम, सो नहीं होगा।" कहकर अचानक वह महिमकी तरफ झुका और उसका दाहना हाथ अपने हाथमें लेकर बोला—अब मेरा अपराध और न बढ़ाओ महिम, कल सबेरे ही एक बार जाओ। वे शायद तुम्हारी राह देख रही होंगीं।—कहते हुए उसका स्वर काँप उठा।

महिमके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। सुरेशके इस आकस्मिक आवेग-कम्पित कंठस्वर, इस सानुनय अनुरोध और खासकर ब्राह्म-महिलाके बारेमें इस सादर उल्लेखसे वह मानो विह्वल-सा हो उठा। कुछ देर तक मित्रके मुँहकी तरफ एकटक देखता रहकर बोला—कौन मेरी राह देख रही होगी सुरेश? केदार बाबूकी लड़की?

सुरेशने सहसा अपनेको सम्हालते हुए कहा—हाँ, हो सकता है।

महिम फिर कुछ देर तक सुरेशके मुँहकी ओर देखता रहा। वह इस बीचमें बिना बुलाया ब्राह्म समाजीके घर जाकर परिचय कर आ सकता है, इसकी सम्भावना किसी भी तरह उसके मनमें न आई। कुछ देर और भी चुप रहकर बोला—नहीं सुरेश, मैं हार मानता हूँ,—तुम्हारा आजका मिजाज समझना वास्तवमें मेरी बुद्धिके परेकी बात है। ब्राह्म-लड़की बैठी राह देख रही होगी, यह बात तुम्हारे मुँहसे समझना मेरे लिए असम्भव-सा है।

सुरेशने कहा—अच्छा, यह बात और किसी दिन समझा दूँगा। अभी तुम बताओ, कल सबेरे ही एक बार मिल आओगे न ?

" नहीं, कल तो असम्भव है। मुझे सुबहकी गाड़ीसे ही घर जाना होगा।"

" कुछ मिनटोंके लिए भी नहीं जा सकते ?"

" नहीं, सो भी नहीं। मगर तुम्हें हो क्या गया है, बताओ तो ?

" सो मैं और किसी दिन बताऊँगा,—आज नहीं। अच्छा, मैं खुद जाकर तुम्हारी बात कह आ सकता हूँ क्या ?"

महिम और भी ज़्यादा आश्चर्यमें पड़कर बोला—जा सकते हो, पर उसकी तो कोई ज़रूरत नहीं।

सुरेशने कहा—न हो ज़रूरत, जरूरत ही तो सब कुछ नहीं है। अपना परिचय देनेसे वे लोग पहचान तो लेंगे ?

“ एक जनी तो जरूर ही पहचान लेंगीं। ”

सुरेशने कहा—बस इतना ही काफी है। तुम्हारा मित्र हूँ, यह कहनेसे पहचान तो लेंगी ?

महिमने कहा—हाँ।

सुरेश अब ज़रा हँसनेकी कोशिश करके बोला—और, तुम्हारे एक घोरतर ब्राह्म-विद्वेषी हिन्दू मित्रके रूपमें तो अवश्य ही पहचान लेंगी, क्यों ?

महिमने कहा—लेकिन, यही तो तुम्हारे तईं प्रधान गर्वकी बात है सुरेश !

सुरेशने कहा—सो तो है ही।—कहकर वह कुछ देर ज़मीनकी तरफ़ चुपचाप देखता रहा, फिर अचानक उठके खड़ा हो गया और बोला—आज मुझे बड़ी नींद आ रही है महिम, मैं सोने जाता हूँ।—कहकर अन्यमनस्ककी तरह वह धीरे धीरे कमरेसे बाहर निकल गया।

६

सुरेश मन ही मन बिना किसी संशयके यह अनुभव कर रहा था कि उसकी बातको महिम चाहे जैसे उड़ा दे, पर यह निश्चित है कि उसके खास अनुरोधकी उपेक्षा न कर सकनेके कारण ही वह इतने दिन अचलासे मिलने नहीं गया है। सुरेश इस बातको अगर कल भी सुनता कि महिम अचलाको चाहे जितना भी क्यों न चाहता हो, पर अब तक इतना जरूर है कि वह एक ब्राह्म-महिलाकी नजरोंमें अपने बचपनके मित्रको छोटा नहीं बना सकता, तो मारे गर्वके उसकी छाती दस हाथ फूल जाती। मगर आज, उसकी सूनी सेजपर इस चिन्ताने उसे जरा भी आनन्द नहीं दिया। उसे बार बार यही मालूम होने लगा कि किसी न किसी दिन हँसी मज़ाकमें, बातचीतके सिलसिलेमें उसकी सारी बातें विचित्र रूपमें चित्रित होकर अचलाके कान तक पहुँच ही जायँगीं। उस दिन सुखकी गोदमें बैठकर उसे अपने पतिके इस अकर्मण्य मित्रकी निष्फल ईर्ष्याका कोई तात्पर्य ही ढूँढ़े न मिलेगा। और तो क्या, हँसी मजाकके तौरपर भी वह स्वल्पभाषिणी किसी दिन कोई प्रश्न तक न करेगी। हो सकता है कि मन ही मन जरा हँसकर कहेगी कि इस आदमीने मित्रताके अति अभिमानमें न जाने कितना व्यर्थ श्रम किया है

व्यर्थके आक्रोशमें अन्तर्दाहसे यह न जाने कितना जलता-भुनता रहा है !

रातको उसे सुखकी नींद न आई। जितनी बार नींद उचटी, उतनी बार ही ये सब कड़ुई चिन्ताएँ उसे धिक्कार देती हुई बोलीं—दूसरोंके लिए ऐसी सिर-दर्दकी बीमारी तुम्हारी कब दूर होगी सुरेश ?

सबेरे उठकर वह किसी भी काममें मन न लगा सका, और दिन चढ़ते न चढ़ते वह गाड़ीमें बैठकर केदार बाबूके घर पहुँच गया। नौकरने कहा कि बाबू अलीपुर-अदालत गये हैं,—लौटनेमें तीन-चार घंटेकी देर भी हो सकती है। सुरेशने लौटनेको तैयार होकर पूछा—दोनों ही जने गये हैं क्या ?

प्रश्नको नौकर समझ न सका। गरदन हिलाकर बोला—सो तो मैं नहीं जानता बाबू !

सुरेश परेशानीमें पड़ गया। घरके मालिककी गैरहाजिरीमें उसकी युवती कन्याके विषयमें कोई बात पूछना ब्राह्म-परिवारमें भी शिष्टताके विरुद्ध है या नहीं, इस बातका वह निर्णय न कर सका; और मजा यह कि उस कन्यासे ही उसे काम है। कुछ सोच-विचारकर उसने कहा—तुम्हारे बाबूको लौटनेमें इतनी देर न भी लगे, ऐसा भी तो हो सकता है ? मैं एक-आध घंटे बैठकर उनका इन्तज़ार ही करूँ।

नौकरने सुरेशको बैठकमें ले जाकर बिठा दिया और बोला—दीदीजी घरपर हैं, उन्हें खबर दे दूँ ?—कहकर जवाबके लिए वह उसके मुँहकी ओर देखने लगा। अचला इनके सामने निकलती है, यह उसने कल ही देखा था। सुरेशने अपने मनके आग्रह-अधिक्यको जी जानसे दबाकर निस्पृह भावसे कहा—अब उन्हें खबर दोगे ? अच्छा, कह दो,—तब तक न हो तो उन्हींसे बातें करता रहूँगा।

नौकर चला गया, और थोड़ी देर बाद ही अचला बगलके दरवाजेका परदा हटाती हुई कमरेमें दाखिल हुई। सुरेश उठके खड़ा हो गया, बोला—महिम तो घर चला गया ! इतना समझाया कि आपसे एक बार भेंट कर जाय, पर उसने मेरी बात किसी तरह सुनी ही नहीं। ऐसा—

अचलाका चेहरा क्षण-भरके लिए फक पड़ गया। किन्तु, नमस्कार करके वह एक चौकीपर बैठ गई, और मृदु स्वरसे बोली—घर जाना शायद बहुत जरूरी होगा, घरपर कोई सख्त बीमार-ईमार तो नहीं है ?

अचलाको नमस्कार करते देख सुरेशने भी शरमिन्दगीके साथ प्रति-नमस्कार

किया और अपनी अनावश्यक उत्तेजनाके साथ अचलाकी शान्त-धीर बातोंका वजन करके वह सौ-गुना लज्जित और संकुचित हो उठा। फिर अपने कंठस्वरको यथासम्भव सहज और स्वाभाविक करके बोला—जरूरत कैसी भी हो, वह ऐसी क्या भयंकर हो सकती है कि कमसे कम दो मिनटके लिए भी एक बार आकर आपसे कह नहीं जा सकता था, आप ही बताइए? और जब कि इसका कोई ठीक ठिकाना नहीं कि कब तक लौटे? घरपर भी उसके है कौन जिसकी बीमारीके लिए उसे इस तरह जाना पड़े? मैं तो जान निकल जानेपर भी हरगिज इस तरह न जा सकता था।

अचलाके चेहरेपर एक सलज्ज स्निग्ध हँसी चमक गई। उसने कहा—आपकी अभी तक कोई हुई नहीं, इसीसे ऐसा कह रहे हैं; लेकिन होनेपर ठीक उन्हींकी तरह लापरवाह होकर चले जाते, यह मैं निश्चयसे कहती हूँ।

सुरेश अपनी कुरसीके हथेलेपर जोरसे एक मुक्का जमाकर बोला—हरगिज नहीं। मुझे आप जानतीं नहीं, इसीसे ऐसा कह रही हैं;—जानती होतीं तो न कहतीं।

अचलाने कहा—अच्छी बात है, आयन्दा पहचान सकूँगी,—और, कोई होगी तो जान भी जाऊँगी। क्यों, ठीक है न?

सुरेशने कहा—जरूर। सौ सौ बार। इसके सिवा, महिमकी तरह मैं मित्रसे कोई बात छिपाके भी नहीं रख सकता, और न छिपाना अच्छा ही समझता हूँ। —कहता हुआ वह सहसा उत्तेजित हो उठा, बोला—आप कहती हैं कि होनेसे जान सकेंगीं, मगर मैं कहता हूँ कि आपको बगैर जताये, आपकी बगैर राय लिये, यह सब कभी हो ही नहीं सकता; कारण, आपको महिमके साथ पृथक् करके देखनेका सामर्थ्य अब मुझमें नहीं रहा; आप लोग मेरे लिए आजसे अभिन्न हैं।

अचला सलज्ज सिर हिलाती हुई हँसी-भरे मुँहसे कहने लगी—अच्छा, सो सब तब देख लिया जायगा। परन्तु आपकी परीक्षाका शुभ दिन न आने तक मैं आपके मित्रको दोषी नहीं ठहरा सकती, सुरेश बाबू!

सुरेश सहसा गम्भीर होकर कहने लगा—यह आपकी इच्छा है। मगर मुझे जाँचनेका शुभ दिन इस जन्ममें आयेगा या नहीं, सन्देह है। खैर उसे छोड़िए, आज सबेरे ही क्यों आपके पास आया हूँ, जानती हैं? कल रातको मुझे नींद नहीं आई, रात-भर सो नहीं सका,—न आता तो आज भी नींद न आती, यह भी जानता था। मैंने अनेक अपराध किये हैं, उन सबको एक एक करके आज

आपके सामने स्वीकार करूँगा और तब मैं जाऊँगा। मैं इसीलिए आया हूँ।

उसकी प्रबल विरुद्धता अचलासे छिपी नहीं थी। इसीसे वह शंकित चेहरेसे चुपचाप बैठी उसकी तरफ देखती रही। सुरेश कहने लगा—कल शामके बाद घर जाकर देखा कि महिम बैठा है। हाँ, यह तो आप जरूर जानती होंगीं कि ब्रह्मसमाजी मुझे देखे नहीं सुहाते,—यानी मतलब यह कि ब्राह्म समाजको मैं उतना अच्छा नहीं समझता।

अचलाने गरदन हिलाकर कहा—हाँ, मुझे मालूम है।

सुरेश कहने लगा—जानेंगी क्यों नहीं। मगर इस बातको भी न भूलिएगा कि मैं तब आपको पहचानता न था। इसीसे महिमसे मैंने अनुरोध किया था कि वह कमसे कमसे कम एक महीने-भर यहाँ न आवे। क्यों, मालूम है?

अचलाने फिर सिर हिलाकर कहा—नहीं। लेकिन हाँ, शायद आपने सोचा होगा कि पुरुषोंको, किसीको भूल जानेके लिए, महीने-भर काफी समय है। इससे ज्यादा देर होना उचित नहीं।

इस चोटको सुरेशने विनीत भावसे सहते हुए कहा—मैं हमेशासे ही बेवकूफ हूँ, इस लिए शायद ऐसी ही कोई बात सोच ली होगी। इसके अलावा, और भी एक सांघातिक षड्यंत्र आपके विरुद्ध करनेका इरादा था। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि इस एक ही महीनेके अन्दर और कहीं पात्री ठीक करके महिमका ब्याह करवा दूँगा। किसी भी तरह हो, उसे इस सम्बन्धसे बचाना ही मैंने अपना कर्तव्य मान लिया था। मेरा मित्र होकर, वह एक नारीके मोहमें पड़कर अपना समाज छोड़कर चला जाय,—यह किसी भी तरह न होने दूँगा।

अचला रुकी हुई साँसको छोड़कर बोली—फिर?

उसके सफेद फक चेहरेकी तरफ देखकर सुरेश जरा हँस दिया, बोला—फिर, कोई डरकी बात नहीं। मैंने उस पाप-संकल्पको त्याग दिया है, आज मैं उसी बातको आपके समक्ष स्वीकार कर जाऊँगा। आपसे मिलनेके लिए कल रातको मैंने उससे बहुत अनुरोध किया है। इसके पहले उसने मेरे अनुचित अनुरोधकी रक्षा की थी, पर कलका अनुरोध उसने नहीं माना,—आपसे बगैर मिले ही वह कलकत्ता छोड़कर चला गया।

अचलाने पूछा—जानेका कोई कारण बताया था?

सुरेशने कहा—नहीं। जरूरत है, सिर्फ इतना ही।

अचलाने फिर एक लम्बी साँस छोड़कर मानो अपने आपसे कहा—जरूरत! जरूरत! हमेशासे उनके मुँहसे यही बात सुनती आई हूँ,—यही आचरण देखती आई हूँ,—हमेशा जरूरत ही उनके लिए सर्वस्व है!

सुरेशने कहा—एक चिट्ठी लिखकर भी तो वह आपको जता जा सकता था?

अचलाने धीरेसे सिर हिलाकर कहा—नहीं। चिट्ठी वे नहीं लिखते।

सुरेशने, कुछ देर चुप रहकर, मुँह उठाके अचलाकी तरफ देखा; फिर कहा—क्या जरूरत है, सो भी नहीं बताता। उसका सुख-दुःख, भलाई-बुराई, सब कुछ उसका अकेलेका है। स्वार्थी! कभी किसीको उसका हिस्सा नहीं देता। इन बातोंसे कितना दुःख वह मुझे बचपनसे देता आया है, उसका हिसाब नहीं। निष्ठुर है! उसने एकके बाद एक न जाने कितने दिन उपास करके काटे हैं और मेरे रोजके खाने-पहरनेको कडुआ-विषाक्त बना दिया है,—मगर फिर भी, मेरे मुँहकी तरफ देखके भी, कभी मेरे हाथसे कुछ नहीं लिया। मुझे तो डर लगता है कि जिस पाषाणको लेकर मैंने कभी सुख नहीं पाया, उसे लेकर आखिर आप कैसे सुखी हो सकेंगीं?—कहते कहते अकस्मात् उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। झटपट उन्हें पोंछकर वह जबरदस्ती जरा हँसकर बोला—देखिए, बाहरसे मैं बहुत कठोर दिखाई देता हूँ, पर भीतरसे मैं बहुत ही कोमल हूँ। महिम ठीक इससे उलटा है,—फिर भी हमारे समान मित्रता संसारमें शायद बहुत कम ही थी।

अचला सिर झुकाये हुए मृदु कंठसे बोली—सो मुझे मालूम है सुरेशबाबू, और यह भी मालूम है कि वह मित्रता आज भी अक्षय बनी हुई है।

बचपनकी सारी पूर्वस्मृतियाँ सुरेशके मनके भीतर आन्दोलित हो उठीं, वह आँसूसे रुँधे हुए गलेसे बोला—जब कि जानती हैं, तब इतनी भिक्षा मुझे दीजिए कि अज्ञानसे या बिना जाने जो शत्रुता मुझसे आप लोगोंके प्रति हुई है, वह अपराध अब फिर मेरे हृदयमें न चुभे?

उसका कंठ-स्वर आवेगके मारे फिर रुँध आया, और उसकी व्याकुलताने अचलाके हृदयको भी मानो हिला-डुला दिया। उसने उमड़ते हुए आँसुओंको छिपानेके लिए अकस्मात् मुँह फेरते ही देखा कि उसके पिता दरवाजेपर खड़े हैं।

केदार बाबू सुरेशको देखकर, खुश होकर बोल उठे—अच्छा, सुरेशबाबू हैं!

सुरेशने उठके खड़े होकर नमस्कार किया।

केदार बाबूने बैठे बगैर ही पूछा—महिमकी क्या खबर है? उनको नहीं

देख रहा हूँ ?

सुरेशने कहा—महिम बहुत ही जरूरी कामसे सबेरेकी गाड़ीसे घर चला गया है, यह खबर देनेके लिए ही मैं आया हूँ ।

केदार बाबूने आश्चर्य-चकित होकर कहा—घर चला गया !—कहते कहते सहसा वे जल-भुनकर खाक हो गये और बोले—वह घर जाय, जाने दो, हमें उससे कोई मतलब नहीं । लेकिन, तुम बेटा सुरेश, जब तुम्हारी तबीयत हो, जब समय मिले, तब घरके लड़केकी तरह यहाँ आ जाया करो—मुझे बड़ा आनन्द होगा । पर तुम्हारे उस मिथ्याचारी मित्र-रत्नकी अब मैं इस घरमें सूरत भी नहीं देखना चाहता । मुलाकात होनेपर कह देना, उसे और किसी बातकी लज्जा न भी हो, तो भी कमसे कम अपमानका डर तो जरूर ही होना चाहिए ।

सुरेश गर्दन झुकाकर रह गया । मनके भावको भाँपनेकी कोशिश करके केदार बाबू उत्साहके साथ बोल उठे—नहीं नहीं सुरेश, तुम्हारे लज्जित होनेकी तो इसमें कोई बात ही नहीं । बल्कि तुमने जो अपना कर्तव्य पालन किया, उसका गौरव होना चाहिए । तुम समझ नहीं रहे हो कि कैसी विपत्तिसे हम लोगोंको तुमने बचाया, और इसके लिए हम कितने ज़्यादा तुम्हारे कृतज्ञ हैं ।

लड़कीकी तरफ देखकर बोले—मुझे कलसे इस बातपर आश्चर्य हो रहा है अचला, कि उसने सुरेश जैसे लड़केके साथ मित्रता कैसे जोड़ ली और अबतक उसे कायम भी कैसे रख सका ! फिर जरा ठहरकर बोले—जो यह काम कर सकता है, वह हम जैसे दो निरीह आदमियोंको भुला रखेगा, इसमें ज्यादती कुछ नहीं है, यह मैं मानता हूँ, लेकिन, यह भी बड़ी अद्भुत बात है कि मुझ जैसे प्रवीण आदमीको इतना भी न सूझा कि यह कैसा आदमी है, कौन है, इस बातका पता लगा लूँ । आश्चर्य है !

सुरेश कुछ बोला नहीं । यहाँ तक कि केदार बाबूके मुँहकी तरफ मुँह उठाकर देख भी न सका । केदार बाबू कुछ देर ठहरकर अपनी पोशाककी तरफ देखते हुए बोले—मुझे बहुत-सी बातें पूछनी हैं । बेटा, जरा बैठो, मैं तब तक कपड़े बदल आऊँ । यह कहकर वे जाना ही चाहते थे कि सुरेशने कहा—मुझे अबेर हो गई है । आज चलता हूँ, और किसी दिन आऊँगा । कहकर एक तरह व्यस्तताके साथ ही उठके खड़ा हो गया, और किसी कदर एक नमस्कार करके उनके साथ ही साथ बाहर चला गया ।

परन्तु, दूसरे दिन सबेरे ही फिर वह वहीं दिखाई दिया, और तीसरे दिन भी ठीक इसी समय उसकी गाड़ीकी आहट मकानके नीचे आकर थम गई।

परन्तु इसके बाद फिर चौथे दिन भी जब उसकी गाड़ीकी आहट सुनाई दी, तब अबेर हो चुकी थी। पिताको नहाने-खानेकी ताकीद देकर अचला उन्हें उठाना ही चाहती थी, पर अब उनका उठना न हो सका। उन्होंने सुरेशको सहर्ष बिठाकर गप-शप शुरू कर दी।

सुरेश इस बातको ताड़ गया था, इसलिए मामूली दो-चार बातें करके जब वह उठने लगा, तब उसके रूखे-सूखे माथेकी तरफ देखकर आज अकस्मात् एक ही क्षणमें केदार बाबू व्यस्त और चंचल हो उठे। बोले—अभी तक तुमने नहाया-खाया भी नहीं है सुरेश बाबू ?

सुरेशने हँसकर कहा—मैं जरा देरसे ही नहाता-खाता हूँ।

केदार बाबूने उसकी बातपर ध्यान ही नहीं दिया, वे अपनी ही कहते गये और एक ही क्षणमें एक बारगी चंचल हो उठे—ऐं अभी तक नहाना-खाना नहीं हुआ ? नहीं, अब एक मिनटकी भी देर मत करो, सुरेश! यहीं-पर नहा-धोकर जितना बने थोड़ा बहुत खा-पी लो। बेटी अचला, जरा जल्दी करवाओ,—बारह बज रहे हैं! अरे ओ बेहरा! इत्यादि पुकारते हुए वे खुद ही इन्तजाम कराने बाहर चले गये।

अचला अब तक थिर होकर खड़ी थी। अब भी उसने किसी तरह चंचलता प्रकट नहीं की। पिताके चले जानेके बाद आहिस्तेसे बोली—आप हमारे यहाँ कुछ खा पी सकते हैं ?

सुरेश मुँह उठाकर कुछ देर तक अचलाके मुँहकी तरफ देखता रहा, फिर बोला—आप क्या कह रही हैं ?

" आप ब्राह्म-समाजीके घर तो खाते नहीं ? "

" नहीं, खाता तो नहीं। पर आप लाकर देंगी, तो खा लूँगा।"—फिर जरा ठहरकर बोला—आप शायद सोच रही होंगी कि मैं मजाक कर रहा हूँ; लेकिन सो बात नहीं। आप हाथसे उठाके देंगी तो मैं सचमुच ही खाऊँगा। —कहकर वह उसकी तरफ देखने लगा। अबकी बार अचलाने ज़रा मुँह नीचा करके अपनी हँसी छिपा ली। बोली—वास्तवमें मैं सोच रही थी कि आप मज़ाक कर रहे हैं। कल तक जिनके घर खानेमें आपको बेहद घृणा थी, आज उन्हींमेंसे एकका छुआ खानेमें आपकी कैसे प्रवृत्ति हो गई, मेरी कुछ समझमें नहीं आ रहा है सुरेशबाबू।

सुरेशने उदास चेहरेसे व्यथित-स्वरमें कहा—तो क्या इतनी देर बाद आपकी समझमें यही आया कि आपके हाथका खानेमें मुझे घृणा होगी ?

अचलाने कहा—पर, यही समझना तो स्वाभाविक है सुरेश बाबू ! आप जैसे एक उच्च-शिक्षित भद्र पुरुषके हमेशासे चले आये हुए सामाजिक संस्कार अचानक एक ही दिनमें बिना कारण हवा हो जायँगे, इस बातका सोचना क्या स्वाभाविक है ?

सुरेशने कहा—नहीं, स्वाभाविक तो नहीं। पर, बिना कारण हवा हो रहे हैं, ऐसा क्यों सोच रही हैं ? कारण हो भी तो सकता है—कहते कहते वह इस ढंगसे देखता रह गया कि जवाब देते हुए अचला एकबारगी दंग रह गई। उसकी बातसे सुरेशको चोट पहुँची है, यह बात वह उसका चेहरा देखते ही समझ गई थी और एक तरहका हिंसापूर्ण आनन्द भी महसूस कर रही थी। परन्तु यह वेदना अकस्मात् एक ही क्षणमें उसके सारे चेहरेको एकदम राखकी तरह सुखा दे सकती है, इस बातकी उसने कल्पना भी न की थी, और न ऐसा वह चाहती ही थी। इसीसे वह खुद भी व्यथित हुई और बातको सहज-स्वाभाविक हँसी-मजाकमें परिणत करनेके लिए जबरदस्ती जरा हँसकर बोली—आप सरीखे दृढ़प्रतिज्ञ आदमी भी—

सुरेशने कहा—हाँ, बह जाते हैं।—उसके गलेका स्वर काँपने लगा; बोला—आप एक दिनकी बात कह रही थीं,—मगर जानती हैं आप, एक दिनके भूकम्पसे आधी दुनिया पातालमें समा जा सकती है ! एक दिन कोई थोड़ा समय नहीं है।—कहकर फिर वह उसी तरह एकटक देखता रहा। अचला डर गई। सुरेशके चेहरेपर एक तरहकी शुष्क पाण्डुरता आ गई थी,—माथेकी नसें खूनकी तेजीसे फूल उठी थीं, आँखें चमक रही थीं,—मानो किसी चीजको झपटकर पकड़ना चाहता हो !

एक तो इतनी गरमी, दूसरे इतनी अबेर तक नहाया-खाया नहीं,—पिछली रातको जरा भी नींद नहीं आई,—उसपर पाँवके नीचेकी मिट्टी तक मानो अकस्मात् हिलने लगी ! अपनी लाल-सुर्ख आँखोंको फाड़-फाड़कर कहने लगा—ब्रह्मसमाजियोंसे घृणा करता हूँ या नहीं, इसका जवाब ब्रह्मसमाजियोंको दूँगा; मगर आप मेरे लिए उनसे बहुत, बहुत ज्यादा ऊपर हैं—

उसकी उन्मादपूर्ण विक्षिप्त चेष्टा देखकर अचला मारे डरके ठिठुर गई। किसी कदर इस प्रसंगको दबा देनेके लिए उसने डरते डरते कहा—बेहरा—

परन्तु उसका वह अस्फुट मृदु स्वर सुरेशके ऊँचे स्वरसे दब गया। वह पूर्ववत् तीव्र स्वरमें कहने लगा—दो दिनका परिचय ! हाँ, सो तो है ! मगर जानती हो अचला, दिन, घंटा, मिनट,—इनसे महिमको मापा जा सकता है—पर सुरेशको नहीं। वह स्थान-कालके अतीत है ! तुमने भूकम्प देखा है ? जो पृथिवीको निगल जाता है—

अचला व्याधसे डरी हरिणीकी तरह पलक मारते ही उठ खड़ी हुई, बोली —आपके नहानेका इन्तजाम...कहकर उसने पैर बढ़ाया ही था कि सुरेशने सहसा सामनेकी ओर झुककर उसका दाहना हाथ पकड़के खींच लिया। इस तरहके उन्मत्त और आकस्मिक झटकेको सह लेना स्त्रियोंके बूतेकी बात नहीं। चटसे वह सुरेशकी देहपर औंधी आ पड़ी। भय और विस्मयको पार करके उसके आर्त-कण्ठकी अस्फुट 'मइया री !' की पुकार उसके काँपते हुए ओठोंको पार भी न कर पाई थी कि सुरेशने उसके दोनों हाथोंको अपनी छातीपर जोरसे खींचकर पुकारा—अचला !

अचला आँखें उठाकर मूर्च्छित मायामुग्धकी भाँति उसकी तरफ देखती रह गई, और सुरेश भी क्षण-भरके लिए कोई बात न कह सका,—सिर्फ उसके अपरिमेय पिपासा-दग्ध ओठोंसे मानो एक तरहकी स्तब्ध तीव्र ज्वाला बिखर पड़ने लगी।

कुछ क्षण इसी तरह रहकर सुरेश फिर एक बार अचलाके दोनों हाथ अपनी छातीपर दबाता हुआ आवेशमें आकर कहने लगा—अचला, एक बार भूकम्पके उस प्रचण्ड हृदय-स्पन्दनको अपने हाथोंसे अनुभव कर देखो !—कैसा भीषण ताण्डव इस हृदयके अन्दर हो रहा है ! यह क्या पृथिवीके किसी भी भूकम्पसे छोटा है ? बता सकती हो अचला, इस दुनियामें कौन-सी जात, कौन-सा धर्म, कौन-सा मत है जो इस विप्लवमें पड़कर भी डूबकर रसातल न पहुँच जाय ?"

"छोड़ दीजिए,—पिताजी आ रहे हैं ?—" कहकर अचला जबरदस्ती अपनेको छुड़ाकर शान्त होकर अपनी चौकीपर जा बैठी। इसके दूसरे ही क्षण केदार बाबू व्यस्तताके साथ कमरेमें आये और कहने लगे—क्या किया जाय, बहुत देर हो गई,—और अपना यह बेहरा न-जाने रह-रहकर कहाँ चला जाया करता है, जिसका ठीक नहीं। बेटी अचला,—अरे यह क्या बात है, तेरी कुछ तबीयत खराब है क्या ? मुँह सूखकर जैसे—

अचलाने किसी कदर जरा हँसनेकी चेष्टा करके कहा—बीमार क्यों होने लगी बापूजी ?"

"फिर भी माथेमें दर्द-वर्द कुछ है क्या ? जैसी गरमी पड़ रही है—"

"नहीं तो, मैं अच्छी हूँ बापूजी, मुझे कुछ नहीं हुआ।"

केदार बाबू निश्चिन्त होकर बोले—तब ठीक है। चेहरा देखकर मुझे तो डर हो गया था। तो, तू ही जरा जाकर देख, अगर—"

अचलाने कहा—अच्छी बात है बापूजी, मैं एक मिनटमें सब इन्तजाम किये देती हूँ। पर हाँ, अभी मैं यह पूछ रही थी सुरेश बाबूसे,—हमारे यहाँ नहाने-खानेमें उन्हें कोई आपत्ति तो नहीं ?

केदार बाबूने आश्चर्यके साथ कहा—आपत्ति क्यों होने लगी ? नहीं नहीं, सुरेश, मैंने तुमसे कह दिया है कि एक दिनमें ही मैंने तुम्हें घरका लड़का समझ लिया है। यह घर तुम्हारा अपना घर है।—फिर लड़कीकी तरफ देखकर गर्वके साथ कहने लगे—और अगर यह बात न होती अचला, तो भगवान् हम लोगोंके उद्धारके लिए इन्हें क्यों भेजते ? पर अब देर करना ठीक नहीं बेटा, आओ मेरे साथ, नहानेका घर तुम्हें बता दूँ।

परन्तु सुरेशने केदार बाबूके कमरेमें घुसते ही जो सिर झुकाया, सो झुकाका झुका ही रह गया, फिर वह उसे सीधा उठा ही न सका।

अचलाने कहा—जरूरत क्या है, बापूजी, ज्यादा कहने-सुननेकी ? हम ब्रह्मसमाजियोंके घर खाने-पीनेमें शायद उन्हें कोई खास बाधा हो। इसके सिवा बगैर तबीयतके खानेसे तबीयत भी तो खराब हो सकती है ?

केदार बाबूको मानो किसीने मसोस दिया। सुरेश बड़े आदमीका लड़का है—स्वाधीन है। घरकी गाड़ीपर जाता-आता है। उसे खिला-पिलाकर, किसी भी तरह हो, अपना बनाना ही है;—सहसा उसके झुके हुए चेहरेके कुछ हिस्सेपर नजर पड़ते ही केदार बाबू मारे आश्चर्यके चौंक पड़े—ऐं ! यह हो क्या गया सुरेश ! चेहरा सूखकर बिलकुल स्याह पड़ गया है। उठो, उठो,—मुँह-हाथ धोनेमें अब एक मिनट भी देर मत करो। कहकर उन्होंने हाथ पकड़ा और उसे वे एक तरहसे जबरदस्ती ही उठा ले गये।

७

भोजनादिके बाद केदार बाबूने ऐसे घाममें सुरेशको किसी तरह जाने ही न दिया। विश्राम करनेके नामसे दोपहर-भर उसे एक कमरेमें कैद-सा कर रखा। वह आँखें मींचकर एक कोंचपर पड़ा रहा, पर नींद उसे न आई, न आई। घरके बाहर आकाशमें मध्याह्नका सूर्य जल रहा था, और भीतर असंयमकी आत्म-ग्लानि उससे भी ज्यादा भीषण तेजीसे सुरेशके हृदयमें जलने लगी। इस तरह दिन-भर भीतर-बाहरसे जलकर, अधमरा होकर, जब उसने उठकर सामनेकी खिड़की खोली, तब दिन डूब रहा था। केदार बाबूने कमरेमें घुसकर जोरसे एक साँस छोड़कर कहा—उःफ, आजकी गरमी देखी सुरेश! मैंने तो अपनी उमरमें कलकत्तेमें ऐसी गरमी कभी देखी ही नहीं। तुम्हें जरा नींद-ईंद आई कि नहीं?

सुरेशने गरदन हिलाते हुए कहा—नहीं, दिनमें मुझसे सोया नहीं जाता।

केदार बाबूने उसी वक्त कहा—और सोना भी न चाहिए। स्वास्थ्यके लिए बहुत हानिकर है। फिर भी मैंने तीन-चार बार उठके देखा था कि तुम्हारा पंखा खींचनेवाला खींच रहा है या सो रहा है। ये लोग ऐसे शैतान होते हैं कि जहाँ जरा बाबूकी आँख लगी नहीं कि ऊँघने लगते हैं। खैर, जरा स्वस्थ तो हो लिये? मैं निश्चित जानता था कि ऐसी धूपमें अगर तुम बाहर निकलते तो फिर खैर नहीं थी।

सुरेश चुप रहा। केदार बाबूने एक एक करके घरकी सब खिड़कियाँ खोलकर अपने बैठनेकी कुरसी सुरेशके पास खींचकर बैठते हुए कहा—मैं सोचता हूँ सुरेश, अब ऊहापोह करनेकी ज़रूरत नहीं। साफ साफ महिमको एक चिट्ठी लिख देनी चाहिए। तुम्हारी क्या राय है?

इस प्रश्नने सुरेशकी पीठपर मानो एक मर्मान्तिक चाबुक-सा मारा। वह ऐसा चौंक उठा कि केदार बाबूने उसे देख लिया और कहा—निष्ठुर कर्तव्य कैसे पूरा किया जाता है, इस बातकी शिक्षा तो तुम्हींने इतने दिनों बार मुझे दी है सुरेश! अब तुम्हारे पीछे कदम हटानेसे तो काम न चलेगा बेटा।

“बात तो ठीक है।” सुरेशने कुछ देर मौन रहकर कहा—पर आपकी कन्याकी भी इस सम्बन्धमें राय ले लेना ठीक है।

केदार बाबूने जरा हँसकर कहा—हाँ, सो तो जरूरी है ही।

“वे साफ साफ चिट्ठी लिख देनेको कहती हैं?”

केदार बाबूने इसका सीधा जवाब न देकर कहा—सो, करीब करीब ऐसा ही समझो। इस सम्बन्धमें आमने-सामने सवाल-जवाब करना सभीके लिए जरा कष्टकर है; काफी शिक्षा भी पा चुकी है; इन सब बातोंको समय रहते साफ न कर डालनेसे यह पागलपन कहाँ तक पहुँच सकता है, इस बातको वह तो समझती ही है! इसीसे सोचता हूँ, आज ही रातको इस मामलेको तय कर डालूँगा।

सुरेशने म्लान होकर कहा—इतनी जल्दी क्यों करते हैं? दो-चार दिन सोच विचार कर देख लेना ठीक होगा।

केदार बाबूने कहा—इसमें विचार करनेकी गुंजाइश ही कहाँ रह गई? उसके हाथ मैं अपनी लड़कीको नहीं सौंप सकता, यह निश्चित है,—तब फिर जितनी जल्दी इस मामलेको खतम किया जाय, उतना ही अच्छा।

सुरेशने पूछा—मेरा उल्लेख करना भी क्या आवश्यक है?

केदार बाबूने हँसकर कहा—बूढ़ा हो चला, इतनी भी समझ क्या मुझमें नहीं, तुम समझते हो? तुम्हारा नाम कभी किसी दिन कोई न लेगा।

सुरेशने एक आरामकी साँस ली; पर मुँहसे वह कुछ बोला नहीं, चुपचाप बैठा रहा। यह बात केदार बाबूसे छिपी न रही। उन्होंने इस बीचमें सुरेशके और भी दो-एक आचरणपर लक्ष्य करके मन ही मन एक अनुमान खड़ा कर लिया था। अब उसकी सचाई-झुठाई जाँचनेके लिए उन्होंने अँधेरेमें ढेला फेंका,—शायद उनका अनुमान ठीक हो। बोले—बड़ा-भारी उपकार तुमने हम लोगोंका किया है बेटा, मगर उससे भी बढ़कर महान् उपकारकी आशा हम लोगोंने कर रखी है। हम लोग ब्रह्मसमाजी ज़रूर हैं; पर वैसे नहीं। और मेरी लड़की तो अपनी माकी तरह मन ही मन हिन्दू ही रह गई है। वह हमारा ब्रह्मसमाजी ढंग बिलकुल ही पसन्द नहीं करती।

सुरेशने आश्चर्य-चकित होकर मुँह उठाके उनकी तरफ देखा। सुरेशकी इस नीरव उत्सुकताको खास तौरसे ताड़कर केदार बाबू कहने लगे—लड़कीको तो मैं हमेशा कुँआरी रख नहीं सकता। इस विषयमें मैं तुम लोगोंकी तरह ही बिलकुल हिन्दूमतावलम्बी हूँ। एक सम्बन्ध जैसे तुम्हारे जरिएसे टूट गया सुरेश, वैसे ही और एक सम्बन्ध तुम्हींको जुटा देना होगा, बेटा।

सुरेशने कहा—जो आज्ञा; मैं जी जानसे कोशिश करूँगा।

उसके चेहरेका भाव पढ़ते पढ़ते केदार बाबूने सन्दिग्ध स्वरमें कहा—समाजमें

इस विषयको लेकर काफी गड़बड़ी होगी, मुझे साफ दिखाई दे रहा है। परन्तु, जितनी जल्दी हो सके, अचलाका ब्याह करके इस आलोचनाको रोक देना होगा। पर हाँ, इसमें एक कठिनाई जरूर है, सुरेश—यह कहकर उन्होंने एक बार दरवाजेके बाहर झाँककर, और भी जरा पास आकर धीमे गलेसे कहा—कठिनाई यह है कि लड़का रूप-गुणमें अच्छा होनेसे ही हिन्दू-समाजकी तरह हाथ पकड़के उसके साथ ब्याह दूँ, सो जरा मुश्किल है। लड़की हमेशासे शिक्षा-संस्कारके बीच रही और बड़ी हुई है, इसीसे, उसकी रायके बिना कुछ नहीं किया जा सकेगा। परन्तु, राय भी वह तब तक हरगिज नहीं देगी जब तक कि दोनोंमें ऐसी कोई,—समझे कि नहीं सुरेश ?

इस बातचीतमें सुरेश कुछ अन्यमनस्क-सा हो गया था। इस प्रणयके इशारे-ने मानो और एक बार नये तौरसे चोट पहुँचाकर उसे अचेत कर दिया। दोपहरके अपने उस उच्छृंखल प्रणय-निवेदनके बीभत्स और उग्र आचरणकी याद करके मारे शरमके उसका चेहरा सुर्ख न होकर बिलकुल स्याह पड़ गया; और सबेरेका जो अखबार अबतक पैरोंके पास जमीनपर पड़ा था, उसे उठाकर उसके विज्ञापनवाले पृष्ठको वह एकटक देखने लगा।

केदार बाबूने इसे देखा, और इस आकस्मिक भाव-परिवर्तनका बिलकुल उलटा अर्थ लगाकर मन ही मन वे अत्यन्त पुलकित हो उठे और मौका देख एक बड़ी-सी चाल चल दिये; बोले—एक आश्चर्यकी बात मैं बराबर ही देखता आ रहा हूँ, सुरेश, मालूम नहीं क्यों, कि एक आदमीपर आजन्म नज़दीक रहकर भी तिल-भर विश्वास नहीं होता, और, एक आदमीके सिर्फ दो-ही-चार घंटेके परिचयसे ही, जी चाहता है कि उसके हाथ अपनी जान तक सौंप दी जाय तो कोई हर्ज नहीं। मालूम होता है, जैसे उससे जन्म-जन्मान्तरकी जान-पहचान हो,—सिर्फ दो-चार घंटेकी नहीं। जैसे तुम हो। तुमसे कितनी देरका परिचय है बताओ भला ?

ठीक इसी समय अचलाने कमरेमें प्रवेश किया। सुरेशने एक क्षणके लिए निगाह उठाई, और वह फिर अखबार देखनेमें लग गया।

"बापूजी, तुम इस वक्त चाय पीओगे या कोको ?"

"मैं कोको ही पिऊँगा बिटिया !"

"सुरेश बाबू, आप तो चाय पीयेंगे न ?"

सुरेशने अखबारकी तरफ निगाह किये हुए अस्फुट स्वरमें जवाब दिया—मुझे चाय ही दीजिएगा।

"आपके पियालेमें चीनी कम तो नहीं होगी ?"

"नहीं, जैसी और सब पीते हैं, वैसी ही पीता हूँ।"

अचला चली गई। केदार बाबूने अपनी बातका टूटा हुआ सिलसिला जोड़ते हुए धीरेसे कहा—अब तुम्हीं बताओ सुरेश, अपनी इस बिटियाके लिए मैं बुढ़ापेमें कैसे संकटमें पड़ा हुआ हूँ, इस बातको मैं तुमसे छिपा तो नहीं सका। नहीं तो, क्या अपनी दुर्दशाकी कहानी सहजमें कोई किसीको बताता है ? जो बात कभी किसीसे नहीं कही, उसे कहते हुए तुमसे कोई संकोच क्यों नहीं हो रहा है ? इसका क्या कोई गूढ़ कारण नहीं, तुम समझते हो ?

सुरेश आश्चर्यसे मुँह उठाकर देखता रहा। केदार बाबू कहने लगे—यह भगवानका निर्देश है, मेरा सामर्थ्य क्या जो मैं छिपाऊँ ? मुझे कहना ही होगा !—कहकर उन्होंने कुरसीके हथेलेपर जोरसे एक मुक्का मारा।

परन्तु उनकी इस विस्तृत भूमिकाके बाद भी उनकी दुर्दशा इस लड़कीके कारण कहाँ तक हुई है, इस बातका सुरेश अन्दाज न लगा सका। केदार बाबू तब विस्तारके साथ वर्णन करने लगे कि कैसे उनका ऐसा बढ़िया आर्डर-सप्लाईका रोज़गार महज़ एक धोखेबाजी और कृतघ्नताकी आगमें जलकर खाक हो गया, फिर भी वे कैसे अविचालित धैर्यके साथ खड़े रहे, और ऋण उत्तरोत्तर बढ़ते जानेपर भी इकलौती बेटीकी शिक्षाके मदमें जरा भी खर्च नहीं घटा सके। वे बताने लगे कि पाँच छै डिगरियाँ जारी होनेके डरसे उनका आहार-विहार विषमय होने लगा और फुटकर कर्जके तकाजोंके मारे जीवन दुर्भर हो गया, फिर भी वे मुँह खोलकर किसीसे भी कुछ कह नहीं सके। हालाँ कि इसी कलकत्ते शहरमें उनके ऐसे कितने ही मित्र हैं जो उनका यह कर्ज एक साथ चुका दे सकते हैं।

जरा देर ठहरकर मानो कुछ सोचकर कहने लगे—मगर तुमसे जो कहा, उसमें जरा भी दुविधा या संकोच नहीं हुआ,—क्या यह भगवानका स्पष्ट आदेश नहीं है ? कहते हुए परम भक्तिके साथ उन्होंने दोनों हाथ माथेसे लगाकर भगवानको नमस्कार किया।

सुरेशको भगवानपर विश्वास न था,—उसने वृद्धके आवेगमें साथ नहीं दिया। बल्कि उसका मन मानो कुछ छोटा हो गया। उसने धीर भावसे पूछा—आपका

ऋण कितना है ?

केदार बाबूने कहा—ऋण ? मेरा रोज़गार अगर कायम रहता, तो क्या यह कोई ऋणमें ऋण था ! ज्यादासे ज्यादा तीन-चार हजार समझो । वे और भी कुछ कहना चाहते थे, पर इतनेमें नौकरके हाथ चायका सामान और अपने हाथमें जल-पानकी तश्तरी लिए अचला कमरेमें चली आई ।

केदार बाबूने कोकोका एक घूँट पीकर हर्ष-सूचक एक अव्यक्त ध्वनि करके पियाला टेबिलपर रख दिया और फिर कहा—देखो सुरेश, मेरे ऊपर भगवानकी ऐसी एक आश्चर्यजनक कृपादृष्टि रहती है कि बराबर देखता आया हूँ, कभी मुझे किसीके सामने लज्जित नहीं होना पड़ता। महिमसे यह बात कहते कहते क्यों रुक जाता था,—क्यों वे हमेशा मेरा मुँह बन्द कर देते थे, इतने दिन बाद यह आज समझमें आया है । इतना कहकर उन्होंने माथेसे हाथ लगाकर भगवानकी असीम कृपाके लिए उन्हें नमस्कार किया ।

सुरेशने अपने प्यालेकी तरफ दृष्टि रखकर कहा—रुपयेकी आपको जरूरत कब है ?

केदार बाबूने मुँहसे कोकोका प्याला उतारकर टेबिलपर रखते हुए कहा—जरूरत मुझे थोड़े ही है सुरेश, जरूरत तो तुम लोगोंको है । यह कहकर वे जरा ऊँचे दरजेकी हँसी हँसे । यह पहेली समझमें न आनेसे सुरेशने निगाह उठाते ही देखा कि अचला जिज्ञासु मुखसे पिताकी तरफ देख रही है । उन्होंने एक बार लड़कीके मुँहकी ओर, और फिर सुरेशके चेहरेकी ओर देखकर कहा—इसके मानी समझना कोई कठिन नहीं । मकानको मैं कोई साथ तो ले नहीं जाऊँगा ? जायगा तो तुम्हीं लोगोंका जायगा, और रहेगा तो तुम्हीं दोनोंका रहेगा । यह कहकर वे फिर मन्द मन्द मुसकाने लगे ।

दोनोंकी चार आँखें हुईं और पलक मारते ही दोनोंके सुर्ख चेहरे झुक गये ।

दो प्याले कोको खतम करके केदार बाबूको एक जरूरी चिट्ठी लिखनेकी याद आ गई । वे तुरत उठके खड़े हो गये और बोले—आज तुम्हें खाने-पीनेकी बड़ी तकलीफ रही सुरेश, कल दोपहरको यहीं खाना । इतना कहकर, निमन्त्रण देकर पश्चिमकी तरफका दरवाजा खोलकर वे अपने कमरेमें चले गये ।

खुले दरवाजेसे अस्तोन्मुख सूर्यके रंगीन प्रकाशकी एक झलक सुरेशके चेहरेपर आ पड़ी । गरदन फेरनेपर उसने देखा कि अचला उसकी तरफ एकटक देख रही

है,—उसने निगाहें नीची कर लीं। दो मिनट बाद बड़ी घड़ीके खट खट शब्दके सिवा कमरेमें सन्नाटा छा गया।

८

कमरेकी नीरवता भंग की सुरेशने, बोला—सहसा एक बाहियात काम कर बैठा।

अचला कुछ बोली नहीं।

सुरेशने फिर कहा—आपको जरूर मैं एक राक्षस-सा मालूम होता हूँगा। अकेले बैठनेकी शायद आपको हिम्मत नहीं पड़ती, क्यों?—कहकर वह ज़बरन हँसने लगा। अचलाने अब भी मुँह नहीं उठाया। पर, उठाती तो देखती कि सुरेशकी उस अत्यन्त कोशिशसे हँसी जानेवाली हँसीने सिर्फ उसीके चेहरेको बार बार अपमानित करके मारे लज्जाके विकृत कर दिया है।

फिर सारा कमरा निस्तब्ध हो रहा; और दीवारपर टँगी हुई घड़ी ही सिर्फ खट खट करके उस निस्तब्धताको नाप रही है। कुछ देर बाद यह कठिन नीरवता जब बिलकुल ही असह्य हो उठी, तब सुरेशने अपने सारे शरीरको सीधा और कड़ा करके कहा—देखिए, जो कुछ हो गया है, उसके बाद अब हम लोगोंमें आँखोंके लिहाजकी कोई बात नहीं रह गई है। दिन छुपना चाहता है,—अब मैं जाऊँगा। लेकिन इसके पहले एक-दो बातोंका आपसे जवाब सुन जाना चाहता हूँ, बतायेंगीं?

अचलाने मुँह उठाया। उसकी आँखें व्यथासे भरी हुई थीं। बोली—कहिए।

सुरेशने कुछ देर स्थिर रहकर कहा—आपके पिताजीका कर्ज चुका देनेके लिए कल-परसों तक मैं एक बार आऊँगा; पर आपसे मुलाकात करनेकी जरूरत न होगी। मैं जानना चाहता हूँ, हम लोगोंके बारेमें उनका अभिप्राय क्या है? आप जानती हैं?

अचलाने कहा—मुझे उन्होंने साफ साफ कुछ नहीं बताया।

सुरेशने कहा—मुझे भी नहीं बताया। फिर भी मेरा विश्वास है कि वे मुझे ही,—लेकिन आप शायद राजी न होंगीं?

अचलाने कहा—नहीं।

“कभी नहीं?”

अचलाने नीचेको निगाह किये हुए कहा—नहीं।

“ पर, महिमकी आशा अगर न रहे ? ”

अचलाने अविचलित स्वरमें कहा—वह आशा तो है ही नहीं।

सुरेशने पूछा—शायद, तो भी नहीं ?

अचलाने मुँह नहीं उठाया, किन्तु पहलेकी तरह दृढ़ स्वरमें कहा—नहीं, तो भी नहीं।

सुरेश कोचकी पीठपर लुढ़क पड़ा और एक गहरी साँस लेकर बोला—खैर, एक तरफसे तो मामला साफ हो गया। जानमें जान आई। कहकर कुछ देर चुप रहा, और फिर सीधा होकर बैठकर बोला—लेकिन, मैं एक परेशानीकी बात यह सोच रहा हूँ कि फिर आपके पिताजीका कर्ज कैसे अदा होगा ?

अचलाने डरते डरते जरा मुँह उठाकर अत्यन्त संकोचके साथ कहा—तब तो आप दे नहीं सकेंगे ?

“ दे नहीं सकूँगा ? क्यों ? ” पूछकर सुरेश तीक्ष्ण-व्यग्र दृष्टिसे देखता रहा। उस चितवनके सामने अचलाने फिर सिर झुका लिया। कुछ क्षण उत्तरकी प्रतीक्षा करके सुरेश हँस दिया। परन्तु, अबकी बार उसकी हँसीमें आनन्द भले ही न हो, कृत्रिमता नहीं थी। बोला—देखिए, मेरे साथ परिचय होनेके बादका मेरा कोई भी आचरण भद्र नहीं कहा जा सकता, इस बातको मैं खुद भी जानता हूँ; पर मैं इतना नीच भी नहीं। आपके पिताजीको मैंने ये रुपये बतौर घूँसके नहीं देने चाहे, उनकी विपत्तिमें सहायता ही देना चाहता था। लिहाजा आपके मतामतपर मेरा देना निर्भर नहीं करता, निर्भर करता है उनके स्वीकार करनेपर। अब वे कैसे लेंगे, यही मैं सोचता हूँ। बल्कि, आइए, इस विषयमें हम लोग जरा सलाह-मशविरा कर लें।

अचलाने मुँह उठाकर कहा—कहिए।

सुरेश कहने लगा—दैववश मैं बहुत रुपयोंका मालिक हूँ। फिर भी मुझे रुपये पैसेपर कभी किसी दिन कोई ममता नहीं हुई। चार हजार रुपये मैं बड़ी आसानीसे दूसरेके हाथ सौंप सकता हूँ। और, आपके सुखके लिए तो और भी बहुत ज्यादा दे सकता हूँ। खैर, जाने दीजिए इसे। अब बात यह है कि आपके पिताजीकी धारणा है, इन रुपयोंको चुकानेकी उन्हें जरूरत न होगी, और देखा जाय तो एक तरहसे चुक ही गया समझिए। समझ रही हैं न आप ?

अचलाने सिर हिलाकर अस्फुट स्वरमें कहा—हाँ।

सुरेश कहने लगा—बात जरा साफ साफ कह रहा हूँ, इसका कुछ खयाल न कीजिएगा। मैं समझ रहा हूँ, रुपये उन्हें चाहिए ही, और, इतने रुपये उधार लेकर चुकाने लायक अब उनकी उमर नहीं रही। यद्यपि, मेरी तरफसे मुझे उसकी आवश्यकता भी नहीं है, मगर,—अच्छा, यह तो बड़ी आसानीसे हो सकता है। परसों तक आप अपने मनका भाव उनसे कह दें तो फिर कोई बखेड़ा ही न रह जाय। क्यों, इतना तो कर सकेंगी न?

अचला पूर्ववत् नीचेको सिर झुकाये स्थिर बैठी रही। सुरेशने कहा—रुपयेके लोभसे आपने जो अपनी राय नहीं दी, इससे आपपर मेरी श्रद्धा बहुत ज्यादा बढ़ गई। बल्कि, अगर आप अपनी राय दे देतीं, तो मैं खुद अन्तमें डर कर पीछे हट जाता। मेरे लिए कुछ भी असम्भव नहीं।—इतना कहकर सुरेश उठके खड़ा हो गया, और जरा हँसकर फिर कहने लगा—यद्यपि अब मेरा कुछ कहने लायक मुँह नहीं रह गया, फिर भी, जाते समय एक भीख माँग रहा हूँ, मेरे दोष-अपराधोंको याद न रखिएगा। जरा इधर उधर करके फिर बोला—नमस्कार। बुरे कामोंका जहाज लादकर बिदा हो रहा हूँ—मगर वास्तवमें, मैं पिशाच भी नहीं हूँ। खैर जाने दीजिए, विश्वास दिलाने लायक जब कि जरा भी रास्ता नहीं रखा है, तब कहना ही वृथा है।—इतना कहकर दोनों हाथ उठाके नमस्कार करता हुआ सुरेश जल्दीसे बाहर निकल गया।

धीरे धीरे उसके पैरोंकी आहट सीढ़ियोंमें समा गई। अचलाने उसे सुना; और उसके बाद ही बिना किसी कारणके उसकी आँखोंसे टप टप आँसू गिरने लगे।

केदार बाबू कमरेमें घुसते हुए बोले—सुरेश?

अचलाने जल्दीसे आँखें पोंछ डालीं और कहा—अभी तुरत चले गये हैं।

केदार बाबूने आश्चर्यके साथ कहा—सो क्यों? मेरे साथ बगैर मिले ही चला गया? कल यहाँ जीमनेकी बात तुमने जाते समय याद दिला दी थी न?

अचला लज्जित होकर बोली—मुझे याद नहीं रही बापूजी।

"याद नहीं रही! खूब!" कहकर केदार बाबू पासकी कुरसीपर निश्चेष्ट होकर बैठ गये। लड़कीकी दबी हुई आवाजसे उनके मनमें किसी बातका खटका जरूर हुआ, पर शामके अँधेरेमें उसका चेहरा न दीखनेसे वह स्थायी न रह सका। बोले—इस बुढ़ौतीमें जो काम खुद न करूँगा, उस काममें एक न एक गलती रह जायगी,—वह काम न होगा। जाऊँ, बेहराके हाथ एक चिट्ठी लिखके भेज

दूँ। सुरेशके घरका पता क्या है ?—कहते कहते वे उठके खड़े हो गये।

अचलाने कहा—मुझे तो मालूम नहीं बापूजी।

"सो भी नहीं मालूम ? कहतीं क्या हो !" कहते हुए फिर कुरसीपर सहारा लेकर बैठ गये। परन्तु फिर उसी वक्त उठके सीधे बैठ गये और रूखे स्वरमें कहने लगे—तुम लोग अपने हाथ-पाँव अगर आप ही काट डालना चाहती हो, तो काट डालो बेटी, मुझे रोकनेकी जरूरत नहीं। कमसे कम इतना तो सोचना चाहिए था कि जो बातकी बातमें इतने रुपये देनेको राजी हो जाता है, वह आदमी किस श्रेणीका है ? उसके घरका पता तक पूछके नहीं रखा गया ? तुम जितनी बड़ी होती जाती हो, उतनी ही न जाने कैसी हुई जा रही हो, अचला ! —कहकर उन्होंने एक गहरी साँस ली।

कर्जके जालसे जकड़े हुए उसके आफतके मारे पिता जिस असत्य और क्षुद्रतामेंसे गुजरकर आत्म-रक्षाकी कोशिश कर रहे हैं, सो सब अचलाको दिखाई दे रहा था। ये सब बातें उसके हृदयको विदीर्ण करती रहती थीं, परन्तु वह चुप-चाप सह लियां करती थी। अब भी उसने कोई बात कहकर उनकी अकारण नाराज़गीका प्रतिवाद नहीं किया। परन्तु वह मन ही मन अत्यन्त लज्जित हुई है और पछता रही है, इस बातका निश्चित अनुमान करके केदार बाबू खुश हुए।

बेहरा बत्ती जला गया। केदार बाबू सस्नेह तिरस्कारके स्वरमें कहने लगे—महिमके विषयमें भी कभी कोई ख़बर किसी दिन तुमने नहीं ली। अच्छा, सो तो समझ लो कि अच्छा ही हुआ। भगवान जो कुछ करते हैं, अच्छेके लिए। परन्तु सुरेशके सम्बन्धमें तो वे सब बातें लागू नहीं हो सकतीं। देखा नहीं, ईश्वर स्वयं मानो हाथ पकड़के इसे दे गये हों।

अचलाने मुँह उठाकर पूछा—सुरेश बाबूसे क्या तुम रुपये उधार लेना चाहते हो बाबूजी ?

केदार बाबूकी भगवद्-भक्ति सहसा बाधा पाकर विचलित हो उठी। लड़कीकी तरफ देखकर उन्होंने कहा—हाँ—नहीं तो, ठीक उधार नहीं; तुम समझी नहीं बेटी, सुरेश बहुत अच्छा लड़का है। इस जमानेमें ऐसा अच्छा लड़का लाखोंमें एक मिल सकता है। उसके मनकी इच्छा है कि यह मकान कर्जके लिए नष्ट न होने पावे। रहेगा तो तुम्हीं लोगोंका रहेगा,—मैं और कितने दिनका हूँ,—समझीं कि नहीं बिटिया ?

अचला चुप रही। केदार बाबू उत्साहके साथ कहने लगे—तुम तो जानती ही हो, मैं हमेशासे साफ बात कहनेका आदी हूँ। मुँहसे एक बात और भीतर दूसरी,—यह मुझसे नहीं होता। इसलिए मैंने तो खुलासा कह दिया कि अब सब कुछ मालूम हो जानेके बाद भी महिमके हाथ लड़की सौंपनेसे तो कहीं अच्छा है कि उसे पानीमें डाल दिया जाय। सुरेशकी भी जब यही राय है, तब कहना ही पड़ा कि उसके मित्रके साथ ब्याहकी बात बहुत आगे बढ़ गई है, बहुतोंको मालूम हो गया है, ऐसी हालतमें वह सम्बन्ध तोड़ देनेसे ही काम न चलेगा, बल्कि दूसरा बनाना भी पड़ेगा; नहीं तो समाजमें मुँह दिखाना मुश्किल हो जायगा; नहीं, लेकिन कुछ भी कहो, लड़का तो सुरेश है। इसके लिए मैं मंगलमय भगवानको बार बार नमस्कार करता हूँ।

पिताका नमस्कार करना फिर एक बार निर्विघ्न समाप्त होनेके बाद अचलाने धीरेसे कहा—इनसे इतने रुपये बगैर लिये काम नहीं चल सकता बाबूजी?

केदार बाबू आशंकासे चौंक पड़े। बोले—बगैर लिये काम नहीं चल सकता, इसके मानी? खूब!

"लेकिन आखिर हम लोग अदा तो कर नहीं सकते?"

"अदा करनेकी बात क्या सुरेशने—" वृद्ध केदार बाबू अपनी बातको उद्विग्न संशयके मारे पूरा न कर सके। उनका चेहरा सफेद फक पड़ गया। अचला उस चेहरेको देखकर व्यथित हुई। झटपट बोल उठी—वे कहते थे, परसों आकर रुपये दे जायँगे।

"अदा करनेकी बात—"

"नहीं, सो उन्होंने कुछ नहीं कहा।"

"लिखा-पढ़ी वगैरह—"

"नहीं, इसका खयाल शायद वे बिलकुल ही नहीं रखते।"

"ठीक बात है।" कहकर उन्होंने चटसे सन्तोषकी रुकी हुई साँस छोड़ी और कुरसीका सहारा लेकर आँखें मूँदकर पैर उठाके सामनेकी टेबिलपर रख दिये। आनन्द और आरामसे उनका सारा शरीर मानो क्षण-भरके लिए शिथिल हो गया। कुछ देर इसी तरह रहकर पैर उतारके उद्दीप्त स्वरमें कहने लगे—एक बार सोचो तो सही बेटी, कहाँसे क्या हुआ? इसमें उस सर्वशक्तिमान्‌का हाथ क्या तुम्हें स्पष्ट नहीं दिखाई देता?

अचला चुपचाप पिताके मुँहकी ओर देखती रही। वे उत्तरकी प्रतीक्षा बगैर किये ही कहने लगे—मैं आँखोंके सामने साफ देख रहा हूँ, यह सिर्फ उन्हींकी कृपा है। तुमसे क्या कहूँ बेटी, दो साल हुए, मैं एक दिनके लिए भी अच्छी तरह सोया नहीं हूँ। सिर्फ उन्हींको पुकारता रहा हूँ और सुरेशको देखते ही मुझे ऐसा मालूम हो गया कि वह पहले जन्ममें मेरा ही लड़का था।

अचला चुपचाप बैठी रही। पिताकी गार्हस्थिक दुरवस्थाकी बात उसे मालूम जरूर थी, परन्तु भीतर ही भीतर वह इतनी दूर तक पहुँच चुकी है, यह उसे नहीं मालूम था। आज दो साल बाद एकाग्र आराधना करनेपर पिताके दुःखकी समस्या यद्यपि मङ्गलमयके आशीर्वादसे अकस्मात् कुछ हलकी हो गई, परन्तु उसे अपनी समस्या एकबारगी ही अत्यन्त जटिल होकर दिखाई दी। सुरेशसे रुपये लेनेके विषयमें उसने अभी अभी मन ही मन जो सब संकल्प किये थे, वे उसे छोड़ देने पड़े। रंच-मात्र बाधा देनेकी बात वह सोच ही न सकी। कुछ भी हो, रुपये पिताजीको लेने ही पड़ेंगे।

सांध्य-उपासनाके लिए केदार बाबू उठके चले गये। अचला तमाम बातोंको शुरूसे अन्त तक मन ही मन स्पष्ट अनुभव करनेके लिए वहीं स्तब्ध होकर बैठी रही।

ये जो दो मित्र आज अकस्मात् उसके जीवनके सन्धि-स्थलमें इस तरह अगल बगल आकर खड़े हुए है, इनमेंसे एकको तो अब 'जाओ' कहकर विदा करना ही पड़ेगा, इसमें रंच-मात्र भी सन्देह नहीं;—मगर किसको? कौन है वह? जो महिम अपने असन्दिग्ध विश्वाससे, न जाने किस कर्तव्यके आकर्षणसे, निश्चिन्त निरुद्वेग होकर बैठा है, उसका शान्त मुखड़ा याद करते ही एक प्रबल वाष्पोच्छ्वाससे अचलाकी दोनों आँखें भर आईं। कभी किसी दिन महिमने कोई अपराध नहीं किया, फिर भी, 'जाओ' कहते ही वह चुपकेसे चला जायगा। इस जीवनमें, किसी सिलसिलेसे, किसी बहाने भी वह फिर कभी उसके मार्गमें न आयेगा। अचला स्पष्ट देखने लगी, उस अचिन्तनीय चिर-बिदाईके क्षणमें भी उसका अटल गाम्भीर्य रंच-मात्र भी विचलित न होगा, किसीको भी दोष न देगा, शायद कारण तक न जानना चाहेगा, हो सकता है कि गूढ़ विस्मय और तीव्र वेदनाकी अस्पष्ट रेखा उसके चेहरेपर दिखाई दे, किन्तु, उसके सिवा और किसीकी उसपर नज़र भी न पड़ेगी।

उसके बाद एक दिन सुरेशके साथ विवाहकी बात उसके कान तक पहुँचेगी।

उस समयके असावधान क्षणमें शायद वह एक गहरी साँस लेकर रह जायगा। नहीं तो, जरा मुसकराकर अपने काममें मन लगा देगा। इन बातोंकी कल्पना करते ही इस निर्जन सूने कमरेमें उसका चेहरा मारे शरम और घृणासे सुर्ख हो उठा।

९

दस-बारह दिन बीत गये हैं। केदार बाबूका रंग-ढंग देखकर मालूम होता है, इतनी स्फूर्ति शायद उनमें युवावस्थामें भी नहीं थी। आज शामको बायस्कोप देखके लौटते वक्त, रास्तेमें गोलदिग्घीके करीब आकर, सहसा उन्होंने गाड़ीसे उतरनेके लिए तैयार होकर कहा—सुरेश, मैं यहाँसे पैदल ही समाज चला जाऊँगा, बेटा, तुम लोग घर जाओ।—कहते हुए वे उतर पड़े और हाथकी छड़ी घुमाते हुए जल्दीसे चले गये।

सुरेशने अचलासे कहा—तुम्हारे बापूजीकी तबीयत आजकल अच्छी मालूम होती है।

अचला उधर ही देख रही थी, बोली—हाँ, आपहीकी कृपासे।

गाड़ीके गलीमें घूमते ही फिर वे दिखाई नहीं दिये। सुरेशने अचलाका दाहना हाथ अपने हाथमें लेकर कहा—तुम जानती हो, इस बातसे मुझे कितनी वेदना होती है! क्या इसीलिए तुम बार बार कहा करती हो अचला?

अचलाने जरा-सी म्लान हँसी हँसकर कहा—इतनी बड़ी कृपाको कहीं भूल न जाऊँ, इसीलिए जब तब याद कर लिया करती हूँ। आपको वेदना पहुँचानेके लिए नहीं करती।

सुरेशने उसके हाथको जरा मसककर कहा—इसीलिए तो यह वेदना मुझे ज्यादा चोट पहुँचाती है।

अचला—क्यों?

सुरेश—मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ कि सिर्फ इस कृपाकी याद करके ही तुम अपने मनमें बल पाती हो। इसके सिवा तुम्हारे पास और कोई भी पूँजी नहीं। सचमुच यही बात है कि नहीं, बताओ तो?

अचला—अगर न बताऊँ?

सुरेश—तबीयत न हो, मत बताओ। मगर तुम क्या मुझे 'तुम' भी न

कह सकोगी ?

अचलाका चेहरा मलिन हो गया। सिर झुकाये हुए धीरेसे बोली—एक दिन कहना ही पड़ेगा, सो तो आप जानते ही हैं।

उसका म्लान मुख देखकर सुरेशने एक गहरी साँस ली। बोला—अगर यह बात है, तो दो दिन पहले कहनेमें क्या दोष है ?

अचलाने जवाब नहीं दिया। अनमनी-सी सड़ककी तरफ देखती हुई बैठी रही। मिनट-भर नीरव रहकर सुरेश अचानक कह उठा—मुझे जान पड़ता है, महिमको सब कुछ मालूम हो गया है।

अचलाने चौंककर मुँह फेरा। उसका एक हाथ जो अब तक सुरेशके हाथमें था, उसे सहसा खींचकर उसने पूछा—आपने कैसे जाना ?

उसका व्यग्र कण्ठ सुरेशके कानोंमें खट-से जा बजा। बोला—नहीं तो, इतने दिन हुए वह आता ज़रूर। पन्द्रह-सोलह दिन बीत चुके।

अचलाने सिर हिलाकर कहा—आजका दिन लेकर उन्नीस दिन होते हैं। अच्छा, बापूजीने क्या उन्हें कोई चिट्ठी दी है, आपको मालूम है ?

सुरेशने संक्षेपमें कहा—नहीं, मुझे नहीं मालूम।

"वे देशसे लौट आये या नहीं, आप जानते हैं ?"

"नहीं, सो भी नहीं मालूम।"

अचलाने गाड़ीके बाहर देखते हुए फिर मृदु कंठसे कहा—तो पता लगाकर बापूजीको एक चिट्ठीमें उन्हें सब बातें लिख देनी चाहिए। अचानक किसी दिन वे यहाँ चले न आयें।

फिर कुछ देरके लिए दोनों चुप हो रहे। सुरेश फिर एक बार उसके शिथिल हाथको अपने हाथमें लेकर धीरेसे कहने लगा—मुझे सबसे बढ़कर दुःख तब होता है अचला, जब मैं सोचता हूँ कि तुम मुझपर कभी किसी दिन श्रद्धा तक न कर सकोगी। तुम्हें हमेशा ऐसा मालूम होता रहेगा कि मैं तुम्हें रुपयेके जोरसे ही छीन लाया हूँ। मेरा दोष—

अचलाने उसी वक्त चटसे मुँह फेरकर उसे रोकते हुए कहा—ऐसी बात आप न कहें, आपको कोई भी दोष मैं नहीं दे सकती।—जरा ठहरकर वह फिर बोली—रुपयेका जोर दुनियामें सभी जगह है, यह तो जानी हुई बात है; परन्तु, उस जोरसे तो आपने काम नहीं लिया। पिताजीको भले ही न मालूम हो,

मगर मैं सब कुछ जान-बूझकर भी अगर आपपर अश्रद्धा करूँ, तो मुझे नरकमें भी स्थान न मिलेगा।

हमेशासे जरा-सी किसी मामूली बातपर सुरेश पिघल जाता है। अचलाकी ज़री-सी प्रिय बातसे ही उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। उन आँसुओंको उसने, अचलाके ही दोनों हाथ उठाकर, उन्हींसे पोंछ लिया और वह कहने लगा—यह न समझना कि इस अपराधका,—इस अन्यायका वजन मैं नहीं समझता, परन्तु, मैं बहुत ही कमजोर हूँ, बहुत ही कमजोर! इस चोटको महिम सह लेगा,—पर मेरी छांती फट जायगी।—कहते कहते बीचहीमें मानो एक कठिन धक्केको सम्हालकर रुँधे हुए गलेसे बोला—तुम मेरी नहीं हो, और किसीकी हो, यह मैं सोच ही नहीं सकता। तुम्हें न पाऊँगा, इस बातका खयाल होते ही मानो मेरे पैरोंके नीचेकी जमीन खिसकने लगती है।

अभी अभी सड़कके किनारेकी गैस-बत्तियाँ जलाई जाने लगी हैं। गाड़ीके गलीमें घुसते ही एक बत्तीका उजाला सुरेशके चेहरेपर पड़ा, और उसकी आँखोंके छलकते आँसुओंपर अचलाकी निगाह पड़ गई। क्षण-भरकी करुणासे उसने जो बात कभी न की थी, आज वही कर बैठी। सामने झुककर अपने हाथसे उसने सुरेशके आँसू पोंछ दिये; और कह डाला—मैं कभी बापूजीकी आज्ञाके खिलाफ नहीं चलती। उन्होंने तो मुझे तुम्हारे ही हाथ सौंप दिया है।

सुरेश अचलाके उस हाथको अपने मुँहसे लगाकर बार बार उसे चूमता हुआ कहने लगा—यही मेरे लिए सबसे बड़ा पुरस्कार है अचला! इससे ज्यादा और मैं नहीं चाहता। मगर, इतनेसे भी कहीं तुम मुझे वंचित न कर देना!

गाड़ी मकानके सामने जाकर खड़ी हो गई। साईस दरवाजा खोलकर हट गया। सुरेश खुद उतरा और जतनके साथ सावधानीसे हाथ पकड़कर उसने अचलाको उतार लिया। उतरते ही दोनोंने एक साथ देखा कि सामने महिम खड़ा है, और देखते ही उसी क्षण ये दोनों नर-नारी एक बारगी मानो पत्थरके रूपमें रूपान्तरित हो गये।

दूसरे ही क्षण अचला अव्यक्त आर्तस्वरमें न जाने कैसा एक शब्द करके और जोरसे अपना हाथ खींचकर पीछे खड़ी हो गई।

महिम मारे आश्चर्यके हतबुद्धि-सा होकर बोला—सुरेश, तुम यहाँ?

सुरेशकी जबानसे पहले तो आवाज ही नहीं निकली। उसके बाद उसने एक

सूखा घूँट भरते हुए अपने सफेद-फक चेहरेपर जबरदस्ती सूखी हँसी खींच लाकर कहा—वाह!—महिम! फिर तो तुम मिले ही नहीं। कहो तो, बात क्या है? कब आये? चलो चलो, ऊपर चलो।—कहता हुआ उसके पास पहुँच गया और उसका हाथ हिलाकर हँसीके तौरपर बोला—अच्छा मजा किया इनके पिताजीने। वे तो चले गये समाज, और घर पहुँचा देनेका भार पड़ा इस गरीबपर। खैर चलो, एक तरहसे अच्छा ही हुआ, नहीं तो महिमसे शायद भेंट ही न होती। कहो, घरपर इतने दिनोंसे कर क्या रहे थे?

महिमने कहा—काम था।—विस्मयके प्रभावसे अपनी अचलासे नमस्कार करनेकी बात भी उसे याद नहीं रही।

सुरेशने उसे एक धक्का देते हुए कहा—अच्छे आदमी हो तुम यार! हम लोग फिकर करते करते परेशान हो गये,—एक चिट्ठी तक नहीं दी? खड़े क्यों रह गये, ऊपर चलो।—कहता हुआ उसे एक तरहसे जबरदस्ती ही धकेलकर ऊपर ले गया। परन्तु, बैठनेके कमरेमें जाकर जब सब बैठ गये, तब अत्यन्त अकस्मात् उसकी अस्वाभाविक प्रगल्भता एकबारगी रुक गई। गैस-बत्तीके तीव्र प्रकाशमें चेहरा स्याह पड़ गया। दो तीन मिनट तक किसीने कोई बात नहीं की। महिमने एक बार मित्रकी तरफ और फिर अचलाकी तरफ शून्य दृष्टिसे देखकर सूखे गलेसे पूछा—और सब खबर तो अच्छी है?

अचलाने गरदन हिलाकर जवाब दे दिया, पर मुँह उठाकर उसकी तरफ देखा नहीं। महिमने कहा—मैं बिलकुल दंग रह गया हूँ,—लेकिन, सुरेशसे तुम लोगोंकी जान-पहचान हुई कैसे?

अचलाने मुँह उठाकर मानो जान हथेलीपर रखके कह डाला—इन्होंने बापूजीका चार हजारका कर्ज चुका दिया है।

उसका चेहरा देखकर महिमके मुँहसे सिर्फ इतना निकला—उसके बाद?

“उसके बाद तुम बापूजीसे पूछ लेना।” कहकर अचला जल्दीसे उठके बाहर चली गई।

महिम सन्न होकर कुछ देर बैठा रहा, अन्तमें मित्रकी तरफ देखकर बोला—बात क्या है सुरेश?

सुरेशने उद्धत भावसे जवाब दिया—तुम्हारी तरह रुपयोंमें ही मेरा प्राण नहीं है। कोई शरीफ आदमी विपत्तिमें पड़कर सहायता चाहता है, तो मैं दे देता

हूँ—बस इतनी-सी बात है। वे अगर अदा न कर सकें, तो मैं समझता हूँ, उसमें मेरा दोष नहीं। फिर भी अगर तुम मुझे ही दोषी समझो, तो एक बार नहीं सौ बार समझा करो; मुझे कोई आपत्ति नहीं।

मित्रकी इस असंबद्ध कैफियत और उसके कहनेका विलक्षण ढंग देखकर महिम सचमुच ही मूढ़की भाँति देखता रह गया, और अन्तमें बोला—"अचानक मैं तुम्हें दोषी क्यों समझने लगा, इसका कोई मतलब नहीं समझमें आ रहा है, सुरेश। कृपा करके और जरा खुलासा कहो, बगैर कहे तो मैं समझ नहीं सकूँगा।

सुरेशने पहलेकी तरह ही रूखे स्वरमें कहा—खुलासा और क्या कहूँ? कहनेको और है ही क्या?

महिमने कहा—सो तो है। मैं उस दिन जब घर गया था, तब इन्हें तुम नहीं पहचानते थे। इस बीचमें कैसे तो इतना घनिष्ठ परिचय हो गया, और कहाँसे तुम्हारे मनमें एक ब्राह्मण-परिवारको विपत्तिके वक्त चार हजार रुपये देने लायक उदारता आ गई,—कमसे कम इतना समझा देनेसे मैं कृतार्थ हो जाऊँगा सुरेश!

सुरेशने कहा—सो हो सकते हो। पर, मेरे पास बात करनेके लिए इतना समय नहीं है,—अभी जाना है मुझे। इसके सिवा, केदार बाबूसे ही पूछ लेना न, वे सब कुछ कह देनेके लिए तुम्हारी बाट भी देख रहे हैं।

"अच्छी बात है।" कहकर महिम उठके खड़ा हो गया। बोला—सुननेको बड़ी तबीयत चल रही थी,—मगर, अभी तो उनके लिए बैठकर बाट देखनेका मेरे पास समय नहीं है। मैं चल दिया—

सुरेश स्थिर होकर बैठा रहा, कुछ बोला नहीं।

महिमने बाहर पहुँचकर देखा—सामनेकी रेलिंग पकड़े उसीकी तरफ निगाह किये अँधेरेमें अचला खड़ी है। मगर जब देखा कि उसने पास आने या बात करनेकी जरा भी कोशिश नहीं की, तो वह भी चुपचाप सीढ़ीसे धीरे धीरे नीचे उतर गया।

१०

कई एक अत्यन्त जरूरी दवाएँ लेने महिम कलकत्ते आया था; इसलिए रातकी ही गाड़ीसे घर लौट गया। सुरेशने मेसमें तलाश किया, मालूम हुआ कि वहाँ

वह गया ही नहीं। चारेक दिन बाद शामके वक्त केदार बाबूकी बैठकमें शायद यही चर्चा हो रही थी। केदार बाबूको बायस्कोपका नया शौक चढ़ा था; बात थी कि चाय पीनेके बाद आज भी वे लोग घूमने निकलेंगे। नीचे सुरेशकी गाड़ी खड़ी थी, इतनेमें महिम अकस्मात् बुरे ग्रहकी तरह धीरे धीरे आकर दरवाजेके पास खड़ा हो गया।

सबने मुँह उठाकर देखा और सभीके चेहरेके भावमें एक तरहका परिवर्तन दिखाई दिया।

केदार बाबूने नीरस मुखसे ज़बरन जरा हँसकर उसकी अभ्यर्थना की—आओ महिम, और सब खबर तो अच्छी है ?

महिम नमस्कार करके भीतर जाकर बैठ गया। घरपर इतने दिन लग जानेका कारण पूछा गया तो उसने सिर्फ इतना ही जवाब दिया कि ‘ जरूरी काम था। ’ सुरेश टेबिलपरसे उस दिनका अखबार उठाकर पढ़ने लगा, और अचला बगलकी चौकीपरसे अपना ‘ कसीदा ’ उठाकर उसमें मशगूल हो गई। इसलिए बातचीत अकेले केदार बाबूसे ही होने लगी।

सहसा किसी मौकेसे अचला उठकर बाहर चली गई और मिनट-भर बाद ही लौट आई। इसके क्षण-भर बाद ही सिरके ऊपरका पंखा धीरे-धीरे चलने लगा। अचानक हवा पाकर केदार बाबू खुश हो उठे और बोले—बहुत समझो, जो पंखा खींचनेवालेकी इतनी देर बाद मेहरबानी हो गई।

सुरेशने तीक्ष्ण और वक्र दृष्टिसे देख लिया कि महिमके माथेपर पसीनेकी बूँदें चमक रही हैं। क्यों अचला उठके गई थी और क्यों पंखा खींचनेवालेकी अचानक मेहरबानी हुई,—सारा इतिहास उसके मस्तिष्कमें बिजलीकी तरह दौड़ने लगा और जिस हवासे केदार बाबूको खुशी हुई, उसी हवासे उसका सारा शरीर जल उठा। सहसा वह घड़ी निकालकर तीखे कंठसे बोल उठा—पाँच बज गये, अब देर करनेसे तो काम नहीं चलेगा केदार बाबू !

बातचीत बन्द करके केदार बाबूके चायके लिए चिल्लाते ही बेहरा सारा सामान लेकर हाजिर हो गया। कसीदा रखकर अचलाने दो प्याले चाय बनाकर सुरेश और अपने पिताके सामने बढ़ा दी। केदार बाबूने पूछा—तुम नहीं पीओगी बेटी ?

अचलाने गरदन हिलाकर कहा—नहीं बापूजी, बड़ी गरमी है।

सहसा उनकी दृष्टि महिमपर जा पड़ी, उन्होंने व्यस्त होकर कहा—यह क्या, महिमको नहीं दी ! तुम क्या चाय नहीं पीओगे महिम ?

जवाब देनेके पहले ही अचलाने घूमकर उसके मुँहकी तरफ देखके स्वाभाविक मृदु कंठसे कहा—नहीं, इतनी गरमीमें चाय पीनेकी तुम्हें जरूरत नहीं। इसके अलावा, इस वक्त तो तुम्हें चाय बरदाश्त भी नहीं होती।

महिमकी छातीपरसे मानो किसीने पहाड़का असह्य भारी-सा बोझा माया-मंत्रसे हटाकर फेंक दिया। उससे कुछ बोला न गया, वह सिर्फ अव्यक्त विस्मयसे निर्निमेष दृष्टिसे देखता रहा। अचलाने कहा—जरा ठहर जाओ, मैं लाइम-जूस लेकर शरबत बनाये लाती हूँ। कहकर वह सम्मतिकी प्रतीक्षा किये बिना ही कमरेसे बाहर चली गई। सुरेश दूसरी तरफ मुँह फेरकर कठपुतलीकी तरह बैठा चाय तो पीने लगा, पर उसकी प्रत्येक बूँद उसके मुँहमें विस्वाद और कडुई मालूम होने लगी।

चाय पीना खतम करके केदार बाबू झटपट कपड़े पहनकर तैयार हो आये। देखा कि अचला अपनी जगहपर बैठी एकाग्र चित्तसे कसीदा काढ़ रही हैं। वे व्यस्त और विस्मित होकर बोले—अभी तक बैठी कसीदा काढ़ रही हो, तैयार नहीं हुई ?

अचलाने मुँह उठाकर शान्तभावसे कहा—मैं नहीं जाऊँगी बापूजी।

"नहीं जाओगी ! यह कैसी बात ?"

"नहीं बापूजी, आज तुम लोग जाओ, मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।" कहकर वह जरा हँस दी।

सुरेशने अपने अभिमान और गूढ़ क्रोधको दबाते हुए कहा—चलिए केदार बाबू, हम लोग चलें। उनकी शायद तबीयत ठीक नहीं, जरूरत क्या है ज्यादा कहने-सुननेकी ?

केदार बाबू उसकी तरफ देखते ही उसके भीतरी क्रोधको समझ गये। लड़कीसे बोले—तुम्हारी तबीयत क्या कुछ खराब है ?

अचलाने कहा—नहीं बापूजी, तबीयत क्यों खराब होने लगी, मैं अच्छी हूँ।

सुरेश महिमकी तरफ बिलकुल पीठ दिये खड़ा था। उसके चेहरेका रुख न भाँप सका; बोला—हम लोग चलें, चलिए केदार बाबू, उन्हें घरपर कोई जरूरत हो सकती है, जबरदस्ती ले चलनेकी क्या जरूरत है ?

केदार बाबूने कठोर स्वरमें पूछा—घरपर तुम्हें काम है ?

अचलाने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

केदार बाबू अकस्मात् चिल्ला उठे—कह रहा हूँ चलो। कहना नहीं मानती, जिद्दिन लड़की !

अचलाके हाथका कसीदा स्खलित होकर नीचे गिर गया। वह दंग चेहरेसे दोनों आँखें फाड़कर पहले सुरेशकी तरफ, फिर पिताकी तरफ देखती रही, और अकस्मात् मुँह फेरकर जल्दीसे उठके बाहर चल दी।

सुरेशका चेहरा स्याह पड़ गया, बोला—आप हर बातमें जबरदस्ती करते हैं। लेकिन मैं अब देर नहीं कर सकता,—इजाजत दें तो जाऊँ।

केदार बाबू अपने अभद्र आचरणसे मन ही मन लज्जित हो रहे थे,—सुरेशकी बातपर गुस्सा हो उठे। पर, गुस्सा जाके पड़ा महिमपर। वह अत्यन्त व्यथित और क्षुब्ध होकर उठना चाहता था। इतनेमें केदार बाबूने कह दिया—तुम्हें क्या कोई जरूरी काम है महिम ?

महिम अपनेको सम्हालकर उठके खड़ा गया, बोला—नहीं।

केदार बाबू चलनेको तैयार होकर बोले—तो आज हम लोग जरा जल्दीमें हैं, और किसी दिन आनेसे—

महिमने कहा—जी हाँ, आऊँगा। लेकिन आनेकी क्या कोई खास जरूरत है ?

केदार बाबूने सुरेशको सुनाते हुए कहा—मुझे अपने तईं कोई जरूरत नहीं। पर हाँ, तुम जरूरत समझो तो आना, दो-चार विषयोंपर आलोचना की जायगी।

तीनों जने बाहर चल दिये। नीचे आकर सुरेश महिमका जरा भी खयाल न करके केदार बाबूको लेकर गाड़ीमें बैठ गया। कोचवानने गाड़ी हाँक दी।

महिम कुछ दूर आगे बढ़ा ही था कि पीछेसे अपना नाम सुनकर घूमकर खड़ा हो गया, देखा कि केदार बाबूका बेहरा है। उस बेचारेने हाँफते हुए पास आकर कागजका एक टुकड़ा उसके हाथपर रख दिया। उसपर पेन्सिलसे सिर्फ लिखा था—'अचला'। बेहराने कहा—एक बार आपको बुलाया है।

लौटकर सीढ़ियोंपर पैर रखते ही देखा कि अचला सामने खड़ी है। उसकी सुर्ख आँखोंके पलक अब तक भीगे हुए हैं। पास पहुँचते ही उसने कहा—तुम क्या अपने कसाई मित्रके हाथ मुझे जिबह करनेके लिए छोड़े जाते हो? जो

तुम्हारे साथ इतनी जबरदस्त कृतघ्नता कर सकता है, उसके हाथ मुझे सौंपे जाते हो क्या सोचकर?—कहते कहते ही वह टपटप आँसू गिराती हुई रोने लगी।

महिम सन्न होकर खड़ा रहा। अचला दो-एक मिनट बाद आँचलसे आँसू पोंछकर बोली—शरमानेके लिए अब मेरे पास समय नहीं है। देखूँ तुम्हारा दाहना हाथ।—कहते हुए उसने खुद ही महिमका दाहना हाथ अपनी ओर खींचकर, अपनी उँगलीसे सोनेकी अँगूठी खोलकर उसकी उँगलीमें पहनाते हुए कहा—अब मुझसे सोचा नहीं जाता। अब तुम्हें जो कुछ करना हो, करना।

इतना कहकर उसने घुटने टेककर महिमको नमस्कार किया, और वह धीरे धीरे अपने कमरेमें चली गई।

महिमने भली-बुरी कोई भी बात नहीं कही। वह बहुत देर तक रेलिंगके सहारे चुपचाप खड़ा रहा, और फिर धीरे धीरे सीढ़ीसे उतरकर कमरेसे बाहर चला गया।

११

शामके बाद सिर झुकाये धीरे धीरे महिम जब अपने बासेकी तरफ़ जा रहा था, तब उसका चेहरा देखकर किसीमें भी यह कहनेका सामर्थ्य नहीं था कि ठीक उसी समय उसके प्राण मारे यंत्रणाके बाहर निकलनेके लिए उसीके हृदयकी दीवारमें जी-जानसे द्वार खोदनेमें लगे हुए थे। कैसे सुरेश यहाँ आया, कैसे इतना घनिष्ठ परिचय हुआ,—इस सब छोटे-मोटे इतिहासको तो वह न जान सका, पर असल बात उससे छिपी न रही। केदार बाबूको वह पहचानता था। जहाँसे उन्हें रुपयेकी बू आई है वहाँसे वे आसानीसे किसी भी तरह मुँह नहीं मोड़ेंगे,—इस विषयमें उसे जरा भी सन्देह न था। सुरेशको भी वह बचपनसे नाना प्रकारसे देखता आया है। दैवयोगसे जिसे वह चाहने लगता है, उसे पानेके लिए वह क्या नहीं दे सकता, इसकी कल्पना करना भी कठिन नहीं। रुपया तो कोई चीज़ ही नहीं,—वह तो हमेशासे ही उसके लिए तुच्छ चीज है। एक दिन जिसको बचानेके लिए मुंगेरकी गंगामें जिसने अपने प्राणोंकी भी परवा नहीं की, आज अगर वह और एकके प्रेमके प्रबल मोहमें उसी महिमकी तरफ़ निगाह उठाकर न देखे, तो उसे वह कैसे दोष दे सकता है? इसलिए, इस घटनाको एक मर्मान्तक दुर्घटना समझनेके सिवा किसीपर उसने कोई खास दोषारोप नहीं किया। परन्तु ये जो इतनी विरुद्ध और प्रचण्ड शक्तियाँ सहसा जाग उठी हैं, उन

सबको तोड़कर अचला उसके पास लौट आयेगी, उसे यह विश्वास न था। इसीसे उसकी अन्तिम बातने,—उसके अन्तिम आचरणने क्षण-भरके लिए चंचल कर देनेके सिवा महिमको सचमुचका कोई भरोसा नहीं दिया। उस अँगूठीकी तरफ बार बार देखनेपर भी उसे जरा भी सान्त्वना नहीं मिली। फिर भी अन्तिम फैसला हो जाना अत्यन्त ज़रूरी है। इस तरह अपनेको भुलावा देकर अब एक क्षण भी नहीं काटा जा सकता। जो होना है सो हो, इसकी एक चरम मीमांसा उसे कर ही लेना है। इस संकल्पको पक्का करके ही आज वह रातके आठ बजेके बाद अपने दीन-दरिद्र छात्रावासमें पहुँचा।

दूसरे दिन तीसरे पहर केदार बाबूके घर जाकर उसने सुना कि अभी अभी सब बाहर गये हैं,—कहीं निमंत्रण है। उसके दूसरे दिन फिर गया, तब भी भेंट नहीं हुई। बेहराने कहा—सब बायस्कोप देखने गये हैं, लौटनेमें ज्यादा रात होगी। 'सब' में कौन कौन हैं, सो उसने बिना पूछे ही अन्दाज लगा लिया। अपमान और अभिमान चाहे जितना बड़ा क्यों न हो, लगातार दो दिन लौट आना ही उस जैसे आदमीके लिए काफी हो सकता था; परन्तु, हाथकी अँगूठीने उसे अपने बासेमें न टिकने दिया और तीसरे दिन फिर उसे ढकेल कर भेज दिया। आज सुना कि बाबू घरपर हैं—ऊपरके कमरेमें बैठे चाय पी रहे हैं।

महिमको दरवाजेके पास देखकर केदार बाबूने मुँह उठाकर गम्भीर स्वरमें सिर्फ इतना कहा—आओ महिम!

महिमने हाथ उठाकर चुपके-से नमस्कार किया।

दूर खुली खिड़कीके पास एक सोफेपर अगल-बगल अचला और सुरेश बैठे थे। अचलाकी गोदमें एक भारी तसवीरोंकी किताब थी। दोनों मिलकर तसवीरें देख रहे थे। सुरेशने क्षण-भरके लिए नजर उठाकर देखा, और फिर तसवीर देखनेमें लग गया; पर अचलाने आँख उठाकर भी नहीं देखा। उसका झुका हुआ चेहरा दिखाई तो नहीं दिया, पर वह जिस तरह एकान्त आग्रहके साथ किताबके पन्नेकी तरफ झुकी रही, उससे ऐसा मालूम होना कोई असगत नहीं था कि पिताकी आवाज और आगन्तुकके पैरोंकी आहट उसके कानोंतक पहुँची ही नहीं।

महिम कमरेमें घुसकर एक कुरसी खींचकर बैठ गया। केदार बाबूने बहुत देरतक फिर कोई बात नहीं की—वे थोड़ी थोड़ी करके चाय पीने लगे। प्याला

जब खतम हो गया और आगे चुप रहना बिलकुल ही असम्भव हो गया, तब उसे नीचे रखते हुए बोले—तो अब तुम क्या कर रहे हो ? तुम्हारा कानूनका रिज़ल्ट निकलनेमें तो अभी महीने-भरकी देर मालूम होती है ।

महिमने सिर्फ कहा—जी हाँ ।

केदार बाबूने कहा—मान लो कि पास हो गये, और पास तो तुम होओगे ही, इसमें कोई सन्देह नहीं,—मगर, कुछ दिन प्रैक्टिस करके हाथमें कुछ रुपये बगैर जमाये तो तुम और किसी तरफ ध्यान दे ही नहीं सकते । क्यों सुरेश, महिमकी गार्हस्थिक अवस्था तो, सुनते हैं, उतनी अच्छी नहीं ?

सुरेशने बात नहीं की । महिमने जरा हँसकर धीरे धीरे कहा—प्रैक्टिस करते ही हाथमें रुपये आ जायँगे, इसका भी तो कोई निश्चय नहीं ।

केदार बाबूने सिर हिलाते हुए कहा—नहीं, सो तो नहीं है,—ईश्वरके हाथ है, मगर कोशिश करनेसे कोई भी काम असाध्य नहीं । हमारे शास्त्रकारोंने कहा है 'पुरुष-सिंह'; तुम्हें वही 'पुरुष-सिंह' होना होगा । और किसी तरफ ध्यान नहीं होना चाहिए, सिर्फ उन्नति और उन्नति । उसके बाद संसार-धर्म,—नहीं तो वह महापाप है !—फिर सुरेशकी तरफ देखकर कहा—क्यों सुरेश, सन्तानोंको अच्छी तरह शिक्षा नहीं दिला सकते, उन्हें खिला-पिला नहीं सकते,—इसी लिए तो हिन्दुओंकी अधोगति हो रही है ? हम ब्राह्मसमाजी भी अगर अच्छे दृष्टान्त न दिखायें, तो सभ्य-जगत्में हम किसीके आगे हरगिज भी मुँह नहीं दिखा सकते । ठीक है कि नहीं ? क्या कहते हो सुरेश ?

सुरेश पूर्ववत् मौन रहा । महिम भीतर ही भीतर असहिष्णु होकर बोला—आपका उपदेश मैं याद रखूँगा । मगर आपने क्या इसी बातकी आलोचना करनेके लिए मुझे बुलाया था ?

केदार बाबू उसके मनका भाव समझ गये; बोले—नहीं, सिर्फ इसी बातके लिए नहीं, और भी बातें हैं, मगर,—इतना कहकर उन्होंने सामनेके सोफेकी तरफ देखा ।

सुरेश उठके खड़ा हो गया, बोला—हम लोग चलकर जरा उस कमरेमें बैठें,—कहकर जरा झुका और उसने अचलाकी गोदपर रखी हुई तसवीरकी किताब उठा ली । मगर उसका यह इशारा अचलाकी तरफसे बिलकुल निष्फल हो गया । वह जैसी बैठी थी, वैसी ही बैठी रही; उठनेका उसने लेशमात्र भी उद्योग

नहीं किया। केदार बाबूने उसपर लक्ष्य करके कहा—तुम दोनों जरा उस कमरेमें जा बैठो बिटिया, महिमसे मुझे जरा कुछ बातचीत करनी है।

अचलाने मुँह उठाकर पिताके मुँहकी तरफ देखके कहा—मैं रहूँगी बापूजी।

सुरेशने कहा—अच्छा, ठीक है, मैं ही जाता हूँ। कहकर वह एक तरहसे गुस्सा होकर ही हाथकी किताब अचलाकी गोदपर डालकर दनदनाता हुआ कमरेसे बाहर चला गया!

कन्याकी इस ढिठाईसे केदार बाबू खुश नहीं हुए, यह बात उन्होंने अपने मुँहके भावसे स्पष्ट जाहिर कर दी; मगर जिद भी नहीं की। कुछ देर रूठे-मुँह चुपचाप बैठे रहनेके बाद बोले—महिम, तुम यह न समझना कि मैं तुमसे नाराज़ हूँ; बल्कि तुमपर मेरी काफी श्रद्धा है। इसीसे मित्रताके तौरपर उपदेश देता हूँ कि इस समय किसी तरहकी जिम्मेवारी सिरपर लेकर तुम अपनेको अकर्मण्य न बना डालना। अपनी उन्नति करो, अपनेको दक्ष बना लो, उसके बाद जिम्मेवारी उठानेको तो काफी समय पड़ा है।

महिमने मुँह फेरकर एक बार जरा अचलाकी तरफ देखा। उसने आँखें चार होते ही आँखें नीची कर लीं। तब फिर महिमने उसके पिताकी तरफ देखकर कहा—आपकी आज्ञा मेरे सिर माथे है; मगर क्या आपकी कन्याकी भी यही इच्छा है?

केदार बाबू उसी वक्त कह उठे—जरूर! जरूर!—फिर क्षण-भर ठहरकर बोले—कमसे कम यह तो निश्चित ही है कि सब कुछ जान-बूझकर तुम्हारे हाथ अपनी लड़कीको बहा नहीं दे सकता।

महिमने शान्त स्वरमें कहा—अँग्रेजोंकी एक प्रथा है, कि ऐसी हालतमें वे परस्पर एक दूसरेके लिए प्रतीक्षा करते रहते हैं। आपका क्या मैं यही अभिप्राय समझूँ?

केदार बाबू सहसा आग-बबूला हो उठे; बोले—देखो महिम, मैंने तुम्हें इसलिए नहीं बुलाया कि तुम्हारे आगे मैं हलफ उठाऊँगा। तुम जिस तरहका व्यवहार हम लोगोंके साथ कर रहे हो, अगर कोई दूसरा बाप होता तो इसपर महाभारत मच जाता। मगर मैं अत्यन्त शान्तिप्रिय आदमी हूँ, किसी तरहका झगड़ा-टंटा पसन्द नहीं करता; इसीसे जहाँतक बना, मीठी बातोंमें अपने मनका भाव तुम्हें जता दिया। इसपर तुम प्रतीक्षा करते रहोगे या नहीं रहोगे, अँग्रेज

लोग क्या करते हैं क्या नहीं करते,—इतनी कैफियत देनेकी तो मुझे कोई जरूरत नहीं महसूस होती। इसके अलावा, हम अँग्रेज नहीं हैं, भारतीय हैं। हमारे यहाँ लड़की जब बड़ी हो जाती है तो बाप-माको नींद हराम हो जाती है। मुँहमें अन्न-जल नहीं रुचता,—क्या तुम खुद इस बातको नहीं जानते?

महिमका चेहरा लहमें-भरमें सुर्ख हो उठा; किन्तु, वह अपनेको सम्हालकर धीरताके साथ बोला—मैंने क्या व्यवहार किया है जिसके लिए कए महाभारत मच जाता, यह प्रश्न मैं आपसे नहीं करना चाहता। सिर्फ आपकी कन्याके मुँहसे एक बार सुनना चाहता हूँ कि उनका भी यही अभिप्राय है या नहीं? —कहकर वह खुद ही उठकर अचलाके सामने जा खड़ा हुआ और बोला—क्यों, यही ठीक है?

अचलाने न मुँह उठाया, न बात की।

एक उफनती हुई भापको जबरन रोकते हुए महिमने फिर कहा—तुम्हारे मनकी बात एकान्तमें जानने, बगैर पूछे जाननेका अवकाश मुझे नहीं मिला, इसके लिए मैं माफी चाहता हूँ। उस दिन शामको आवेशमें आकर तुमने जो काम कर डाला है, उसके लिए तुम्हें कोई जवाबदेही न करनी होगी। सिर्फ एक बार कह दो, उस अंगूठीको वापस चाहती हो या नहीं?

सुरेश आँधीकी तरह कमरेमें घुसकर बोला—मुझे माफ कीजिएगा केदार बाबू, अब मेरे लिए एक मिनट भी ठहरना मुश्किल है।

उपस्थित सभी कोई मौन-आश्चर्यके साथ आँख उठाकर देख उठे। केदार बाबूने कहा—क्यों?

सुरेशने अभिनयके ढँगपर दोनों हाथ बढ़ाकर कहा—नहीं नहीं,—इस गलतीके लिए मुझे क्षमा नहीं मिल सकती। मेरा अन्तरंग मित्र आज प्लेगमें मर रहा है, और मैं जो हूँ सो सब भूल-भालकर यहाँ बैठा वृथा समय नष्ट कर रहा हूँ!

केदार बाबूने घबराकर कहा—कह क्या रहे हो सुरेश, प्लेग? जाओगे क्या तुम वहाँ?

सुरेशने जरा हँसकर कहा—जरूर! बहुत पहले ही मुझे वहाँ जाना चाहिए था।

केदार बाबू अत्यन्त शंकित हो उठे, बोले—मगर प्लेगमें? वे क्या आपके ऐसे खास कोई आत्मीय—

सुरेशने कहा—आत्मीय! आत्मीयसे बहुत ज्यादा बड़े हैं, केदार बाबू!

फिर महिमके प्रति कटाक्ष करके उसने यह पहली ही बात कही, कहा—महिम, अपने निशीथको कल रातसे ही प्लेग हो गई है, बचनेकी भी आशा नहीं मालूम होती। मुझे तुमसे भी एक बार कह देना चाहिए,—जाओगे देखने ?

महिम निशीथको पहचान न सका, बोला—कौन निशीथ ?

"कौन निशीथ ! क्या कहते हो तुम ? इतनेहीमें अपने निशीथको भूल गये ? जिसके साथ पूराका पूरा सेकेण्ड ईयर पढ़ते रहे, इतनी बड़ी विपत्तिके वक्त उसका खयाल ही नहीं आ रहा है ?" कहकर उसने गरदन मोड़कर एक बार अचलाके चेहरेकी तरफ देखा, और श्लेषके स्वरमें कहा—सो अब भला क्यों खयाल आने लगा ! प्लेग है न !

इस कटाक्षको महिमने चुपचाप सहकर पूछा—वे क्या भवानीपुरसे आया करते थे ?

सुरेशने व्यंग-पूर्वक जवाब दिया—जी हाँ। लेकिन निशीथ तो हम लोगोंमें दो-चार जने नहीं थे महिम, जो इतनी देरतक खयाल ही नहीं आया ! मैं पूछता हूँ, जाओगे क्या ?

महिमने उसे पहचान लेनेके बाद पूछा—निशीथ आजकल कहाँ रहता है ?

सुरेशने कहा—और कहाँ रहेगा ? अपने घर रहता है भवानीपुर। इस समय उससे भेंट करना क्या कर्तव्य नहीं मालूम होता तुम्हें ? मैं डाक्टर हूँ, मुझे तो जाना ही पड़ेगा; और इतनी बड़ी मित्रताको भूल न सके हो तो तुम भी मेरे साथ चल सकते हो। केदार बाबू, आप लोगोंकी बात शायद खतम हो गई होगी। आशा है, कमसे कम कुछ देरके लिए ही इन्हें एक बार छुट्टी दे सकेंगे ?

यह कटाक्ष किसके प्रति हुआ, केदार बाबू ठीक समझ न सके, उद्विग्न चेहरेसे एक बार महिमके और एक बार लड़कीके चेहरेकी तरफ देखने लगे। अपने इस बड़े आदमी भावी दामादका मान-अभिमान किन किन बातोंसे होता है और कितनी-सी बातपर वह विक्षुब्ध हो उठता है, इस बातको वृद्ध केदार बाबू आज तक ठीक तरहसे नहीं जान पाये थे। उनके मुँहसे कोई बात नहीं निकली। महिम भी हतबुद्धिकी तरह चुपचाप बैठा हुआ टुकुर टुकुर देखता रहा।

देखते देखते अचलाका सारा चेहरा सुर्ख हो उठा। वह धीरेसे उठी और हाथकी किताब सामनेकी टेबिलपर रखती हुई, इतनी देर बाद, बोली—तुम डाक्टर हो, तुम्हें तो जाना ही चाहिए; मगर इनकी कानूनी किताबोंमें तो प्लेगकी

चिकित्साके बारेमें कुछ लिखा नहीं, फिर ये किस लिए जायँ वहाँ?

अचलाके मुँहसे इस तरहका अप्रत्याशित जवाब सुनकर सुरेश दंग रह गया। परन्तु दूसरे ही क्षण कह उठा—मैं वहाँ डाक्टरी करने नहीं जा रहा हूँ, उसके यहाँ डाक्टरोंकी कमी नहीं। मैं जा रहा हूँ मित्रकी सेवा करने। मित्रताको मैं अपने प्राणोंसे भी बड़ी चीज समझता हूँ।

जरा-सा निष्ठुर हँसीका आभास अचलाके ओठोंपर खेल गया; उसने कहा—सभी कोई तुम सरीखे महान् हो जायँ यह तो कोई बात नहीं है। और, इतना महान् मित्रताका भाव अगर इनमें न हो, तो इसे मैं कोई शरमकी बात भी नहीं समझती। खैर कुछ भी हो, वहाँ ये किसी भी हालतमें नहीं जा सकते।

सुरेशका चेहरा काला स्याह पड़ गया। केदार बाबू सशंकित हो उठे। डरते डरते कहने लगे—यह सब तू क्या कह रही है अचला? सुरेश जैसे,—सच तो है—निशीथ बाबू जैसे—

अचला बीचहीमें बोल उठी—निशीथ बाबूको पहले तो ये पहचान ही नहीं पाये थे। इसके सिवा वे डाक्टर हैं,—वे जा सकते हैं। लेकिन दूसरे किसीको व्यर्थ ही खतरेमें क्यों खींच ले जाना?

चोट लगनेपर सुरेशको किसी बातका होश हवास नहीं रहता। वह टेबिलपर एक जोरका मुक्का जमाकर जो मनमें आया जोर-जोरसे बकने लगा—मैं कायर नहीं हूँ—प्राणोंका मुझे डर नहीं। फिर महिमकी तरफ इशारा करके बोला—इस नमकहरामहीसे पूछ देखो, मैंने इसे मरतेसे बचाया था या नहीं?

अचलाने गर्वित स्वरमें कहा—नमकहराम ये हैं! क्यों नहीं! मगर, जिसे किसी समय बचाया जाता है, शायद उसे तबीयत चाहे तब मारा भी जा सकता है?

केदार बाबू हतबुद्धिकी भाँति कहने लगे—चुप भी रह अचला!—जाने दो सुरेश! यह सब हो क्या रहा है, बताओ तो?

सुरेश सुर्ख़ आँखोंसे केदार बाबूकी तरफ देखके बोला—मैं प्लेगमें जा सकता हूँ, इसमें कोई हानि नहीं! महिमकी जान ही जान है, मेरी जानकी कोई कीमत ही नहीं! देख न लिया आपने!

मारे लज्जा और क्षोभके अचला रो दी। फिर रुद्धस्वरमें कहने लगी—इनकी जान ये दे सकते हैं, मैं मना नहीं कर सकती; लेकिन जहाँ मुझे रोकनेका पूरा अधिकार है, वहाँ मैं रोकूँगी ही। मैं ऐसी जगह इन्हें हरगिज नहीं जाने दूँगी।

—कहती हुई वह जा ही रही थी कि केदार बाबू जोरसे चिल्ला उठे—कहाँ जाती है अचला !

अचला ठिठकके खड़ी हो गई, बोली—नहीं बापूजी, दिन-रात इतना क्लेश मुझसे नहीं सहा जाता। जो बिलकुल असम्भव है, जिसे मैं प्राण रहते स्वीकार नहीं कर सकती, उसी बातको लेकर तुम लोग मुझे दिन-रात छेदते रहते हो—कहती हुई वह अपनी उफनती हुई रुलाईको दबाती हुई तेजीसे बाहर चली गई। वृद्ध केदार बाबू बुद्धिभ्रष्टकी तरह कुछ देर तो देखते रह गये; और अन्तमें बार बार कहने लगे—जितना देखो सब लड़कपन—भला यह कोई बात है, बताओ तो !

१२

महीना-भर बीत गया। केदार बाबू राजी हो गये हैं, महिमके साथ अचलाका आगामी रविवारको विवाह होना निश्चित हो गया है। उस दिन सुरेश जो वारदात कर गया था, वह दर-असल केदार बाबूके मनमें चुभ गई थी। परन्तु, उस अपमानकी गहराई नापकर ही उन्होंने महिमपर प्रसन्न होकर अन्तमें सम्मति दी हो, सो बात नहीं। सुरेश खुद ही न जाने कहाँ ला-पता हो गया है,—अब तक उसका कोई पता ही नहीं लग सका। सुननेमें आया है कि उसी रातको वह पछाँहकी तरफ कहीं चला गया है। कब लौटेगा, सो भी कोई नहीं बता सकता।

उस दिन रुलाई दबानेके लिए अचला जब कमरेसे बाहर चली गई थी, तब बहुत देर तक तीनों जने मुँह स्याह किये बैठे रहे थे। अन्तमें बोला था पहले-पहल सुरेश ही। केदार बाबूके मुँहकी तरफ देखकर उसने कहा था—अगर आपको कोई आपत्ति न हो, तो आपके सामने ही मैं आपकी कन्यासे कुछ बातें करना चाहता हूँ।

केदार बाबू व्यस्त होकर बोले—बड़ी मुश्किल है ! तुम बात करोगे, इसमें आपत्तिकी कौन-सी बात है सुरेश ? अभी तुम लोगोंका लड़कपन नहीं गया—

“ तो एक बार बुलवाइए, मेरे पास ज्यादा वक्त नहीं है ! ”

उसके चेहरे और कंठ-स्वरमें अस्वाभाविक गम्भीरता देखकर केदार बाबूको मन ही मन आशंका-सी होने लगी। परन्तु जबरदस्ती जरा हँसकर वे फिर उसी बातको दुहराने लगे—जितनी देखो सब लड़कपनकी बातें !—मगर जरा अपनेको उसे सम्हाल तो लेने दो,—नहीं, तुम समझे नहीं सुरेश, प्रेम-पलेगका नाम

सुनते ही,—आखिर लड़कियोंका मन ठहरा न ! एक बार नाम सुना नहीं कि मारे डरके होश गायब— समझे कि नहीं बेटा—

सुरेशकी मानसिक अवस्था किसी भी तरहकी कैफियतपर ध्यान देने लायक नहीं थी। वह अधीर होकर कह उठा—वास्तवमें केदार बाबू, मेरे पास इतना समय नहीं है कि किसीकी बाट देखता रहूँ !

"सो तो ठीक है ! सो तो ठीक है !—कौन है रे वहाँ ?"—पुकारते हुए केदार बाबूने महिमकी तरफ वक्र दृष्टिसे देखा। महिम उठके खड़ा हो गया और नमस्कार करके चुपचाप बाहर चला गया।

केदार बाबू खुद जाकर जब अचलाको बुला लाये, तब अपराह्न-सूर्यकी रक्तिम रश्मियाँ पश्चिमकी खिड़की और दरवाजोंमेंसे सारे घरमें बिखर रही थीं। उस प्रकाशसे उद्भासित उस तरुणीकी छरछरी देहकी तरफ देखकर क्षण-भरके लिए सुरेशके विक्षुब्ध मनपर एक तरहका मोह और पुलकका स्पर्श खेल गया, पर स्थायी न रह सका। उसके चेहरेपर नजर पड़ते ही उसका वह भाव पलक मारते ही बुझ गया। मगर फिर भी वह वहाँसे अपनी दृष्टि न हटा सका, एकटक उसीकी तरफ देखता हुआ स्तब्ध होकर बैठा रहा। यह ठीक है कि अचलाके चेहरेपर आकाशका प्रकाश नहीं पड़ा था, परन्तु सामनेकी दीवारपर प्रति-फलित हुए प्रकाशकी आरक्त आभासे उसकी सारी शकल सुरेशकी दृष्टिमें कठिन ब्रोंझकी बनी मूर्ति जैसी दिखाई देने लगी। उसे स्पष्ट दिखाई दिया, मानो किसी गहरी अरुचिने इस नारीकी सम्पूर्ण मधुरिमा और सारीकी सारी कोमलताको एकबारगी चूसकर चेहरेकी प्रत्येक रेखा तकको अविचलित दृढ़ताके साथ धातुकी तरह कठिन कर डाला है। सहसा, केदार बाबूके जोरसे साँस लेनेपर, सुरेशका ध्यान भंग हो गया और वह सीधा होकर बैठ गया।

केदार बाबूने फिर एक बार अपनी पुरानी बात दुहराते हुए कहा—जितनी देखो सब पागलपनकी बातें,—किससे क्या कहूँ, कुछ समझमें नहीं आता—

सुरेशने अचलाको लक्ष्य करके अत्यन्त गम्भीर कण्ठसे पूछा—आप जो कुछ कह गई थीं, वही तो ठीक है ?

अचलाने गरदन हिलाकर कहा—हाँ।

"इसमें अब किसी तरहका परिवर्तन सम्भव नहीं ?"

अचलाने पूर्ववत् सिर हिलाकर कहा—नहीं।

खूनके एक उफानने आगकी लौकी तरह सुरेशके चेहरेको प्रदीप्त कर दिया; परन्तु उसने अपने कण्ठ-स्वरको संयत रखकर ही कहा—जब कि मेरे प्राणोंतककी कोई कीमत नहीं, तभी मैंने सब कुछ समझ लिया !—उसके हृदयमें उस समय आग लग रही थी। जरा स्थिर रहकर वह बोला—अच्छा, मैं एक बात पूछता हूँ, मैं ही क्या आप लोगोंका पहला शिकार हूँ, या, ऐसे और भी बहुत-से इस फन्देमें पड़के सिर मुड़ा गये हैं ?

असह्य आश्चर्यसे अचला आँखें फाड़-फाड़कर देखती रह गई। सुरेशने केदार बाबूकी तरफ देखकर कहा—बाप-बेटीका मिलकर षड्यन्त्र करके शिकार फँसानेका रोजगार विलायतमें तो, सुनते हैं, नया नहीं है; मगर यह भी आपसे कहे देता हूँ केदार बाबू, किसी न किसी दिन आप लोगोंको जेल जरूर जाना पड़ेगा।

केदार बाबू जोरसे चिल्ला पड़े—यह सब क्या कह रहे हो सुरेश ?

सुरेशने अविचलित स्वरसे जवाब दिया—बस चुप रहिए केदार बाबू ! नाटकका अभिनय बहुत दिनों तक चलता रहा है। यह पुराना हो चुका। अब इसका मुझपर कोई असर नहीं पड़नेका। रुपये जो मेरे गये, सो गये,—उसके बदले शिक्षा भी कम नहीं मिली; मगर अब यहीं इसका अन्त हो जाना चाहिए !

अचला रो उठी—तुमने क्यों इनके रुपये लिये बापूजी ?

केदार बाबूने पागलकी तरह एक टुकड़ा सफेद कागजके लिए इधर उधर हाथ बढ़ाकर अन्तमें एक पुराना अखबार कहींसे खींच निकाला और शोर मचाते हुए कहा—मैं इसी वक्त हैण्डनोट लिखे देता हूँ—

सुरेशने कहा—रहने दीजिए, रहने दीजिए, अब लिखा-पढ़ीकी कोई जरूरत नहीं ! आपने दे दिये और मैंने पा लिये ! मैं उन थोड़ेसे रुपयोंके लिए नालिश करके आपके साथ अदालत नहीं जा सकता !

जवाब देनेके लिए केदार बाबूके ओठ बार बार जल्दी जल्दी हिलने लगे, पर गलेसे बाहर एक भी बात नहीं निकली।

सुरेश अचलाकी तरफ देखता रहा। उसके सफेद फक चेहरे और छलछलाती हुई आँखोंकी तरफ देखकर भी उसे रंचमात्र दया नहीं आई, बल्कि भीतरकी ज्वाला सौगुनी बढ़ गई। वह पैशाचिक निष्ठुरताके साथ बोल उठा—तुम्हारे पास गर्व करनेको क्या है, अचला ?—यही तो भद्दी शकल-सूरत है, यही तो लकड़ी-सी सूखी देह है, यही तो रंग है ! तो भी मैं जो भूला हुआ था सो क्या

तुम्हारे रूपपर ? कभी ऐसा खयाल भी न करना !

पिताके सामने इस निर्लज्ज अपमानसे अचला दुःख और घृणाके मारे दोनों हाथसे मुँह ढकके कोचपर औंधी होकर पड़ गई ।

सुरेश उठके खड़ा हो गया, बोला—ब्राह्म समाजियोंको मैं फूटी आँखों भी नहीं देख सकता । जिनकी छाँहपर पैर रखनेमें भी मुझे घृणा मालूम होती थी, उनके घरमें घुसते ही जब कि मेरे आजन्मका संस्कार,—हमेशाका विद्वेष एक क्षणमें मिट गया तभी मुझे सन्देह होना चाहिए था, यह जादूकी करामात है ! मेरा जो कुछ होना था सो हो चुका; मगर जाते वक्त मैं आप लोगोंको करोड़ों धन्यवाद दिये बगैर नहीं जा सकता । धन्यवाद अचला !

अचलाने मुँह बगैर उठाये ही, रुँधे हुए गलेसे कहा—बापूजी, इन्हें तुम चुप रहनेके लिए कह दो । हम लोग दर दर मारे मारे फिरें, सो अच्छा;—पर इनका जो कुछ लिया हो तुम वह सब लौटा दो—

सुरेश फिर उठके खड़ा हो गया, बोला—दर दर ! किसी दिन वह भी तुम लोगोंको मयस्सर न होगा, मैं कहे जाता हूँ । मगर उस दिन मुझे याद करना—कहता हुआ वह उत्तरकी प्रतीक्षा बिना किये ही तेजीके साथ बाहर निकल गया ।

केदार बाबू कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे, और अन्तमें एक गहरी साँस लेकर बोले—उःफ्, कैसा भयंकर आदमी है ! ऐसा मालूम होता, तो क्या मैं उसे घरमें बढ़ने देता !

पिताकी बात अचलाके कानमें गई, पर वह कुछ बोली नहीं । औंधी होकर जैसे पड़ी रो रही थी, वैसे ही बहुत देर तक चुपचाप आँसुओंसे छाती भिगोती रहा । पास ही कुरसीपर बैठे हुए केदार बाबू सब देखते रहे; परन्तु सान्त्वनाका एक शब्द भी निकालनेका उन्हें साहस नहीं हुआ । शाम हो गई । बेहरा आकर गैस-बत्ती जलानेकी तैयारी करने लगा; इतनेमें अचला चुपकेसे उठकर अपने कमरेमें चली गई ।

परन्तु, महिम इस विषयमें कुछ भी न जान सका । सिर्फ, जिस दिन केदार बाबूने स्वाभाविक सरलतासे अपनी कन्याके साथ उसके विवाहके लिए स्वीकारता दे दी, उस दिन वह कुछ देरके लिए विह्वलकी तरह उनके मुँहकी तरफ देखता रह गया। अनेक प्रकारकी अनेक बातें, अनेक संशय उसके मनमें जरूर उठे

परन्तु उसके इस सौभाग्यका सुरेश ही मूल कारण है, यह बात उसकी दूरकी कल्पनामें भी उदित नहीं हुई। अचलाके प्रति स्नेह, प्रेम, और कृतज्ञतासे उसका सम्पूर्ण हृदय परिपूर्ण हो उठा। हमेशासे वह नीरव-प्रकृतिका आदमी रहा है; आवेग या उच्छ्वास उससे कभी प्रकट करते न बनता था, और बनता भी, तो लोगोंकी दृष्टिमें शायद वह उसके चेहरेपर एक अप्रत्याशित, असंलग्न और अस्वाभाविक आचरण समझा जाता। बल्कि, आज शामके वक्त जब वह केदार बाबूके साथ दो-चार बातें करके अकेला बासेको लौटा, तब, और दिनोंकी तरह अचलासे मिलकर, उसे मामूली-सा नमस्कार तक नहीं कर आ सका। बात केदार बाबूने खुद ही छेड़ी। प्रसंग छिड़नेसे लेकर सम्मति देने और दिन ठीक केरन तक सब कुछ मानो उन्होंने अनन्योपाय होकर ही किया; चेहरपर उनके स्फूर्ति या उत्साहका लेशमात्र चिह्न तक नहीं दिखाई दिया। फिर भी दिन बीतने लगे, और क्रमशः ब्याहका दिन भी करीब आ गया।

परसों ब्याह है। मगर लड़कीके ब्याहमें वे किसी तरहकी धूमधाम न करनेकी बात तयकर चुके थे, इसलिए आगामी शुभ-विवाहकी तैयारी, उन्होंने, जहाँतक हो सका, चुपचाप करनेमें कोई कसर न रखी।

आज भी शामके पहले वे यथासमय चाय पीने बैठे थे। एक कसीदा हाथमें लिए अचला पास ही कोचपर बैठी थी। बहुत दिन बाद अनेक दुःखोंमें दिन बिताते रहनेके बाद इधर कई दिनोंसे उसके मनपर जो कुछ थोड़ी बहुत शान्ति आती जाती थी, उसीके किंचित् आभाससे उसका पाण्डुर चेहरा म्लान ज्योत्स्नाके समान कुछ स्निग्ध-सा दिखाई दे रहा था। चाय पीते-पीते केदार बाबू यही लक्ष्य कर रहे थे। कलह करके सुरेशके चले जानेके बादसे, अब तक वे मुरझाये मनसे ही दिन बिता रहे थे। वह वापस आकर क्या करेगा, क्या नहीं—एक तो यह दुश्चिन्ता; और, इसके अलावा इस विषयमें उनका अपना कर्तव्य क्या है—हैण्ड-नोट लिख देना या रुपये चुका देनेके लिए और कहीं कर्ज लेनेकी कोशिश करना, या महिमपर सारी जिम्मेवारी छोड़ देना—क्या किया जाय, सोचते-सोचते उन्हें इसका कोई किनारा नहीं दिखाई दे रहा था। और, कोई न कोई इन्तजाम करना निहायत जरूरी हो गया था। सुरेशकी लापता-हालतके भरोसे हमेशाके लिए छुट्टी मिल गई हो या लड़कीकी तरह अपने ही खयालमें मगन होकर आँख मींचे रहनेसे ही आफत टल गई हो, सो

बात नहीं। इस बातको वे खूब गहराईके साथ महसूस कर रहे थे। हताश प्रेमी किसी न किसी दिन चंगा हो जायगा और तब वह वापस आकर चारों तरफ बदनामी करके बखेड़ा खड़ा कर देगा;—और फिर उसने रुपये चेक काटकर दिये हैं, और कोई लिखा-पढ़ी न होनेपर भी अदालतमें इस बातसे इन्कार नहीं किया जा सकेगा, इस विषयमें वे सोचते सोचते एक तरहसे निःसंशय हो गये थे। और, लड़कीके साथ इस विषयमें कोई सलाह करनेका भी उपाय न था। सुरेशका नाम लेनेमें भी उन्हें डर मालूम होता था। अब, अचलाके इस शान्त स्थिर चेहरेको देखकर उन्हें भीतरकी एक जलनके साथ बार बार यही खयाल आने लगा कि यह लड़की ही उनके सारे दुःखोंकी जड़ है। ऐसे देखा जाय तो कितना अच्छा इन्तजाम हो गया था, और निकट-भविष्यमें और न जाने क्या हो सकता था!

जिस निष्ठुर कन्याने वृद्ध पिताके बार बार मना करनेपर भी उनके सुख-दुःखका जरा भी खयाल नहीं किया, सब बनाया-बनाया काम मिट्टी कर दिया, उस स्वार्थी सन्तानके विरुद्ध उनका दबा हुआ क्रोध अभिशापकी तरह हर वक्त यही कामना करने लगा कि उसे इसका फल भोगना पड़े, किसी दिन उसे रो-रोकर कहना पड़े कि 'बापूजी, तुम्हारी बात न माननेकी सजा मैं पा रही हूँ।' पात्रके हिसाबसे देखा जाय तो सुरेश महिमसे असंख्य गुना अच्छा है, यह धारणा उनके मनमें इस कदर बैठ गई थी कि उसके सम्पर्कसे वंचित होनेको वे गहरी हानि ही समझ रहे थे। मनमें उसके प्रति उनका क्रोध नहीं था। इतना सब कुछ हो जानेपर भी अगर आज उसे फिरसे पानेका कोई रास्ता होता, तो इस ब्याहको रद करनेमें शायद उन्हें जरा भी दुबिधा न होती। मगर, कोई चारा नहीं, कोई उपाय नहीं। अचलाके आगे उसका जिक्र करना भी मुश्किल है।

कसीदा काढ़ते काढ़ते अचलाने मुँह उठाकर कहा—बापूजी, सुरेश बाबूका समाचार पढ़ा?

अचलाके मुँहसे सुरेशका नाम! केदार बाबूने चौंककर उसकी तरफ देखा। अपने कानोंपर उन्हें विश्वास नहीं हुआ। सबेरेका अखबार टेबिलपर पड़ा था; अचलाने उसे उठाकर फिर वही बात कही। केदार बाबू सबेरे अखबारको सरसरी तौरपर देख चुके थे; परन्तु औरोंका समाचार खोजकर पढ़ने लायक उनके मनकी

अवस्था नहीं थी। बोले—कौन, सुरेश?

अचला अखबारके उस समाचारको ढूँढ़ती हुई बोली—शायद ये अपने ही सुरेश बाबू हैं।

केदार बाबूने आश्चर्यसे आँख पसारते हुए कहा—अपने सुरेश बाबू! क्या किया है उन्होंने? कहाँ हैं वे?

अचलाने उठकर अखबारका वह समाचार निकालकर पिताके हाथपर रख दिया; कहा—इसे पढ़ देखो न बापूजी!

केदार बाबू चश्मेके लिए जेब टटोलते हुए बोले—चश्मा शायद उस कमरेमें छोड़ आया हूँ; तुम्हीं पढ़के सुनाओ न बेटी, क्या लिखा है, सुनूँ?

अचलाने पढ़कर सुनाया। फैजाबादके किसी संवाददाताने लिखा है, उस दिन शहरकी एक गरीब-बस्तीमें भयंकर रूपसे आग लग गई थी। एक तो प्लेग, उसपर यह दुर्घटना! बेचारे गरीबोंके दुःखका कोई ओर-छोर नहीं। कुछ दिन हुए सुरेश नामके एक सज्जन यहाँ आये हैं जो रुपये-पैसेसे, दवा-दारूसे, यहाँ तक कि अपनी जान खतरेमें डालकर रोगियोंकी सेवा कर रहे हैं। इस विपत्तिके समय यहाँ आते ही उन्होंने जब सुना कि रोग-शय्यापर पड़ी हुई कोई स्त्री जलते हुए मकानमें अटकी पड़ी है, उसे कोई निकालनेवाला नहीं, तो उसकी जान बचानेके लिए यह असीम साहसी युवक अपने प्राणोंकी जरा भी परवाह न कर चटसे उस जलते मकानमें घुस गया, और—इत्यादि इत्यादि।

पढ़ना खतम हो जानेके बाद, केदार बाबू बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहे; फिर एक गहरी साँस लेकर बोले—मगर, यह क्या अपना ही सुरेश मालूम होता है?

अचलाने शान्त भावसे कहा—हाँ बाबूजी, जरूर ये अपने ही सुरेश होंगे।

केदार बाबू फिर एक बार चौंके। शायद, अनजानमें ही अचलाके मुँहसे 'अपने ही' शब्दपर जरा जोर लग गया था और शायद वह महज एक निश्चित विश्वास पैदा करनेके लिए ही था। परन्तु केदार बाबूके हृदयमें वह एक दूसरी ही तरहसे बज उठा; और डूबता हुआ आदमी जिस तरह एक तिनकेका सहारा लेनेको हाथ बढ़ा देता है, ठीक उसी तरह वृद्ध पिताने अपनी कन्याके मुँहसे निकले हुए उस शब्दको अत्यन्त आग्रहके साथ छातीसे चिपका लिया। यह एक ही शब्द उनके कानोंमें लहमे-भरमें न जाने कितनी असम्भावनाओंका

द्वार खोल गया! उनका चेहरा आज इतने दिनों बाद अकस्मात् आशाके आनन्दसे चमक उठा। बोले—अच्छा बेटी, तुम्हें क्या ऐसा नहीं मालूम होता कि—

पिताको सहसा रुकते देख अचला उनके मुँहकी ओर देखकर बोली—क्या नहीं मालूम होता बाबूजी?

केदार बाबूने सावधानीके साथ आगे बढ़नेके खयालसे अपनी बातको दबाते हुए कहा—तुम्हें क्या ऐसा नहीं मालूम होता कि सुरेश अपने साथ जो सलूक कर गया है, उसके लिए वह मन ही मन विशेष पश्चात्ताप करता होगा?

अचलाने उसी वक्त हाँमें हाँ मिलाते हुए कहा—मुझे ऐसा जरूर मालूम होता है बापूजी!

केदार बाबू जोरसे सिर हिलाते हुए बोले—जरूर! जरूर! सौ-सौ बार। नहीं तो, वह इस तरह भाग नहीं जाता,—न जाने कहाँकी कौन औरत होगी, उसके लिए वह इस तरह आगमें न फाँद पड़ता! मुझे निश्चित रूपसे ऐसा मालूम होता है कि वह सिर्फ पश्चात्तापसे जलकर ही अपने प्राण देने वहाँ गया था। सच बात है कि नहीं बताओ बेटी?

अचलाने पिताके प्रश्नको टालते हुए धीरेसे कहा—सुना है, औरोंको बचानेके लिए इस तरह और भी दो-एक बार वे अपनी जान खतरेमें डाल चुके हैं।

यह बात केदार बाबूको उतनी अच्छी नहीं लगी। बोले—वह दूसरी बात है, अचला! मगर, यह जो आगमें कूद पड़ना है, यह तो जान-बूझकर निश्चित रूपसे मौतका आलिंगन करना है! दोनों बातोंमें तुम्हें प्रभेद नहीं दिखाई देता?

अचलाने फिर कोई प्रतिवाद नहीं किया, कहा—सो तो है ही। मगर जो महान् होते हैं, उन्हें किसी भी अवस्थामें दूसरोंकी विपत्तिमें अपनी विपत्तिका ख्याल नहीं रहता—

केदार बाबू मारे उत्साहके उछल पड़े। तेजीके साथ कहने लगे—ठीक बात है, बिलकुल ठीक कह रही हो! इसीसे तो तुमसे कह रहा हूँ अचला, वह एक महान् पुरुष है, महान् हृदय! उसके साथ क्या किसीकी तुलना हो सकती है? इतने आदमी तो दिखाई दे रहे हैं, मगर कौन किसे पाँच हजार रुपये बातकी बातपर दे देता है, बताओ भला? उसने कुछ भी क्यों न किया हो, बड़े दुःखसे कर डाला है, यह बात मैं तुमसे शपथके साथ कह सकता हूँ!

परन्तु शपथकी कोई जरूरत ही नहीं थी। इस सत्यको अचला स्वयं जितना जानती थी, शायद उसका सौवाँ हिस्सा भी उन्हें नहीं मालूम था। मगर वह कुछ जवाब न दे सकी,—क्षण-भरकी लज्जा कहीं उसके चेहरेपर दिखाई न दे जाय, इस डरसे वह झटपट गरदन झुकाकर मौन होकर बैठी रही। परन्तु वृद्धकी सतृष्ण दृष्टिसे वह छिपी नहीं रही। वे पुलकित चित्तसे कहने लगे—आदमी देवता थोड़े ही है,—आखिर वह भी आदमी है। उसकी देह भी दोष और गुणोंसे जकड़ी हुई है। इसका मतलब यह नहीं कि अपनी कमजोरीकी हालतमें उसने जो उत्तेजना दिखलाई थी, वही उसका स्वभाव हो। बाहरके आदमी चाहे जो भी कुछ कहें अचला, पर हम लोग भी अगर उसी बातको उसका दोष समझ लें, तो औरोंके साथ हमारा पार्थक्य क्या रह जायगा बताओ? बड़े आदमी तो बहुतेरे हैं, मगर इस तरह देना कौन जानता है? क्या लिखा है उस जगह, जरा फिरसे तो पढ़ो बिटिया? आगके अन्दरसे उसे बचाकर ले आया? ओह, कितनी महान् आत्मा है! देवता और किसे कहते हैं!—कहकर उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा।

अचला पूर्ववत् निरुत्तर होकर सिर झुकाये बैठी रही।

केदारबाबू क्षण-भर स्तब्ध रहकर सहसा कह उठे—अच्छा, हमें क्या एक टेलिग्राफ भेजकर उसकी खबर नहीं लेनी चाहिए? उसकी इस विपत्तिके समय भी क्या हम लोगोंका रूठा रहना शोभा देता है?

अबकी बार अचलाने मुँह उठाकर कहा—लेकिन हम लोगोंको उनका पता तो मालूम ही नहीं, बापूजी?

केदार बाबूने कहा—पता? फैजाबाद शहरमें ऐसा कौन होगा जो अपने सुरेशको न जानता हो?—उसपर मुझे गुस्सा तो बहुत आया था, पर अब मेरे मनमें कोई बात नहीं रह गई। एक तार लिखकर अभी भेज दो बेटी, मैं उसका समाचार जाननेके लिए बड़ा व्याकुल हो उठा हूँ।

"अभी भेजे देती हूँ बापूजी।" कहकर वह टेलिग्राम फार्म लेने ज्यों ही कमरेसे बाहर निकली कि सामने सुरेश पड़ गया!

हृदयके गंभीर दुःखको वहन करनेकी क्लान्ति इतनी जल्दी आदमीके चेहरेको ऐसा शुष्क, ऐसा श्रीहीन कर दे सकती है, अचलाने अपने जीवनमें यह पहले ही पहल देखा, और वह देखते ही चौंक पड़ी। कुछ देर तक दोनोंके मुँहसे कोई बात नहीं निकली। उसके बाद, वह खुद ही बोली—बापूजी बैठे हैं; आइए,

भीतर आइए। फैजाबादसे कब आये ? सब कुशल है न ?

अनजानमें उसके स्वरसे स्नेहकी कितनी वेदना प्रकट हो गई, इस बातको वह खुद नहीं जान सकी; किन्तु सुरेश बिलकुल टूटकर गिरने लायक हो गया। मगर फिर भी आज उसने अपनी पिछले दिनोंकी कठोर शिक्षाको निष्फल नहीं होने दिया। आज उसने अचलाके रंगीन चरणोंके आगे चटसे घुटने टेककर बैठ जाने और अपनी गहरी दुष्कृतिको पूरी तौरसे खतम कर डालनेकी दुर्जय अभिलाषाको जी जानसे दबाकर सम्मानके साथ कहा—मेरे फैजाबाद जानेकी बात आपको कैसे मालूम हुई ?

अचलाने उसी तरह स्नेहसे भींगे स्वरमें कहा—अभी अभी अखबारमें पढ़कर बापूजी मुझे आपको तार देनेके लिए कह रहे थे। आपके लिए वे बहुत ही उद्विग्न हैं। आइए, एक बार उनसे मिल लीजिए।—कहकर अचला लौट रही थी कि सुरेश कहने लगा—शायद वे मुझे माफ कर सकते हैं; परन्तु तुमने कैसे माफ कर दिया अचला ?

अचलाके ओठोंपर जरा-सी हँसीकी आभा दिखाई दी। बोली—मुझे इसकी जरूरत ही नहीं हुई। मैं एक दिनके लिए भी आपपर नाराज नहीं हुई—आइए, भीतर आइए।

१३

सुरेशने जब सुनाया कि वह महिमके पत्रसे विवाहकी खबर पाकर झटपट यहाँ चला आया है, तब केदार बाबू तो मारे लज्जाके चंचल हो उठे, पर अचलाके चेहरेके भावसे कुछ भी प्रकट नहीं हुआ।

सुरेशने कहा—महिमके ब्याहमें मुझे आना ही चाहिए था, नहीं तो और भी कुछ दिन अस्पतालमें रह कर आना अच्छा होता।

केदार बाबूने अत्यन्त उत्कण्ठित होकर पूछा—अस्पतालमें क्यों सुरेश, ऐसा तो कुछ—

सुरेशने कहा—जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं—पर हाँ, जरा तबीयत ठीक नहीं थी।

केदार बाबूने सुस्थिर होकर कहा,—भगवानको इसके लिए करोड़ों नमस्कार। अचलाने जिस समय अखबार पढ़के तुम्हारी अलौकिक कहानी सुनाई सुरेश,

तुमसे क्या बताऊँ मैं,—मारे आनन्द और गर्वके मेरी आँखोंमेंसे आँसू बहने लगे। मन ही मन बोला, ईश्वर, मैं धन्य हूँ कि ऐसे आदमीका मित्र हूँ।—कहते हुए उन्होंने दोनों हाथ माथेसे लगा लिये। जरा ठहरकर फिर बोले—लेकिन, इतना मैं जरूर कहूँगा बेटा, अपनी जानको बार बार इस तरह खतरेमें डालना क्या उचित है? एक मामूली स्त्रीकी जान बचानेके लिए इतनी बड़ी महान् आत्मा अगर चली जाती, तो, क्या संसारकी बड़ी भारी हानि नहीं होती?

हानि ऐसी क्या हो जाती?—कहकर सुरेशने ज्यों ही सलज्ज हँसी हँसते हुए मुँह फेरा, त्यों ही देखा कि अचला निर्निमेष दृष्टिसे उसीके चेहरेकी तरफ देख रही थी और अब उसने निगाह नीची कर ली है।

केदार बाबू बार बार कहने लगे—ऐसी बात मुँहपर लाना भी उचित नहीं; कारण, अपने आदमियोंको इससे इतनी चोट पहुँचती है कि जिसकी हद नहीं।

सुरेश हँसने लगा; बोला—अपना आदमी तो मेरे कोई है ही नहीं केदार बाबू। हैं तो सिर्फ एक बुआजी हैं,—मेरे चले जानेसे उन्हींको थोड़ा बहुत दुःख होगा।

उसके मुँहपर हँसी रहनेपर भी, जब सुना कि उसका अपना कोई भी नहीं है, तब केदार बाबूकी सूखी आँखें आसुओंसे सजल हो उठीं। उन्होंने कहा—सिर्फ क्या एक बुआजीकोही दुःख होगा सुरेश? ऐसी बात मत कहो बेटा, इस बूढ़ेको भी कुछ कम शोक न होगा। खैर जो भी हो, मैं जितने दिन जिन्दा हूँ, कमसे कम उतने दिन तो तुम अपने शरीरको ठीक रखना सुरेश,—मेरा इतना ही अनुरोध है।

घड़ीमें रातके करीब दस बजे थे। घर चलनेके लिए तैयार होकर सुरेशने सहसा हाथ जोड़कर कहा—मेरी एक प्रार्थना है केदार बाबू, महिमका ब्याह मेरे ही यहाँसे होना तय हुआ है; पर वह तो होगा परसों। इसलिए कल रातको ही आपको इस अधमके घरपर जरा पद-धूलि देनी होगी।—नहीं तो, मुझे विश्वास न होगा कि मुझे आपने क्षमा कर दिया है। कहिए, इतनी भिक्षा तो दीजिएगा? कहकर उसने अकस्मात् झुककर केदार बाबूके पैर छूने चाहे। इतनेमें केदार बाबू व्यस्तताके साथ शायद उसे रोकनेके लिए ही बढ़े थे कि अकस्मात् उसकी अस्फुट वेदना-भरी आह सुनकर वे उछल पड़े। उसकी पीठपर जल जानेके कारण बैण्डेज बँधा हुआ था, और अब तक उसे वह दुशालेसे छिपाये हुए था। मालूम न होनेसे केदार बाबूका जैसे ही वहाँ हाथ लगा, चटसे बैण्डेज खिसक गया।

अब अन-ढके घावपर दृष्टि पड़ेते ही वे चीख उठे। जैसे बिजली छू गई हो इस तरह उठकर अचलाने तुरत बैण्डेजको थाम लिया, बोली—डरनेकी कोई बात नहीं, मैं ठीक किये देती हूँ। कहकर वह सुरेशको उधरके सोफेपर बिठाकर ठीक तौरसे जहाँका तहाँ बैण्डेज बाँधनेमें लग गई।

केदार बाबू अपनी कुर्सीपर धप-से आँख मींचकर बैठ गये—कुछ देर तक उनके मुँहसे कोई आवाज ही नहीं निकली। कोचकी पीठपर दोनों कोहनी टेक कर पीछे खड़ी खड़ी अचला चुपचाप बैण्डेज बाँध रही थी। देखते देखते उसकी दोनों आँखोंमें आँसू भर आये और थोड़ी देर बाद ही मोतीकी तरह एकके बाद एक झरने लगे। सुरेशको यह कुछ दिखाई ही न दिया, और न इधर उसका खयाल ही था। वह सिर्फ आँखें मूँदकर स्थिर बैठा अपने हृदयमें अपनी असीम प्रेम-पात्रीके कोमल हाथोंके करुण स्पर्शका अनुभव करने लगा।

किसी तरह आँसुओंको रोककर अचलाने चुपकेसे कहा—आज मेरे आगे आपको एक प्रतिज्ञा करनी होगी।

सुरेश ऐसा चौंका जैसे ध्यान भंग हो गया हो। फिर भी उसने उसी तरह मुलायम स्वरमें कहा—क्या प्रतिज्ञा?

"इस तरह अब आप अपने प्राण नष्ट न करने पायेंगे।"

"मगर प्राण तो मैं जान-बूझकर नष्ट नहीं करना चाहता। सिर्फ दूसरोंकी विपत्तिमें मुझे अपने हिताहितका ज्ञान नहीं रहता—यह मेरा बचपनका स्वभाव है अचला!"

अचलाने इसका प्रतिवाद नहीं किया; परन्तु साथ ही उसने एक दीर्घ-निःश्वास दबा लिया, और सुरेश इस बातको ताड़ गया। बैण्डेज बाँधना खतम होनेपर सुरेशने उठकर धीरे धीरे कहा—कल लेकिन इस दीनके घर एक बार चरणोंकी धूल देनी होगी—कहते कहते उसकी आँखें डबडबा आईं; किन्तु उसके स्वरसे व्याकुलता नहीं प्रकट हुई।

अचलाने नीचेको निगाह किये हुए गरदन हिलाकर कहा—अच्छा।

सुरेशने केदार बाबूको नमस्कार करके हँसते हुए कहा—देखिएगा, कहीं मुझे निराश न कीजिएगा!—कहकर अचलाके मुँहकी तरफ देखता हुआ वह फिर एक बार मौन निवेदन जताकर धीरे धीरे बाहर चला गया।

दूसरे दिन यथासमय सुरेशकी गाड़ी आ पहुँची। केदार बाबू तैयार ही बैठे थे,

वे कन्याको साथ लेकर निमन्त्रण निभाने चल दिये।

सुरेशके मकानके गेटमें घुसते ही केदार बाबू दंग रह गये। इस बातको तो वे जानते थे कि वह बड़ा आदमी है; पर कितना बड़ा है, सो अन्दाजसे निश्चय करनेमें कठिनाई हो रही थी; मगर आज इस विषयमें बिलकुल निःसंशय हो जानेसे उनके जीमें जी आ गया।

सुरेशने आकर स्वागत-पूर्वक दोनोंको ग्रहण किया। हँसकर कहा—महिमकी जिद आज भी न तोड़ सका, केदार बाबू! कल दोपहरसे पहले इस मकानमें घुसनेके लिए वह किसी भी तरह राजी नहीं हुआ।

केदार बाबूने उसकी बातका कुछ जवाब नहीं दिया। तीनोंके बैठकमें घुसते ही एक प्रौढ़ महिला दरवाजेकी ओटमेंसे निकलकर अचलाका हाथ पकड़के उसे भीतर ले गईं। उनके अपने कमरेमें एक कारपेटका फर्श बिछा हुआ था, उसी-पर अचलाको खातिरदारीसे बिठाकर उन्होंने अपना परिचय दिया। कहा—मैं नातेमें तुम्हारी सास होती हूँ, मैं महिमकी बुआ हूँ।

अचलाने प्रणाम करके पाँवकी धूल माथेसे लगाते हुए आश्चर्यके साथ कहा—आप यहाँ कब आईं?

महिमकी बुआ थीं, यह बात अचला नहीं जानती थी। प्रौढ़ाने उसके विस्मयका कारण अनुमान करके हँसते हुए कहा—मैं यहीं रहती हूँ, मैं सुरेशकी बुआ हूँ; लेकिन महिम भी तो कोई ग़ैर नहीं, इसीसे उसकी भी बुआ लगती हूँ, बेटी!

उनके स्वभाव-कोमल स्वरसे ऐसा एक स्नेह और आन्तरिकता प्रकट हुई कि एक ही क्षणमें अचलाका हृदय आलोड़ित हो उठा। उसके मा नहीं है,—उस अभावकी पूर्ति कर सके, ऐसी कोई अपनी समझने लायक स्त्री भी घरमें कभी नहीं रही। जबसे होश सम्हाला है तबसे वह पिताके स्नेहमें ही इतनी बड़ी हुई है। परन्तु उस स्नेहने उसके हृदयमें कितना स्थान रीता कर रखा था, आज एक ही क्षणमें यह बात स्पष्ट हो उठी। आज पराये घरमें दूसरेकी बुआने 'बहू' कहकर लाड़ और आदरके साथ उसे अपने पास बिठाया। पहले तो वह इस नये सम्बोधनसे जरा लज्जित हुई; परन्तु बादमें उसका माधुर्य और गौरव उसके अन्तस्तलमें पहुँचकर बहुत देरतक ध्वनित होता रहा।

देखते देखते दोनोंमें बातचीतका सिलसिला जम गया। अचलाने लज्जित

मुखसे पूछा—अच्छा बुआजी, आपने मुझे चटसे अपने पास बिठा लिया, ब्राह्मसमाजी होनेसे मुझसे घृणा तो नहीं की?

बुआजीने चटसे उसकी ठोड़ीसे अपनी अँगुलियाँ छुआ कर चूम लीं। बोलीं—तुमसे घृणा क्यों करने लगी बेटी?—फिर जरा हँसकर बोलीं—हम हिन्दू-घरकी स्त्रियाँ क्या ऐसी मूरख हैं, ऐसी ओछी हैं बहू-रानी, कि सिर्फ धर्म दूसरा होनेसे तुम जैसी लड़कियोंको भी पास बिठानेमें संकोच करेंगी? और फिर घृणाकी क्या बात है बेटी!

अचला अत्यन्त लज्जित होकर बोली—मुझे माफ कीजिएगा बुआजी, मुझे मालूम नहीं था। अपने समाजके बाहरकी किसी भी स्त्रीके साथ कभी मिलने-जुलनेका मौका नहीं मिला मुझे; सिर्फ सुन रखा है कि वे हम लोगोंसे बहुत घृणा करती हैं;—यहाँ तक कि एक साथ बैठने-उठनेपर भी उन्हें नहाना पड़ता है।

बुआजीने कहा—घृणा नहीं, बेटी, वह एक आचार है। हमारे बाहरी आचरणको देखकर शायद तुम लोगोंको बहुधा ऐसा ही मालूम होता होगा; पर सच कहती हूँ बेटी, सचमुचकी घृणा हम किसीसे भी नहीं करतीं। हमारे देशमें घरपर अभी तक 'बागदी' जातिकी ताईजी जीवित हैं। मुझे उनसे कितना प्रेम है कह नहीं सकती।

जरा ठहर कर फिर कहने लगीं—अच्छा, एक बात पूछती हूँ तुमसे। इस बातका खयाल तुम्हें कैसे आ गया,—सुरेशके मुँहसे सुनकर या आज मुझे देखकर?

सुरेशके उल्लेखसे अचला मन ही मन लज्जित होकर बोली—बहुत पहले उन्होंने भी एक बार कहा था—

बुआजीने कहा—सो उसका स्वभाव है। कोई बात मनमें आ गई तो फिर खैर नहीं,—वह चारों तरफ गाता फिरेगा। किसी दिन ब्राह्म समाजियोंके साथ बगैर मिले-जुले ही उसने सोच लिया कि उनसे वह बहुत घृणा करता है। इसी बातको लेकर महिमसे उसका कितनी ही बार झगड़ा होते होते रुका है। मगर मैंने तो उसे एक तरहसे पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है, मैं जानती हूँ, वह किसीसे घृणा नहीं करता,—घृणा करनेका सामर्थ्य ही नहीं उसमें। तुम्ही लोगोंके बारेमें देख लो न बेटी, जिस दिनसे उसने तुम लोगोंको देखा,

उसी दिनसे—

मगर वे अपनी बात पूरी न कह सकीं, अचलाके चेहरेपर नजर पड़ते ही सहसा बीचमें ही रुक गईं। अपने बारेमें इन्हें कहाँ तक मालूम है, इसे न समझ सकनेपर भी अचलाको सन्देह हुआ कि हो न हो कुछ कुछ तो बुआजीको मालूम ही पड़ गया होगा। क्षण-भरके लिए दोनों ही मौन हो रहीं। अन्तमें अचलाने अपनी शरमको किसी कदर दबाते हुए बात छेड़ी। पूछा—बुआजी, तो क्या आपहीने सुरेश बाबूको पाला है ?

बुआजी आवेगसे परिपूर्ण होकर बोलीं—हाँ, बेटी, मैंने ही उसे पाला-पोसा है। दो सालकी उमरमें ही बेचारेके मा-बाप परलोक सिधार गये थे। अब भी मेरा वह काम पूरा नहीं हुआ है,—आज भी मेरे सिरसे बोझ नहीं उतरा है। किसीका दुःख-कष्ट, किसीकी आफत-बिपत उससे सही नहीं जाती; अपने प्राणोंकी आशा छोड़कर वह विपत्तिमें कूद पड़ता है। दिन-रात किस तरह डरते डरते बिताया करती हूँ, सो तुमसे कहते नहीं बनता।

अचलाने धीरेसे पूछा—फैजाबादकी घटना तो सुनी होगी आपने ?

बुआजीने सिर हिलाते हुए कहा—हाँ, सुनी क्यों नहीं बेटी ! भगवानसे इसीसे तो सदा कहती रहती हूँ, भगवान्, मेरे जीते-जी मुझे ऐसी कोई बात न दिखाना,— सिरपर लात मारकर मुझे रसातल न भेज देना। यह मुझसे किसी भी तरह न सहा जायगा। —कहते कहते उनका गला रुँध आया। उनके इस मातृस्नेह-मण्डित मुखकी सकातर प्रार्थनाको सुनकर अचलाकी आँखोंमें भी आँसू आ गये। करुण कंठसे उसने कहा—आप मना क्यों नहीं कर देतीं बुआजी ?

बुआजीने आँसुओंके भीतरसे जरा हँसकर कहा—मना ? मेरे मना करनेसे क्या होगा बेटी ? जिसकी मनाई सचमुचमें कोई काम करेगी, मैं कई सालसे उसीको ढूँढ़ती फिर रही हूँ। पर यह हरएक लड़कीका थोड़े ही काम है,—उसे बाँध सके, ऐसी लड़की स्वयं भगवान् अगर न दें तो मैं कहाँसे पा सकती हूँ बेटी ?

अचलाने कुछ देर चुप रहकर धीरेसे पूछा—आपके मनकी-सी लड़की क्या कहीं भी नहीं मिल रही है ?

बुआजीने कहा—तुमसे कह न दिया बेटी, भगवानके बिना दिये कभी किसीको कुछ नहीं मिलता। जिस सुरेशने कभी इस बातपर ध्यान नहीं दिया उसने खुद आकर जिस दिन कहा कि बुआजी, अब तुम्हें एक दासी लाकर

दूँगा, उस दिन मुझे इतना आनन्द हुआ कि मुँहसे कहा नहीं जा सकता। मन ही मन मैंने आशीर्वाद देकर कहा—तेरे मुँहपर फूल-चन्दनकी वर्षा हो बेटा ! तेरी बात सच हो ! वह दिन मैं कब देखूँगी, जब बहू-बेटेको वरण करके घरमें लूँगी। कितना कहा सुरेशसे मैंने, मुझे एक बार दिखा ला, मगर वह किसी तरह राजी ही नहीं हुआ। हँसके कह दिया, 'बुआजी, आशीर्वादके दिन एक साथ जाकर देख आना और दिन ठीक कर आना।' उसके बाद फिर एक दिन अचानक आकर बोला, 'ठीकसे जुगत बैठी नहीं बुआजी, मैं रातकी गाड़ीसे पश्चिमकी तरफ घूमने जा रहा हूँ।' कितना पूछा कि क्या बात है, खुलासा बता; पर उसने कुछ जवाब ही नहीं दिया; और उसी रातको चल दिया। मैंने मन ही मन सोचा, सिर्फ मेरे लड़केकी इच्छासे ही तो हो नहीं सकता, उस लड़कीकी भी तो जन्म-जन्मान्तरकी तपस्या होनी चाहिए ? क्यों ठीक है न बेटी ?

अचलाने चुपके-से गरदन हिला दी। अब उसे पता चला कि वह लड़की कौन है, सो बुआजीको नहीं मालूम। इससे उसे एक बार ऐसा मालूम तो हुआ कि उसकी छातीपरका पत्थर-सा उतर गया,—लेकिन दूसरे ही क्षण यह भी स्पष्ट अनुभव होने लगा कि पत्थर आसानीसे नहीं हटा, उसके हृदयका बहुत-सा स्थान उससे छिलपिस गया है।

भोजनकी तैयारियाँ हो चुकनेपर बुआजीने अचलाको अलग बिठाकर जिमाया। उसके बाद अपने साथ लेकर उसे मकानका हरएक कमरा और चीज-वस्त सब घूम-घूमकर दिखाना शुरू किया। दिखाते दिखाते वे सहसा एक गहरी साँस लेकर बोलीं—बेटी, भगवानके आशीर्वादसे कमी किसी बातकी नहीं,—पर लगता सब ऐसा है जैसे बिना लक्ष्मीके बैकुण्ठ ! कभी कभी आँखोंमें आँसू नहीं अमाते बहू !

नौकर आकर खबर दे गया—बाहर केदार बाबू जानेके लिए तैयार हैं। अचलाके प्रणाम करके पाँवकी धूल माथेसे लगाते ही बुआजीने उसका एक हाथ पकड़के जरा कुछ दुबिधाके साथ चुपकेसे कहा—एक बात पूछना चाहती हूँ, अगर तुम कुछ खयाल न करो बेटी ?

अचला उनके चेहरेकी तरफ देखकर जरा हँस दी।

बुआजीने कहा—सुरेशके मुँहसे तुम्हारी और महिमकी सारी बातें मैंने सुनी हैं बेटी ! उसीसे यह भी सुना कि महिम गरीब है, इस कारण तुम्हारे पिताजीकी इच्छा नहीं थी; सिर्फ तुम्हारे ही कारण—

अचलाने गरदन झुकाकर मृदु स्वरमें कहा—सच बात है बुआजी !

बुआजीने अकस्मात्, मानो उच्छ्वसित आवेगके साथ, अचलाके दोनों हाथ थामकर कहा—यही तो होना चाहिए बेटी ! जिससे प्रेम हो चुका, उसके आगे रुपया-पैसा धन-दौलत है क्या चीज़ ! मनमें किसी तरहका क्षोभ न रखना बेटी ! मैं महिमको खूब अच्छी तरह जानती हूँ, वह ऐसा ही लड़का है;—चाहे कितना भी दुःख तुम्हें उसके लिए क्यों न उठाना पड़े, किसी न किसी दिन भगवानके आशीर्वादसे वह सार्थक होगा ही होगा। वे इतने बड़े प्रेमकी बेकदरी हरगिज नहीं कर सकते, इतना मैं तुमसे निश्चयसे कहती हूँ।

अचलाने फिर एक बार झुककर उनके पैर छुए।

बुआजीने उसकी ठोड़ी छूकर अपनी उँगलियाँ चूमते हुए मृदु कंठसे कहा—अहा, ऐसी एक बहू लेकर मैं भी अगर घर-गिरिस्ती कर सकती !

सुरेश आकर दोनोंको गाड़ीपर बिठा गया और बिना कुछ कहे चुपचाप नमस्कार करके लौट गया। जाते वक्त ललिटेनके प्रकाशमें लहमे-भरके लिए उसके चेहरेने अचलाकी दृष्टिको आकर्षित किया। उस चेहरेपर क्या था, सो जगदीश्वर जाने; पर अदम्य वाष्पोच्छ्वास उसके कंठतक आकर निकलनेकी कोशिश करने लगा,—और बग्घी तेजीसे सड़कपर जा पहुँची। सड़ककी भीड़ तब घट चुकी थी, उधर देखकर सहसा उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे अब तक वह स्वप्न देख रही थी। वह सुखका था या दुखका, सो बताना मुश्किल है। केदार बाबू अब तक चुप बैठे थे,—शायद सुरेशके ऐश्वर्यकी शकल उनके दिमागमें चक्कर काट रही थी; सहसा एक गहरी साँस लेकर वे बोल उठे—हाँ, है बड़ा आदमी !

मगर लड़कीकी तरफसे कोई उत्तर नहीं मिला। उत्साहकी कमीसे बाकीका रास्ता उन्होंने चुपचाप ही तय किया।

गाड़ी आकर जब उनके दरवाजेपर खड़ी हुई और साईस दरवाजा खोलकर बगलसे खड़ा हो गया तब फिर उन्हें होश आ गया और वे एक गहरी साँस लेकर मन ही मन बोले—सुरेशको हममेंसे किसीने भी नहीं पहचाना, देवता है।

१४

आज अचलाका ब्याह है। विवाह-मंडपके रास्तेमें पल-भरके लिए सुरेश दिख पड़ा था। उसके बाद वह न जाने कहाँ गायब हो गया, रात-भर केदार बाबूके

घर उसका फिर पता ही नहीं लगा।

ब्याह हो गया। दो-एक दिन अचलाके मनमें उथल-पुथल होती रही। उस दिन निमंत्रणकी रातको सुरेशकी बुआने जो बातें कही थीं, उन्हें वह भुलाये भूल नहीं रही थी; आज उससे उसे छुटकारा मिल गया।

महिमकी अटल गम्भीरता आज भी ज्योंकी त्यों बनी हुई है। आनन्द-निरानन्दका लेशमात्र भी बाह्य प्रकाश उसके चेहरेपर दिखाई न दिया। फिर भी शुभ-दृष्टिके समय उस मुखड़ेको देखकर अचलाका सम्पूर्ण हृदय मारे आनन्द और माधुर्यके भर गया। मन ही मन पतिके चरणोंपर सिर रखकर सर्वान्तःकरणसे उसने कहा—प्रभु, अब मुझे कोई डर नहीं। तुम्हारे साथ जहाँ जिस हालतमें रहूँगी, वहीं मेरा स्वर्ग है; आजसे चिरकाल तक तुम्हारी कुटिया ही मेरे लिए राज-प्रासाद है।

अचलाके सुसरालको बिदा होनेके दिन केदार बाबूने अपने कुरतेकी बाँहसे आँसू पोंछते हुए कहा—बिटिया, मेरा आशीर्वाद है, पतिके साथ दुःख-दारिद्र्य अंगीकार करती हुई जीवन-पथपर,—कर्तव्य-पथपर निर्विघ्न अग्रसर होती रहो। भगवान् तुम लोगोंका मंगल करेंगे। कहकर वे आँखें पोंछते हुए बगलके कमरेमें चले गये।

उसके बाद, श्रावणकी अल्प-आलोकित दोपहरीमें, बिन-बरसे बादलोंसे घिरे हुए आकाशके नीचेसे और संकीर्ण, कीचड़-भरे काई-जमे ग्राम्य-पथके ऊपरसे पालकीपर चढ़कर अचला एक दिन अपने पतिके घर जा पहुँची। परन्तु इस रास्तमें ही मानो उसके विवाहका आधा सौन्दर्य जाता रहा।

गाँव-देहातोंसे उसका परिचय सिर्फ़ छापेके हरूफोंके जरियेसे ही था। उस परिचयमें दुःख-दारिद्र्यके हजारों संकेत होनेपर भी उसकी प्रत्येक पंक्तिमें कविता थी,—कल्पनाका सौरभ था। पालकीसे उतरकर वह मकानके भीतर पहुँची और चारों तरफ देखने लगी; परन्तु किसी भी तरफसे कवित्वका कोई भी संकेत उसके हृदयपर प्रभाव न डाल सका। उसकी कल्पनाका गाँव साक्षात्-दृष्टिसे ऐसा निरानन्द, निर्जन होगा जहाँ मिट्टीके घर और उनमें ऐसी नमी, अँधेरा,—दरवाजे-जंगले इतने संकीर्ण-छोटे, ऊपर बाँस और खपचियोंका बना भद्दा छप्पर,—इसकी उसने कभी स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की थी। ऐसे भद्दे-भौंड़े घरमें जिन्दगी बितानी पड़ेगी, यह महसूस करते ही उसका हृदय जैसे टूट-सा गया। पतिका सुख, विवाहका आनंद, सब कुछ एक ही क्षणमें माया-मरीचिकाकी तरह

उसके हृदयसे विलीन हो गया। घरमें सास-ससुर, ननद-भौजाई कोई भी नहीं; दूरके नातेकी एक दादीजी थीं, वे दूसरे मुहल्लेसे अपने आप ही वर-वधूको वरण करके घरमें प्रवेश करानेके लिए आ पहुँचीं। परन्तु विवाहकी आजन्म-परिचित पोशाक और साज-सज्जाका अत्यन्त अभाव देखकर वे अव्यक्त विस्मयसे खड़ीकी खड़ी रह गईं। अन्तमें उन्होंने वधूका हाथ पकड़कर उसे घरमें ले जाकर बिठाया और मुहल्लेकी जो औरतें बहू देखनेके लिए आई थीं, वे अचलाकी उमरका अन्दाजा लगाकर परस्पर मुँह देखने लगीं और एक दूसरेकी देह मसककर इशारोंमें बातें करने लगीं। अन्तमें जब वे लौटने लगीं, तो उनके अस्फुट कलरवमें 'ब्रह्म-समाजी' 'मलेच्छ' आदि दो-चार मीठे शब्द भी सुनाई दिये, जो अचलाके कानों तक भी पहुँच गये।

बहुत ही जल्द गाँव-भरमें यह बात फैल गई कि महिमकी म्लेच्छ कन्यासे ब्याह करनेकी बात सच है। ब्याहसे पहले ही इस तरहकी एक अफवाह उड़ी थी और उसपर कुछ कुछ आन्दोलन और आलोचना भी हो चुकी थी। अब बहू देखकर किसीको रंचमात्र सन्देह न रहा कि जो बात फैली थी, वह सोलहों आने सच थी।

पड़ोसिनोंके चले जानेपर जग-दादीने आकर कहा—नत-बहू, तो अब मैं चल दी! जरा दूर जाना है, और घर बगैर गये काम नहीं चलनेका,—छोटी नातिनी है सो,—कहते कहते वे अनुरोध प्रार्थनाका मौका दिये बगैर ही चल दीं। अचला समझ गई कि अब तक जो वे मन ही मन छटपटाती हुई रुकी हुई थीं, सो महज इसलिए कि वे अपना नाता नहीं जता सकी थीं। वास्तवमें जग-दादीका इसमें कोई अपराध न था। असलमें, अगर उन्हें ऐसा मालूम होता कि सचमुच ही जो अफवाह उड़ी थी वह सच है, तो वे इधर पैर ही न बढ़ातीं। कारण, गँवई-गाँवमें रहकर इन बातोंसे डरती न हो, किसीकी इतनी बड़ी छाती ग्राम्य इतिहासमें सुदुर्लभ है।

जग-दादीके अन्तर्धान होनेपर यदू नौकर और उड़िया रसोइया तथा कलकत्तेसे हाल ही आई हुई अचलाके मायकेकी महरी हरियाकी माके सिवा घरमें और कोई न रहा, जिससे सूना घर खाँव खाँव करने लगा। कुछ देरसे वर्षा थमी हुई थी, अब फिर बूँदा-बूँदी शुरू हो गई। हरियाकी मा अचलासे धीरेसे बोली—ऐसा घर तो देखा नहीं बेटी, कहीं भी तो कोई दिखाई नहीं देता—

अचला नीचेको मुँह किये स्तब्ध बैठी थी। अन्यमनस्क-सी सिर्फ 'हूँ' कहकर रह गई।

हरियाकी माने फिर कहा—जमाई बाबू भी तो नहीं दिखाई देते! तभी एक बार दिखाई देकर फिर न जाने कहाँ चले गये—

अचलाने इस बार भी कोई जवाब नहीं दिया।

परन्तु इस वन-जंगलसे परिवेष्टित शून्य पुरीमें हरियाकी माका अपना चित्त चाहे कितना ही क्यों न उद्भ्रान्त हुआ हो, अचलाको तो उसने बचपनसे ही पाला-पोसा था, यही कारण है कि उसे जरा आश्वस्त करनेके लिए उसने कहा—डर किस बातका है! सचमुच ही कोई पानीमें थोड़े ही आपड़े हैं। जमाई बाबूके आते ही सब ठीक हो जायगा। तब तक ये सब कपड़े तो बदल डालो, मैं सन्दूक खोलकर कपड़े निकाले देती हूँ—

अभी रहने दो हरीकी मा।—कहकर अचला उसी तरह नीचेको सिर झुकाये बैठी रही। जीवनका सारा स्वाद और सौरभ उसका जाता रहा था।

जोरकी वर्षा आ गई। उस वेगसे बढ़ती हुई वर्षा-धारामें दिनका अत्यल्प प्रकाश कब बुझ गया और कब श्रावणके मेघाच्छन्न आकाशको भेदकर मलिन ग्राम्य-गृहमें संध्या उतर आई,—कुछ भी मालूम नहीं हुआ। सिर्फ आनन्द-लेशहीन, अँधेरे घरके कोने-कोनेमें आर्द्र अन्धकार चुपके चुपके गाढ़तर होने लगा। यदू नौकरने आकर हरीकेन लालटेन घरके बीचमें रख दी। हरियाकी माने पूछा—जमाई बाबू कहाँ हैं?

"क्या मालूम!" कहकर यदू जाने लगा। उसके संक्षिप्त और भद्दे जवाबसे हरियाकी मा शंकित हो उठी, बोली—क्या मालूमके क्या मानी, वे नहीं हैं क्या?"

"नहीं।"—कहकर यदू चला गया। वह आगन्तुकोंपर प्रसन्न नहीं है, यह बात साफ समझमें आ गई। हरियाकी मा अत्यन्त भयभीत होकर अचलाके पास आकर भय-व्याकुल कंठसे बोली—रंग-ढंग मुझे तो अच्छे नहीं मालूम होते बेटी। दरवाजेका हुड़का लगा आऊँ क्या?

अचलाने आश्चर्यके साथ कहा—हुड़का क्यों लगा आओगी?

हरियाकी मा बचपनहीसे देश छोड़कर कलकत्ता रह रही है, फिर वह कभी गाँवमें गई ही नहीं। गाँवोंके चोर, डाकू आदिके किस्सोंकी याददाश्तके सिवा

और सब बातोंकी स्मृतियाँ उसके लिए धुँधली-सी हो चुकी थीं। वह बाहरके अन्धकारकी तरफ चकित दृष्टिसे एक नजर देखकर अचलाकी देहसे सटके खड़ी हो गई और चुपकेसे बोली—गँवई-गाँव है,—कुछ कहा नहीं जा सकता बेटी! कहते कहते उसके रोंगटे खड़े हो गये।

ठीक इसी समय आँगनमें आकर किसीने आवाज दी—दादीजी कहाँ हैं? —कहती हुई एक बीस इक्कीस वर्षकी दुबली-पतली छरछरे बदनकी लड़की पानीमें भीगती हुई दरवाजेके पास आ खड़ी हुई; बोली—पहले जरा नमस्कार कर लूँ दादी, फिर कपड़े बदलूँगी। कहते हुए उसने अचलाके पाँवोंके पास सिर रख कर प्रणाम किया; फिर लालटेन उठाकर अचलाके मुँहके पास ले जाकर और कुछ देर तक एक दृष्टिसे उसका निरीक्षण करके वह चिल्ला उठी—दादा ओ दादा—

महिम सबको घर पहुँचा कर तुरन्त ही इस लड़कीको लाने दूसरे गाँव चला गया था। दूसरी कोठरीसे उसने जवाब दिया—क्या है री मृणाल?

"यहाँ आओ तो बताती हूँ—"

महिम दरवाजेके पास आकर बोला—क्या है री?

मृणालने लालटेनके उजालेमें फिरसे एक बार अच्छी तरह अचलाका मुँह देखकर कहा—नाः, तुम्हीं जीतमें रहे दादा! मुझसे ब्याह करके ठगा जाते!

महिमने बाहरहीसे घुड़ककर कहा—तू मेरी बात नहीं मानेगी न मृणाल? फिर वही हसी-मज़ाक? मानेगी नहीं तू?

"वाह, हँसी कर रही हूँ मैं!" अचलाके मुँहकी तरफ देखकर मुसकराती हुई बोली—कसम खाकर कहती हूँ, मजाक नहीं। अच्छा, तुम अपने दूल्हासे ही पूछ देखो; किसी जमानेमें मैं उन्हें पसन्द थी या नहीं?

महिमने कहा—तो तू बकती रह, मैं बाहर चल दिया।

मृणालने कहा—सो जाओ न, तुम्हें किसीने पकड़ रक्खा है?—फिर अचलाकी ठोड़ीको अत्यन्त स्नेहके साथ हिलाते हुए कहा—अच्छा दादी, तुम्हीं बताओ न, दाह नहीं होता? इस घरकी मालिकिन तो मैं ही होनेवाली थी! लेकिन मेरी मा मुँहजलीने न जाने कौनसा मंतर दादाके कानोंमें फूँक दिया,—मैं दादाकी आँखोंका काँटा हो गई। नहीं तो,—अरे ओ जदुआ, घोषाल महाशय कहाँ चले गये?

यदुने कहा—तालाबमें हाथ पाँव धोने गये हैं।

"ऐं ऐसे अँधेरेमें तालाबमें ?"—मृणालका हँसता चेहरा क्षण-भरमें मारे दुश्चिन्ताके स्याह पड़ गया। घबराकर बोली—यदु, जा भइया, बत्ती लेकर जरा तालाब तक चला जा। बूढ़े आदमी ठहरे, अभी कहीं अँधेरेमें पैर फिसल गया तो हाथ-पाँव और टूट जायँगे।

दूसरे ही क्षण अचलाके मुँहकी तरफ देखकर लज्जित-सी होकर कहने लगी—कैसी तकदीर लिखाके लाई थी मैं, बहना, कहाँसे एक बहत्तरसाली बूढ़ेको ढूँढ़के मेरे सुपुर्द कर दिया गया है। उसकी सेवा करते करते और सम्हालते सम्हालते ही मेरी ज़िन्दगी खतम हुई जा रही है। अच्छा, बहन, पहले जरा उस कोठरीमें जाकर कपड़े बदल आऊँ फिर बातें होंगीं। मगर, सौत हूँ तो क्या, नाराज नहीं हो पाओगी मुझसे, यह पहलेसे कहे देती हूँ! और कहो, तो मैं अपने बूढ़ेमें भी तुम्हारा हिस्सा रख दूँगी।—कहते कहते हँसीकी छटासे घर-भरमें उजाला करती हुई, जल्दीसे दूसरी कोठरीमें चली गई।

इस ढंगके हँसी-मजाकसे अचलाको पहले कभी साबका नहीं पड़ा था। साराका सारा मजाक उसे ऐसा कुरुचिपूर्ण और भद्दा मालूम हो रहा था कि मारे शरमके वह गड़ गड़ गई। वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि इतनी बड़ी निर्लज्ज प्रगल्भता किसी स्त्रीमें हो सकती है! यही कारण है कि यह सारी दिल्लगी उसकी आजन्मकी शिक्षा और संस्कारकी नींवँपर चोट पहुँचा रही थी। फिर भी उसे ऐसा मालूम होने लगा कि इसके आगमनसे उसके निर्वासनकी आधी वेदना दूर हो गई है। और, यह कौन है, कहाँसे आई, इसके साथ क्या सम्बन्ध है,—यह सब जाननेके लिए अचला उत्सुक हो उठी।

हरियाकी माने कहा—यह कौन है बेटी ? बड़ी खुशमिजाज है!

अचलाने सिर्फ सिर हिलाकर कहा—हाँ।

भीगे कपड़े बदलकर मृणाल इस कमरेमें आकर बोली—सिर्फ हँसी मजाक करके ही चली गई थी दादी, अपना असली परिचय तो दे ही नहीं पाई। और परिचय देनेको ऐसा है ही क्या ? तुम्हारे जो दूल्हा हैं, वे मेरे माके बाप हैं। इसीसे मैं उन्हें बचपनहीसे दादाजी कहती आई हूँ।—जरा ठहरकर फिर कहने लगी—मेरे बाप और तुम्हारे ससुर, दोनोंमें बड़ी गहरी मित्रता थी। अचानक एक दिन गाड़ीके नीचे आ जानेसे जब उनका हाथ टूट गया तो नौकरी छूट गई। तबसे तुम्हारे ससुरने हम सबको अपने यहाँ रक्खा। इसके बहुत दिन

बाद मैं पैदा हुई। दादा तब आठ बरसके थे। दादाकी मा तो इन्हें जनम दकर ही मर गई; और इनसे बड़े जो दो भाई थे सो पहले ही डिफथीरियाकी बीमारीमें मर चुके थे। इसीसे, मेरी मा यहाँ आते ही इस घरकी मालिकिन हो गई। उसके बाद मेरे बापूजी भी मर गये;—तबसे हम लेग यहीं रहने लगे। इसके बहुत दिन बाद तुम्हारे ससुर भी मर गये;—और हम सब यहीं बने रह गये। अभी कुल पाँच साल हुए हैं, पलासीके घोषालोंके घर मेरा ब्याह करके दादाने मुझे यहाँसे निकाल दिया है। मा जिन्दा रहतीं, तो थोड़ा-बहुत जोर भी रहता।

" बड़ी बहू इसी कमरेमें हो क्या ? " कहते हुए एक बड़े-से नाटे-गोरे भले मानस दरवाजेके पास आकर खड़े हो गये।

मृणालने कहा—आओ, आओ।—फिर अचलाकी तरफ देखकर इशारा करके मुसकराते हुए कहा—ये ही मेरे मालिक हैं, दादी। अच्छा, तुम्हीं बताओ न बहन, इन बहत्तर-साली बूढ़ेके साथ मैं अच्छी लगती हूँ ? इस जनमका रूप-जोबन सब मिट्टी नहीं हो गया बहन ?

अचला जवाब क्या देती, मारे शरमके सिर झुकाये बैठी रही।

इन भले आदमीका नाम है भवानी घोषाल। वे हँसकर कहने लगे—इनकी बातपर विश्वास न कीजिएगा दादीजी,—सब झूठी बात है। ये तो सिर्फ यही चाहती रहती हैं कि लेगोंकी निगाहसे मैं गिर जाऊँ। नहीं तो, उमर तो मेरी अभी बावन या ति—

मृणाल बीचहीमें बोल उठी—चुप रहो, चुप रहो। अरे, मेरे ये दादा ऐसे दुश्मन हैं कि भगवान ही जानते हैं। मुझे सब तरफसे मिट्टी कर दिया;—अच्छा, इस बूढ़ेके हाथ सौंपनेसे कहीं यह अच्छा न होता, दादी, कि हाथ-पैर बाँधके गंगाजीमें डाल देते ? सच बताओ तो बहन ?

अचला पूर्ववत् चुप बैठी रही—उसका चेहरा सुर्ख हो उठा।

घोषालजी धीरेसे भीतर आकर कुछ देर तक चुपचाप अचलाके लज्जासे झुके हुए चेहरेकी तरफ देखकर सहसा एक गहरी आरामकी साँस लेकर बोले—आपने मेरी इज्जत रख दी दादीजी, इतने दिनों बाद इस छोकरीका घमंड चूर चूर हो गया। अपने रूपके मिजाजके मारे इसे कुछ सूझता थोड़े ही था !

फिर मृणालकी तरफ लक्ष्य करके बोले—क्यों, अब हो गया ? जंगलमें अब तक सियार ही राजा था, अब शहरका रूप किसे कहते हैं,—आँख खोलके देख लो जरा !

मृणाल बोली—हाँ हाँ ! रहने भी दो। जहाँ मेरा घमंड है, वहाँ चूर करनेवाले बहुत देखे हैं। किसकी ताकत है उसे चूर करनेकी ?—कहकर पतिकी तरफ उसने जो गुप्त कटाक्ष किया सहसा उसपर अचलाकी दृष्टि पड़ गई।

घोषालने हँसते हुए कहा—सुन लिया न दादीजी,—जरा सावधानीसे रहिएगा। दोनोंमें जैसा गहरा मेल है,—जैसा आना-जाना है, कुछ कहा नहीं जा सकता,—और मैं तो ठहरा बहत्तरसाली बूढ़ा; बीचमें रहा तो क्या, और न रहा तो क्या ! अपनी चीज सम्हालके रखिएगा,—इस हितैषी बूढ़ेका सिर्फ इतना ही अनुरोध है।

" मृणाल, तुम सब क्या रात-भर यही करती रहेगी ? "

" तो क्या करूँ दादा ? "

" एक दफे रसोई-घरकी तरफ भी न जायगी ? "

मृणाल यकायक उछल पड़ी, बोली—अरे रे, कैसी भूल हो गई मुझसे दादा। रसोइया-महाराजको मुझे पहले ही देख आना चाहिए था। अच्छा, तुम लोग बाहर जाओ, हम जा रही हैं। "

महिमने पूछा—'हम' कौन ?

मृणालने कहा—मैं और दादीजी।—फिर अचलाको लक्ष्य करके कहा—जब मैं आ गई हूँ, तो, इस गृहस्थीका सारा चार्ज तुम्हें सम्हलाकर ही जाऊँगी बहन।

महिम और भवानी बाहर चले गये। मृणालने अचलासे फिर कहा—मुझे दो-एक दिन पहले ही आ जाना चाहिए था। मगर सासके दमेके मारे घर छोड़के निकल न सकी। अच्छा, तुम कपड़े बदलके तैयार हो जाओ भाभी, मैं अभी आकर तुम्हें ले जाऊँगी। यह कहकर मृणाल रसोई-घरकी ओर चल दी।

अब वर्षा थम चुकी थी, और घने बादल तितर-बितर हो जानेसे नौमीकी चाँदनीसे आकाश बहुत कुछ स्वच्छ होता जा रहा था।

रसोईका सब इन्तजाम ठीक करके मृणाल अचलाके पास आकर बैठ गई और उसका एक हाथ अपने हाथमें लेकर बोली—दादीजीकी अपेक्षा भाभी कहना अच्छा होगा, क्यों भाभी ?

अचलाने मृदु स्वरमें कहा—हाँ।

मृणालने कहा—रिश्तेमें तुम बड़ी होनेपर भी उमरमें मैं बड़ी हूँ। इसलिए मेरी इच्छा है कि मुझे भी तुम मृणाल जीजी कहा करो, क्यों ठीक है न ?

अचलाने कहा—अच्छा।

मृणालने कहा—आज तुम्हें रसोई-घर दिखा लाई; लेकिन कल एकदम भण्डारेकी चाबी तुम्हारे पल्लेसे बाँध दूँगी, ठीक है न?

अचलाने कहा—चाबीकी मुझे जरूरत नहीं बहन।

मृणालने हँसकर कहा—जरूरत नहीं? बाप रे, यह कैसी बात करती हो! भण्डार क्या तुच्छ चीज है भाभी, जो कह रही हो, उसकी चाबीकी जरूरत नहीं? गृहिणीके राज्यकी वही तो राजधानी है भाभी!

अचलाने कहा—हुआ करे राजधानी, उसका मुझे कोई लोभ नहीं। मगर तुमपर मेरा बड़ा लोभ है। मैं जल्दी पीछा नहीं छोड़नेकी मृणाल जीजी!

मृणालने दोनों बाँहोंसे अचलाको जकड़ते हुए कहा—सौतको तो मार झाड़ू निकाल बाहर करना चाहिए, सो तुम उलटी उसे पकड़ रखना चाहती हो! यह तुम्हारी कैसी बुद्धि है भाभी?

अचलाने धीरेसे कहा—तुम्हारी यह हँसी मुझे अच्छी नहीं लगती जीजी। अच्छा, इस देशमें क्या सभी कोई ऐसा ही मजाक किया करते हैं?

मृणाल खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली—नहीं दादी, नहीं, कोई नहीं करता। यह तो सिर्फ मैं ही करती हूँ, सबको यह चीज मिल कहाँ सकती है?

अचलाने कहा—मिलनेपर भी हमारी जीभसे तो ये बातें निकल ही नहीं सकतीं, बहन! हमारे कलकत्तेके समाजमें तो बहुत-सी स्त्रियाँ यह सोच ही नहीं सकतीं कि कोई भद्र महिला ऐसी बातें भी कभी मुँहसे निकाल सकती है।

मृणाल जरा भी लज्जित नहीं हुई। बल्कि जोरसे फिर एक बार अचलाको जकड़के छातीसे चिपटा कर बोली—तुम्हारे शहरकी कितनी भद्र महिलायें ऐसी हैं जो मेरी तरह ऐसे जकड़के छातीसे लगा सकती हैं, बताओ तो भाभी? सब कोई क्या सभी काम कर सकती हैं? यहीं देखो न, तुमसे कितनी देरकी मुलाकात है जो, इतनेहीमें मालूम होता है कि मेरी कोई बहन नहीं थी सो एक बहन मिल गई। और यह सिर्फ बात ही बात नहीं है, जिन्दगी-भर मुझे इस बातका सबूत जुटाते रहना पड़ेगा,—निभाना पड़ेगा, सो याद रखना। यहाँ हँसी-मजाक नहीं चलनेका!

अचला शिक्षित लड़की है। देहान्तके इस विरुद्ध-समाजमें रहकर उसका भविष्य-जीवन किस तरह बीतेगा, इस बातको उसने यहाँकी मिट्टीपर कदम रखते

ही समझ लिया था। इस मौकेको उसने यों ही हाथसे नहीं जाने दिया। परिहासको गम्भीरतामें परिणत करके कहा—मृणाल जीजी, सचमुच क्या इसका सबूत तुम जिन्दगी-भर जुटाती रहोगी ?

मृणालने कहा—हम तो कोई शहरकी महिला नहीं बहन, जुटाना ही पड़ेगा। जो बात तुम्हें छूकर कह दी वह तो प्रतिज्ञा हो गई,—उससे तो फिर मर जानेपर भी पलट नहीं सकती !

अचलाने इस बातकी ज्यादा आलोचना न करके दूसरी बात छेड़ दी, हँसके कहा—जल्दी भागोगी नहीं, सो भी इसी तरह कह दो।

मृणाल हँस दी, बोली—बेवकूफ जानके मुझे हर बातमें फँसाना चाहती हो भाभी ? मगर यह बात तो मैं पहले ही कह चुकी हूँ, अच्छी तरह चार्ज बगैर सम्हलाये न जाऊँगी।

अचलाने सिर हिलाते हुए कहा—चार्ज सम्हालनेका मुझे तिलमात्र भी आग्रह नहीं।

मृणालने कहा—उसे ही करा दूँगी तब जाऊँगी; मगर ज्यादा दिन तो घर छोड़कर मैं रह नहीं सकती बहन ! जानती तो हो, कितनी बड़ी गृहस्थी मेरे सिरपर है।

अचलाने गरदन हिलाकर कहा—नहीं, मैं नहीं जानती।

मृणालने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—दादाने मेरी बात तुमसे पहले नहीं कही ?

अचलाने कहा—नहीं, किसी दिन भी नहीं कही। अपने घरके विषयमें तो सभी बातें उन्होंने मुझसे कहीं हैं,—लेकिन जो सबसे पहले कहनी चाहिए थी, सो तुम्हारी बात किसी भी दिन नहीं बताई। मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है मृणाल जीजी।

मृणालने अन्यमनस्ककी तरह जवाब दिया—सो तो है ही।

अचला कुछ देर चुप रहकर मृदु कण्ठसे हँसती हुई बोली—तुम्हारे ही साथ पहले इनकी सगाई हो रही थी क्या ?

मृणाल अब भी अन्यमनस्क होकर कुछ सोच रही थी; बोली—हाँ।

कहनेके बाद तुरन्त ही मृणालके कानोंमें बात जाकर खट-से बजी। उसने अचलाके चेहरेकी तरफ आँखें उठाकर कहा—होनेकी नहीं थी, इसीसे नहीं हुई।

अचलाने फिर भी पूछा—होनेमें रुकावट क्या थी ? तुम्हारा उनका कोई सच्चा रिश्ता तो था ही नहीं ? इसके सिवा, बचपनमें जो प्रेम हो जाता है, उसकी उपेक्षा करना भी तो अच्छी बात नहीं ?

उसके पूछनेके ढंगसे मृणाल सहसा चौंक पड़ी । क्षण-भर वह स्थिर दृष्टिसे अचलाके मुँहकी तरफ देखती रही, फिर बोली—यह सब तुम क्या ढूँढ़ती फिरती हो भाभी ? तुम क्या यह समझती हो कि बचपनके सब प्रेमोंका आखिरी नतीजा यही है ? या आदमी ब्याह करने-करानेका मालिक है ? यह सिर्फ इसी जन्मका नहीं, भाभी, जन्म-जन्मान्तरका सम्बन्ध है । मैं जिनकी चिरकालकी दासी हूँ, उन्हींके हाथ भगवानने मुझे सौंप दिया है । आदमीके चाहने न चाहनेसे क्या आता जाता है ?

अचला लज्जित होकर बोली—सो तो ठीक बात है मृणाल जीजी,—मैं इसीसे पूछ रही थी—

अपनी बात वह पूरी न कर सकी, उसका सारा चेहरा मारे लज्जाके सुर्ख पड़ गया और मृणालसे वह छिपा न रहा । उसने अचलाका हाथ स्नेहके साथ अपनी मुट्ठीमें लेकर कहा—भाभी, तुम्हें पति अभी उस दिन ही मिले हैं; मगर मैं तो अपने पतिकी सेवा पाँच सालसे कर रही हूँ । मेरी एक बात सुनो बहन, पतिकी इस दिशाको कभी किसी दिन अपनी बुद्धिके जोरसे जबरदस्ती आविष्कार करनेकी कोशिश न करना । इसमें बल्कि ठगाना अच्छा, पर जीतनेसे कोई लाभ नही ।

यदूने बाहरसे कहा—जीजी, बाबू लोगोंके लिए चौका लग गया ।

" अच्छा, चल, मैं आ रही हूँ । " कहकर मृणालने सहसा दोनों हाथ बढ़ाकर अचलाका मुँह अपनी तरफ खींच लिया और चटसे एक चूमा लेकर वह जल्दीसे चली गई ।

१५

" औ भाभी ! "

अचला व्यस्त होकर बगलकी कोठरीसे झटपट कोठरीमें पहुँच गई ।

मृणाल कमरसे साड़ीका पल्ला बाँधकर एक छोटी दराजदार मेज अकेली ही खींचखाँचकर सीधी तौरसे रख रही थी । अचलाके भीतर कदम रखते ही वह बड़े जोरसे गुस्सा होती हुई चिल्ला उठी—क्यों री मुँहजली, तू तो नवाबजादीकी तरह हाथपर हाथ धरे बैठी रहेगी, और मैं तेरा सोनेका कमरा सजाती

रहूँगी। कहती हूँ उस झाड़ूको उठा, इस कोनेको साफ कर।—कहते कहते वह हँसीको दबा न सकी और खिलखिलाकर हँस पड़ी।

शोर-गुल सुनकर हरियाकी मा भी पीछे पीछे आ पहुँची। बोली—ऐसा क्यों करती हो जीजी, घरमें इतने नौकर नौकरानी मौजूद हैं, दीदीने क्या कभी हाथसे झाड़ू छुई है जो आज गँवई-गाँवकी औरतोंकी तरह झाड़ा-बुहारी करेंगी? मैं बुहारे देती हूँ।—कहकर वह झाड़ू उठाना ही चाहती थी कि मृणालने कृत्रिम क्रोधसे डाँटते हुए कहा—तू रहने दे लुगाई! दीदीको तू क्या मुझसे भी ज्यादा जानती है जो वकालत करने आई है? और उसने अचलाके हाथमें जबरदस्ती झाड़ू थमा दी, और हरियाकी मासे हँसते हुए कहा—अरी, तेरी दीदीकी तबीयतमें आ जाय तो ऐसा काम कर सकती हैं जो गँवई-गाँवकी औरतें भी नहीं कर सकतीं। अचलासे बोली—चलो तो भाभी, उस कोनेको बुहारके साफ तो कर डालो चटसे।

अचलाने बुहारनेमें लगते हुए कहा—मृणाल जीजी, तुम जादू जानती हो न?

मृणालने कहा—क्यों, कैसे?

अचलाने कहा—और नहीं तो क्या, इस घरको साफ करनेके लिए मैंने झाड़ू हाथमें ली है, यह जादूकी करामात नहीं तो क्या है?

मृणालने कहा—तुम झाड़ू न उठाओगी तो कौन उठायेगा जी? तुम्हारा घर बुहारने करनेके लिए परले मुहल्लेसे पदीकी मौसी आयेंगी क्या? लो चलो, बातोंमें वक्त बरबाद न करो, शाम हो चली।

अचलाने काम करते करते हँसकर कहा—खुद भी घड़ी-भर न बैठोगी और मुझे भी काम कराते कराते परेशान करती रहोगी;—सच कहती हूँ, मृणाल जीजी, इन पाँच-छह दिनोंमें तुमने मुझसे इतनी मेहनत कराई है कि चायके बगीचोंके मालिक लोग भी शायद अपने कुली-मजदूरोंसे इतनी मेहनत न लेते होंगे।

मृणालने पास आकर उसकी ठोड़ीपर हलकी-सी एक उँगली जमाते हुए कहा—इसीसे तो घर-द्वार देखनेसे मालूम होता है कि घरमें लक्ष्मीका आविर्भाव हुआ है। तुम मेहनतकी कह रही हो भाभी,—जिस दिन पति-पुत्र और घर-गृहस्थीके मारे नहाने-खानेकी भी फुरसत न मिलेगी, उस दिन समझोगी कि यह स्त्री-जन्म सार्थक हुआ। भगवानसे मेरी यही प्रार्थना है कि जल्दीसे जल्दी तुम्हारे वे दिन आयें,—अभी मेहनत देखी कहाँ है, मालकिन,—कहते कहते वह

हँसना चाहती थी, पर उसके ओठ काँपने लगे।

हरियाकी मा फफककर रो पड़ी। बोली—यही असीस दो जीजी, यही असीस दो! कहते हुए उसे अचलाकी माका खयाल आ गया। वह साध्वी अत्यन्त असमयमें जब स्वर्ग सुधार गई तब इस जरा-सी बच्चीको हरियाकी माके हाथ ही सौंप गई थी। वही लड़की अब इतनी बड़ी होकर अपने पतिकी गृहस्थी सम्हालने आई है।

मृणालने उसे डाँटते हुए कहा—अरे मर, बात बातपर फुन फुन रोनेवाली लुगाई, तू रोती क्यों है?

हरियाकी मा आँखें पोंछती हुई बोली—रोती क्या यों ही हूँ जीजी? तुम्हारी बातें सुनकर रुलाई तो रुकती ही नहीं। मैया री, तुम न आ जातीं तो इस घरमें एक रात भी हम लोगोंकी कैसे बीतती, कोई ठीक नहीं था।

मृणालको इस घरमें आये आज छह दिन हुए। जबसे वह आई है, उसने घर-द्वारसे लेकर आदमियों तककी शकल-सूरत बदल डालनेके काममें अपनेको लगा रखा है। परन्तु उसके सब काम-काजों और हँसी-मजाकमें जो एक जाने जानेका भाव प्रकट हो रहा था, वह अचलाको पीड़ा दे रहा था। कारण, मृणालके काम और बातचीतमें,—आचार और व्यवहारमें एक विशाल सहज-स्वाभाविक विस्तृति थी, जिसकी ओटमें खड़ी होकर अचलाको अपने नये जीवनकी अपरिचित घर-गृहस्थीको झाँककर आसानीसे पहिचान लेनेका मौका मिल रहा था; और उससे भी बढ़कर जिस बड़ी चीजको अच्छी तरह और विशेषताके साथ पहचाननेका उसे कौतूहल हो रहा था वह थी स्वयं मृणाल। उसकी गार्हस्थिक अवस्था बहुत अच्छी नहीं, यह बात उसके गहनोंसे बिलकुल सूने हाथोंकी तरफ देखनेसे ही मालूम हो जाती है। एक तो उसके पति स्वास्थ्यहीन, जो किसी भी दृष्टिसे अचलाको उसके योग्य नहीं मालूम होते; उसपर घर-गृहस्थीके काम-काजकी बेहद मेहनत; और फिर उस बूढ़ी बीमार सासकी कारण-अकारण डाट-फटकार और झिड़कियोंका शुमार नहीं, जो अधमरी हालतमें गलेमें लटक रही है। ये सब बातें उसने स्वयं मृणालके मुँहसे ही सुनी हैं। पर यह सब कुछ होते हुए भी कोई भी प्रतिकूलता मानो दुःख देकर इस स्त्रीको जीवन-यात्राके मार्गमें थकाकर बैठा नहीं सकती। गँवई-गाँवकी इस मूर्ख स्त्रीका ऐसा भाव है कि हृदयके आनन्द-निरानन्दके सिवा बाहरकी परिस्थितियोंका मानो इसके लिए कोई अस्तित्व ही नहीं। हर घड़ी साथ साथ रहकर वह अच्छी तरह समझ रही थी कि जैसे कीचड़में पैदा होकर भी कमल सारी मलिनतासे भिन्न रहकर पानीके उतार-चढ़ावसे भी

अपनेको बिलकुल निर्लिप्त रखता है, ठीक उसी तरह यह बगैर पढ़ी-लिखी गरीब ग्राम्य-लक्ष्मी भी सब तरहके सांसारिक दुःख-दारिद्र्यकी गोदमें दिनरात रहते हुए भी सारी वेदना-यंत्रणाके ऊपर आरामसे उतरा रही है। न तो इसके शारीरिक थकान है और न मानसिक मलिनता। इससे हुआ यह कि अचलाको भी वह इन अनभ्यस्त कामोंके बीच लगातार खींचती चली जा रही थी। यद्यपि इनमेंसे किसी भी कामसे अचलाकी शिक्षा-दीक्षा और संस्कारोंका सामञ्जस्य नहीं था, फिर भी, अचलाको ऐसा मालूम हो रहा था कि इसमें 'ना' कहकर मुँह फेरके खड़ी हो जाना बड़ी भारी लज्जाकी बात होगी। इन छह दिनोंमें उसे इतनी भी फुरसत नहीं मिली कि अपने भाग्यको धिक्कारनेके लिए एक क्षण भी शोक करती,—सारे समयको वह हँसी-मजाक और गप-शपमें ऐसे ठोस तरीकेसे गूँथती जा रही थी। इसीसे उसके सुसराल वापस जानेके इशारे-मात्रसे अचलाको ऐसा मालूम हो रहा था कि उसके जानेके साथ ही साथ यह साराका सारा मिट्टीका घर, मय दरवाजे-जंगले और दीवारोंके, मानो ताशके घरकी तरह पल-भरमें गिर जायगा। मृणाल जीजीके चले जानेपर वह यहाँ एक घड़ी भी रहेगी कैसे?

शाम होनेके बाद अचलाने एक मौकेसे कहा—तुम जो हरदम भागने ही भागनेकी सोचा करती हो मृणाल जीजी, सो भला मायकेमें आकर इतनी जल्दी कौन जाना चाहती है बताओ तो? सो नहीं होनेका,—मैं जबतक कलकत्ते वापस नहीं जाती, तबतक तुम्हें यहाँ रहना ही होगा।

मृणालने कहा—क्या करूँ भाभी, बूढ़ी सास न तो आप मरती है और न मुझे ही घड़ी-भरको छोड़ती है। मैं कहती हूँ, बुढ़िया, तू मर जा। तेरे लड़केकी उमर साठ होने आई, आखिर क्या तू उसे खाकर जायगी? क्या बताऊँ बहन, रात दिन इतना खाँसती है, फिर भी दम अटकके मरती नहीं!

अचला हँस दी, बोली—तुम उन्हें शायद देखे नहीं सुहातीं!

मृणालने सिर हिलाकर कहा—फूटी आँखों नहीं!

अचलाने कहा—और तुम्हें?

मृणालने कहा—मुझे भी नहीं सुहाती। बुढ़ियाकी गँगा-यात्रा होगी तो मैं सवा रुपयेकी सिरनी बँटवाऊँगी, मैंने मन्नत कर रक्खी है जो!

अचलाने सिर हिलाते हुए कहा—मुझे विश्वास नहीं होता मृणाल जीजी! तुम्हें घरमें कौन सुहाता है, कौन नहीं, सो तुम्हारे मुँहसे सुनकर कुछ कहा नहीं

जा सकता। हो सकता है कि उस बुढ़ियाको ही तुम सबसे ज्यादा चाहती होओ।

मृणालने हँसते चेहरेसे कहा—सबसे ज्यादा चाहती हूँ! हो सकता है।—इतना कहकर वह अचलाका गाल मसककर किसी कामसे चली गई।

जाऊँ जाऊँ करते करते मृणाल फिर कुछ दिन रह गई। एक दिन सहसा अचलाने लक्ष्य किया कि जानेके लिए मुँहसे जितनी जल्दी करती रहती है, जानेके लिए वह उतनी उत्सुक नहीं। इतने दिनों तक मृणालकी ओटमें खड़ी होकर दुनियाको वह जिस ढँगसे पहचाने ले रही थी, अब उस आवरणके बाहर आकर दुनियाका वह चेहरा मानो उसके सामने रहा ही नहीं। इस घरमें आनेसे लेकर अब तक जब भी कभी उसे उसने अपने पतिके साथ हँसी-मजाक करते देखा है, तब ही उसकी छातीके अन्दर छोंक-सा लगा है; परन्तु अब तो बीच बीचमें मानो सुई-सी चुभने लगी है। यह सब कुछ नहीं है, इसमें वास्तवमें मजाकके सिवा और कुछ भी नहीं, जी खराब करनेकी कोई ऐसी बात नहीं,—मेरा मन ही अपवित्र है,—ऐसा कह-कहकर ज्यों ज्यों वह अपनेको संयत करनेकी कोशिश करने लगी, त्यों त्यों न जाने कहाँसे संशयके विपरीत तर्क आ-आकर उसके हृदयके भीतर बार बार सिर उठाकर, उसकी बिना इच्छाके, उसे बिराते रहे। महिमकी स्वाभाविक गम्भीरता यहाँ आकर मानो अत्यन्त ज्यादती मालूम होने लगी। वह यह कहकर तर्क करती रहती कि भीतर अगर कोई भी बात नहीं, तो मजाकका जवाब मजाकमें देनेमें दोष क्या है? जो मजाकका उत्तर नहीं दे सकता, वह हँसता हुआ कमसे कम उसका रस तो ले सकता है। मगर, यहाँ तो उसे स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि मृणालकी तरफसे रहस्यालापका सूत्रपात होते ही महिम लज्जित-सा मुँह लेकर जैसे बनता है वैसे झटपट अन्यत्र भागकर जान बचाता है। इसीसे आजकल किसी भी तरह उससे अपने मनसे यह चिन्ता दूर करते नहीं बनती कि कहीं न कहीं इसमें कोई छिपा हुआ अन्याय जरूर है। मृणालके साथ एक जगह काम करते करते भी उसके मनमें सौ सौ बार यह बात आती रहती है, कि जब वह खुद औरत होती हुई और छातीके भीतर एक गुप्त ईर्ष्याकी वेदना बहन करती हुई भी इसे किसी तरह छोड़ नहीं पाती, तो एक साथ इतने दिनों तक एक गृहस्थीमें रहकर कोई पुरुष इस स्त्रीको बगैर प्रेम किये कैसे छोड़ सकता है?

मृणालके आते ही उड़िया-बाम्हन अपने रसोई-घरके कामसे छुटकारा पा जाता

था, यह बात अचलाको नहीं मालूम थी। अबकी बार भी वह छुट्टी पाकर घूम-फिर रहा था। मगर अचला हमेशा यही देखने लगी कि मृणाल महिमको अपने हाथसे रसोई बनाकर खिलाते हुए फूली नहीं समाती और यह काम उसे प्राणोंसे भी प्यारा है। आज सबेरे वह सहसा कह बैठी—मृणाल जीजी, आज तुम्हारी छुट्टी है।

मृणाल समझ न पाई, बोली—किस बातकी छुट्टी बहन ?

अचलाने कहा—रसोईकी। आज मैं ही बनाऊँगी।

मृणाल दंग रह गई, बोली—फूट गई तकदीर ! तुम और रसोई बनाओगी ?

अचलाने सिर हिलाकर कहा—वाह, मैं क्या जानती नहीं ? घरपर मैंने तो कितनी बार बनाई है। सो सब नहीं होनेका मृणाल जीजी, आज मैं ही बनाऊँगी।

उसका आग्रह देखकर मृणाल सहसा म्लान हो गई; बोली—ऐसा भी कहीं होता है ! मेरे रहते तुम किस लिए रसोईके धुएँमें घुटने जाओगी, बहन ?

उसके चेहरेका भाव देखकर अचला जिद करती हुई बोली—तो महाराजके रहते हुए फिर तुम्हीं क्यों तकलीफ उठा रही हो ? इस छाक मैं जरूर बनाऊँगी।

क्यों उसे इतना आग्रह है, मृणालकी कुछ समझमें नहीं आया। उसने हँसीको रोकते हुए कृत्रिम अभिमानके स्वरमें गरदन हिलाके कहा—वाह री औरत ! एक एक करके तुम मेरा सभी कुछ छीन लेना चाहती हो ? सब कुछ तो ले लिया, दो-चार दिन रसोई बनाके खिला जाऊँगी, सो भी नहीं सहा जाता ? मालूम होता है, अब सौतसे डाह करना शुरू कर दिया है ?

अचलाके मनके भीतर फिर छौंक-सा लग गया। मृणालके अन्तिम शब्दोंने उसकी ईर्ष्याकी व्यथापर जोरसे चोट पहुँचाई। उसने उसी क्षण गंभीर होकर सिर्फ संक्षेपमें जवाब दिया—नहीं, आज मैं ही बनाऊँगी।

अब मृणालको दिखाई दिया कि अचला गुस्सा हो गई है। इसलिए, अब वह बहस न करके उदास मुँहसे जरा चुप रहकर बोली—अच्छी बात है, तो जाओ, तुम्हीं बनाओ। चलो, कहाँ क्या है सो मैं चलके दिखा-भला आऊँ।

महिम अब तक घरहीपर है, यह इन दोनोंमेंसे किसीको भी नहीं मालूम था। सहसा उसे सामने देखकर दोनों ही हक्का-बक्का-सी रह गईं।

महिमने अचलाको लक्ष्य करके धीरेसे कहा—जितने दिन मृणाल है, इसीको बनाने दो न।

मृणाल क्यों इतनी आपत्ति कर रही थी, महिम इस बातको जानता था। परन्तु

वह बात तो खोलकर कही नहीं जा सकती।

अचला और भी जल-भुन गई। परन्तु गुस्सेको दबाकर सिर्फ इतना ही बोली—नहीं, मैं ही बनाने जा रही हूँ! कहकर तर्क-वितर्कके लिए प्रतीक्षा किये बगैर ही झटपट रसोई-घरकी तरफ चल दी।

अचला जबरदस्ती रसोई बनाने गई। रसोईके काममें वह किसीसे भी कम नहीं थी; मगर इस तरफ वह मन ही न लगा सकी। पिछले दिनोंकी बातें हिलते-डुलतेमें हर वक्त बार-बार उसे चुभने लगीं। उसे मालूम होने लगा, शायद महिम कभी उससे उतना प्रेम नहीं कर सका है। उसके ब्याहके कुछ ही समय पहले सुरेशको लेकर जो संघर्ष उपस्थित हुआ था, उसके साथ इन बातोंका मेल मिलाकर सब बातें खोंट-खोंटकर सोचनेसे सहसा उसे स्पष्ट दिखाई दिया कि महिम उसकी तरफसे सदा ही उदासीन रहा है; यहाँ तक कि पिताकी रायके खिलाफ पहलेका सम्बन्ध जब बिलकुल टूटना चाहता था, तब भी, महिम जरा भी विचलित नहीं हुआ था—इसमें अब उसे रंचमात्र भी सन्देह नहीं रह गया।

जबसे यहाँ आई हैं, मृणाल और अचला एक ही साथ खाने बैठा करती थीं। दोपहरको हरियाकी माको बुलानेके लिए भेजकर अचला चौकेमें बैठी मृणालकी बाट देख रही थी; उसने लौटकर कहा—मृणाल दीदीको बुखार-सा हो आया है, वे नहीं खायँगीं।

अचला कोई बात न करके सीधी मृणालकी कोठरीमें पहुँची। मृणाल आँखें मींचे बिस्तरपर पड़ी थी। अचलाने कहा—चलो खा लो मृणाल जीजी।

मृणालने उसकी ओर देखा और ज़रा हँसकर कहा—तुम खा लो बहन, मेरी तबीयत ठीक नहीं।

अचलाने सूखे स्वरमें पूछा—क्या हुआ है? बुखार?

मृणालने कहा—ऐसा ही लगता है। आज उपास कर लेनेसे अच्छा हो जायगा।

अचलाने झुककर हाथसे मृणालके माथेकी गरमी देखी और कहा—मैं इतनी बेवकूफ नहीं मृणाल जीजी; चलो उठो, खा लो चलकर।

मृणालने गरदन हिलाकर कहा—तुम्हारी कसम भाभी, मैं खा नहीं सकती। क्यों तुम झूठ-मूठको हैरान होकर बुलाने आई बहन? न हो तो चलो, मैं तुम्हारे सामने बैठी रहूँगी।

अचलाने कठोर होकर कहा—अपनी भूखी बान्धवीको सामने बिठाकर खानेकी शिक्षा हम लोगोंको नहीं मिली मृणाल जीजी!

मृणालने फिर भी हँसनेका प्रयास करते हुए कहा—और बान्धवीके लिए खानेका कोई चारा ही न हो, तो?

अचलाने उसी तरह जवाब दिया—नहीं क्यों, जरा सुनूँ तो सही? तुम्हें बुखार नहीं हुआ है, हुआ है गुस्सा। खुद न खाकर मुझे भी भूखों मारोगी, यही अगर तुम्हारी इच्छा हो, तो साफ साफ कह दो, फिर मैं तुम्हें परेशान नहीं करूँगी।

मृणाल चटसे उठके बैठ गई और झोंकमें आकर कहने लगी—अपने मालिककी कसम खाकर कहती हूँ भाभी, मैं तनिक भी गुस्सा नहीं हूँ। लेकिन मैं खा नहीं सकती। चलो भाभी, मैं तुम्हें गोदमें बिठाकर खिलाऊँगी, चलो।

अचलाने कहा—तो बुखार-उखार कुछ नहीं? यह सिर्फ छल है!

मृणाल चुप रही। अचला खुद भी देर तक स्तब्ध रहकर, एक दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई धीरे-से बोली—अब समझी! लेकिन शुरूसे ही अगर मुँह खोलके कह देतीं मृणाल-जीजी, कि मेरे हाथका छुआ नहीं खाओगी, तो इस तरह अनुचित जिद करके न मैं ही तुम्हें कष्ट देती, न खुद मुझे इस तरह दास-दासियोंके सामने लज्जित होना पड़ता। खैर जाने दो इन बातोंको, मुझे माफ करना बहन,—लेकिन सुना है दूधमें शायद छूत नहीं लगती, वही एक कटोरा ला दूँ?—और जदू जाकर बाजारसे थोड़ेसे सन्देस ले आयेगा। क्या कहती हो?

पहले तो मृणाल हतबुद्धि-सी होकर स्तब्ध रह गई; फिर थोड़ी देर बाद, वह भाव दूर हो जाने पर भी, मुँहसे कुछ बोली नहीं, नीचेको निगाह किये चुपचाप बैठी रही।

अचलाने फिर कोंचते हुए कहा—क्या कहती हो?

मृणालने आँचलसे आँखें पोंछते हुए मृदु कंठसे कहा—अभी रहने दो।

अचला और भी कुछ देर चुपचाप खड़ी रही, फिर धीरे धीरे चल दी।

मृणालने न तो सिर उठाया और न कुछ कहा। बुढ़िया सासको वह राँधकर खिलाती है; वे अत्यन्त शुद्धाशुद्धि माननेवाली पुराने खयालोंकी वृद्धा हैं। उन्हें अगर यह बात मालूम हो गई, तो वे फिर उसका छुआ पानी भी न छूएँगी—मृणालने अत्यन्त अभिमानमें आकर अचलाके सामने इस बातका आभास तक प्रकट नहीं होने दिया था।

अचलाने रसोई-घरमें जाकर वहाँका काम-काज खतम किया और मुँह-हाथ

धोकर अपनी कोठरीमें जाकर पड़ रही। परन्तु, वह मन ही मन इस बातको समझती थी कि और चाहे जिस कारणसे भी हो, सिर्फ घृणाके कारण ही मृणालने उसकी बनाई रसोई नहीं छुई, यह बात झूठ है और इसीलिए आज उसने इस तरह उसे चोट पहुँचाई थी। अगर वह इसे सच समझती, तो मुँहसे इस बारेमें एक शब्द भी उच्चारण नहीं करती। और, दोनोंकी दोनों मन ही मन इस बातको समझ गईं कि जो प्रभात आज कलहसे ही आरम्भ हुआ था, उसके मध्याह्नमें भगवानने किसीके भी भाग्यमें तैयार हुई रसोई नहीं जुटने दी।

तीसरे पहर बहली आकर दरवाजेके सामने खड़ी हो गई। मृणालने अचलाकी कोठरीके भीतर जाकर कहा—नमस्कार करने आई हूँ भाभीजी,—घर जा रही हूँ। अगर कभी तबीयतमें आवे तो बुलाना, मैं फिर हाजिर हो जाऊँगी। जरा ठहरकर फिर कहा—जाते वक्त क्या एक बात भी न कहोगी बहन ? कहकर वह क्षण-भर उत्सुक दृष्टिसे देखती रही।

परन्तु अचलाने एक शब्द भी नहीं कहा; जैसे बैठी थी, वैसे ही सिर झुकाये बैठी रही। उसकी कोठरीमेंसे निकलते ही मृणालने देखा कि महिम घरमें आ रहा है। बोली—जरा ठहरना दादा, तुम्हें भी नमस्कार कर लूँ।

महिमने निगाह उठाकर पूछा—बिना कुछ खाये-पीये ही घर चल दी मृणाल? न हो तो, आज रातको रहकर कल सबेरे ही चली जाना।

मृणालने सिर्फ जरा-सा हँसकर सिर हिलाते हुए कहा—नहीं दादा, जदुआ गाड़ी ले आया है, आज जाने दो,—मगर फिर एक दिन ले आना होगा मुझे। कहते हुए उसने गलेमें आँचल डालकर प्रणाम किया और पाँवकी धूल सिरसे लगाई। बोली—मेरे सरकी कसम दादा, और एक दिन मुझे बुलाना न भूल जाना कहीं !

आज महिम हँस दिया। बोला—मुँहजली, तेरा यह स्वभाव क्या कभी किसी दिन छूटेगा ही नहीं ?

मृणालने कहा—मरनेपर छूट जायगा, उसके पहले नहीं। और फिर एक बार हँसकर गाड़ीपर जा बैठी।

आज ही इस तरह अचानक मृणाल चली जा सकती है,—अचलाने इस बातकी कल्पना तक नहीं की थी। अचला अकेली अपनी कोठरीमें बैठी यही चिन्ता कर रही थी कि मृणालने न तो खुद खाया और न उसे ही खाने दिया, इस

कसूरके लिए उसे बड़ेसे बड़ा दण्ड कैसे दिया जाय ? जो प्रेम करता है, उसके लिए घृणा करनेका आरोप लगानेके समान भारी दण्ड और कुछ नहीं है; यह बात प्रेम खुद ही बता देता है। अचला मन ही मन मृणालके लिए यही भारी दण्ड तजवीज किये बैठी थी। उसने तय कर रखा था कि ब्राह्मसमाजी होनेसे मृणाल जीजी जो उससे मन ही मन घृणा करती है, इसका बदला वह उठते बैठते-उलाहना दे-देकर चुकायेगी; मगर उसके चले जानेसे सब व्यर्थ हो गया।

फिर भी मृणाल जब बिना खाये ही बिदा लेकर कोठरीसे चली जाने लगी, तब उसकी भी आँखें आँसुओंसे भर आईं। किन्तु, बाहरसे जो उसे उसकी हँसीका शब्द सुनाई दिया, उसने उत्तप्त मरुभूमिकी तरह उसके उमड़ते हुए आँसू जहाँके तहाँ सुखा दिये; और दरवाजेकी ओटमेंसे जब उसने सम्पूर्ण चित्त लगाकर दोनोंकी बिदाईका दृश्य देखा, तो ठीक वज्राहत वृक्षकी तरह वह जहाँकी तहाँ खड़ी-हुई जलकर भस्म होने लगी।

थोड़ी देर बाद महिम जब कोठरीके भीतर पहुँचा, तब अचलाका स्वाभाविक धैर्य लगभग जड़-मूलसे नष्ट हो चुका था। फिर भी उसकी आजन्मकी शिक्षा और संस्कृतिने उसे नीचताके हाथसे बचा लिया। अचलाने जी-जानसे अपनेको सम्हालकर, कठोर हँसी हँसकर कहा—वास्तवमें, शहरके लोग गाँवमें आकर रहें, इससे बढ़कर विडंबना संसारमें बहुत कम ही होगी, है न ?

महिम स्त्रीके मुँहकी तरफ देखकर कुछ देर तक चुप रहा, फिर बोला—तुम अपनी ही बात कह रही हो न ? मैं समझता हूँ, शुरू शुरूमें तुम्हें तरह तरहकी तकलीफें होंगीं; मगर मृणालके साथ तुम्हारी बनेगी नहीं, यह मैंने कभी सोचा भी न था; क्योंकि उसके साथ कभी किसीसे झगड़ा नहीं हुआ।

अचलाने कहा—और मेरे ही साथ तमाम मुहल्ले-भरका झगड़ा हमेशा होता रहा है, यह खबर तुम्हें कहाँसे मिली ?

महिमने धीरेसे कहा—दिन-भर तुमने कुछ खाया-पीया नहीं,—जाने दो, इन सब बातोंको अभी रहने दो।

अचला और भी ज्यादा जल-भुन उठी, बोली—मृणाल जीजी भी तो दिन-भर बिना कुछ खाये-पीये सासुरे चली गईं; लेकिन उनके साथ तो हँस-हँसके बातें करनेमें तुम्हें आपत्ति नहीं हुई ?

महिम दंग रह गया, बोला—यह सब तुम क्या कह रही हो अचला ?

अचलाने कहा—मैं यह कह रही हूँ कि मैंने तुम्हारा ऐसा कौन-सा भारी

अपराध किया था, जिसके लिए इस तरह मेरा अपमान कराये बगैर तुम्हें चैन नहीं पड़ रहा था।

महिमने हतबुद्धि होकर फिर वही प्रश्न किया—क्या कह रही हो ? इन सब बातोंके मानी क्या हैं ?

अचला अकस्मात् ऊँचे कण्ठसे बोल उठी—मानी यह हैं कि किस अपराध-पर मेरा इस तरह अपमान किया तुमने ? तुम्हारा क्या बिगाड़ा है मैंने ?

महिम विह्वल हो उठा, बोला—मैंने तुम्हारा अपमान किया है ?

अचलाने कहा—हाँ, तुमने !

महिमने प्रतिवाद किया, बोला—झूठी बात है।

अचला क्षण-भरके लिए स्तम्भित रह गई। उसके बाद कंठको जरा धीमा करके बोली—मैं कभी झूठ नहीं बोलती। लेकिन खैर जाने दो,—अब तुम्हें अगर अपने विषयमें सत्यवादी होनेका अभिमान है, तो सच सच जवाब दोगे ?

महिम उत्सुक दृष्टिसे सिर्फ देखता रहा।

अचलाने पूछा—मृणाल जीजी आज जो कुछ करके चली गई, उसे क्या तुम्हारे गँवई-गाँवके समाजमें अपमान करना नहीं कहते ?

महिमने कहा—मगर इसमें मुझे क्यों सानना चाहती हो ?

अचलाने कहा—बताती हूँ। पहले बताओ, उसे क्या कहते हैं यहाँ ?

महिमने कहा—अच्छा, मान लो कि ऐसा ही—

अचला बीचहीमें बोल उठी—'मान लो' नहीं, ठीक ठीक जवाब दो।

महिमने कहा—हाँ, गाँवमें भी लोग इसे अपमान समझते हैं।

अचलाने कहा—समझते हैं ? तब फिर तुम्हींने सब कुछ जान-बूझकर यह अपमान कराया है। तुम जरूर जानते थे कि वे मेरे हाथका छुआ नहीं खायँगीं। ठीक है या नहीं ? कहकर निर्निमेष-दृष्टिसे महिमकी तरफ ऐसे देखने लगी, जैसे वह उसकी छातीके भीतर तक अपनी जलती हुई दृष्टि पहुँचाना चाहती हो। महिम पूर्ववत् अभिभूत विह्वलकी तरह देखता रह गया। उसके मुँहसे एक शब्द भी न निकला।

ठीक इसी समय बाहरसे सुरेशकी चिल्लाहट सुन पड़ी—महिम ! कहाँ हो जी ?

१६

" यह क्या, सुरेश ! आओ, भीतर आओ । मजेमें तो हो ? "

महिमका स्वागत-सम्भाषण समाप्त होनेके पहले ही सुरेश सामने आ खड़ा हुआ। हाथका ग्लाडस्टेन बैग नीचे रखकर बोला—हाँ हाँ । लेकिन यह क्या, अकेले खड़े हो जो ! अचला बहू-रानी एक ही क्षणमें सचला होकर अन्तर्धान कैसे हो गई ? उनके प्रबल विश्रम्भालापने तो मुझे चौराहेसे ही इस घरका पता दे दिया ! "

वास्तवमें अचलाकी अन्तिम बात गुस्सेमें निकली थी और सुरेशने वह दरवाजेके बाहरसे ही सुन ली थी ।

सुरेशने कहा—देखा महिम, विदुषी स्त्री प्राप्त होनेपर कितने लाभ हैं ? अभी हुए ही कितने दिन हैं, मगर इन्हीं कई दिनोंमें गँवई-गाँवके प्रेमालापकी पद्धति तकको ऐसा अपना लिया है कि क्या मजाल जो कोई देहातकी औरत भी उसमें नुक्स निकाल दे !

मारे शरमके महिमके कान तक सुर्ख हो उठे, और वह चुपचाप खड़ा रहा । सुरेश कोठरीके भीतरकी तरफ देखकर अचलाको लक्ष्य करके फिर कहने लगा—बहुत ही बेवक्त आकर रस-भंग कर दिया भाभीजी, क्षमा करना ।—महिम, खड़े कैसे रह गये ? बैठनेके लिए कुछ हो, तो चलो बैठें चलकर । चलते चलते तो पैरोंके जोड़ ढीले पड़ गये हैं,—बड़ी अच्छी जगह घर किया है यार,—चलो चलो, कलकत्ते चलो ।

" चलो " कहकर महिम उसे बाहरकी बैठकमें ले गया । बैठते हुए सुरेशने कहा—भाभीजी क्या मेरे सामने निकलेंगी नहीं ? क्या परदानशीन हो गई हैं ?"

महिमके जवाब देनेके पहले ही बगलका दरवाजा खोलकर अचलाने प्रवेश किया । उसके चेहरेपर कलहका चिह्न तक नहीं था । नमस्कार करके प्रसन्न मुखसे बोली—यह तो आशातीत सौभाग्य है ! ऐसे अकस्मात् कैसे चले आये ?

उसके प्रफुल्ल हास्यपूर्ण चेहरेपर सुख-सौभाग्यके प्रसन्न विकासकी कल्पना करके सुरेशका अन्तःकरण ईर्ष्यासे जल उठा; हाथ उठाकर प्रतिनमस्कार करके बोला—अब महसूस कर रहा हूँ कि अकस्मात् आ जाना उचित नहीं हुआ । लेकिन अभी हो क्या रहा था ? Their first difference या जबसे आई हो, तभीसे

यह मत-भेद चल रहा है ? कौन-सी बात है ?

अचलाने उसी तरह हँसते चेहरेसे जवाब दिया—कौन-सी सुननेसे आप ज्यादा खुश होंगे, बताइए ! अन्तकी सुननेसे तो ? तब वही कहना ठीक होगा,—अतिथिका मन नहीं दुखाना चाहिए।

सुरेशका चेहरा गंभीर हो गया; बोला—किसने कहा कि नहीं दुखाना चाहिए ? घरकी गृहिणीका यही तो असली काम है,—यही उसका पक्का परिचय है।

अचलाने हँसते हुए कहा—गृह ही नहीं तो गृहिणी कहाँसे आई ! हम गरीब-दुखियोंकी कुटियामें कैसे आज आपकी रात कटेगी, मुझे यही फिकर है। मगर धन्य है आपको, जान-बूझकर ऐसी तकलीफ उठाने आये !

पतिके मुँहको देखकर बोली—अच्छा, नयन बाबूसे कहकर क्या चन्द्र बाबूके मकानमें आज रात-भरके लिए इनके सोनेका इन्तजाम नहीं हो सकता ? उनका पक्का मकान है,—बैठने-उठनेका भी वहाँ आराम रहता, कोई तकलीफ नहीं होती इन्हें।

सौजन्यके आवरणमें छिपे हुए दोनोंके श्लेषके घात-प्रतिघातोंसे महिम मन ही मन अधीर हो उठा था; मगर रोके कैसे, उसकी कुछ समझमें न आ रहा था। इतनेमें सुरेशने खुद ही इसका प्रतीकार कर दिया; वह सहसा हाथ जोड़कर बोल उठा—मुझसे कसूर हो गया भाभीजी, इससे तो बल्कि पहले जरा चाय-वाय पिलाओ, खा-पीकर देहमें जोर आ जाय, फिर नयन बाबूसे कहो, श्रवण बाबूसे कहो और चन्द्र बाबूके मकानकी सोनेके लिए सिफारिश कराओ। लेकिन कुछ भी कहो महिम, इस मकानपर इतना खिंचाव सचमुच ही हो तो खुश होनेकी बात जरूर है।

महिमकी तरफसे अचलाने उत्तर दिया; वह हँसती हुई बोली—खुश होना न होना आदमीके अपने हाथकी बात है। मगर यह मेरे ससुरका घर है, इसपर खिंचाव न होकर लाट साहबके प्रासादपर खिंचाव होना ही अस्वाभाविक था। खैर, पहले देहमें जोर कर लिया जाय, पीछे दूसरी बातें होंगी। चायका पानी चढ़ाने कह आई हूँ, पाँच मिनटके अन्दर हाजिर किये देती हूँ। तब तक मुँह बन्द करके जरा आराम कीजिए। कहकर अचला हँसती हुई चली गई।

उसके चले जाते ही सुरेशके हृदयकी ज्वाला मानो बढ़ गई। अपनेको वह हमेशासे ही कमजोर और अस्थिरमति समझता आ रहा था, और इसके लिए उसे किसी तरहकी लज्जा या क्षोभ भी नहीं था। बचपनके मित्र जब महिमके

साथ उसकी तुलना करके खयाली, लहरी आदि कहकर उसकी आलोचना किया करते थे, तब वह मन ही मन खुश होकर कहता था—यह ठीक है कि मेरे संकल्पमें जोर नहीं है, मैं प्रवृत्तिके अधीन हूँ; मगर हृदय मेरा प्रशस्त है,—मैं कभी हीन या छोटा काम नहीं कर सकता। मैं अपनी आमदनीका हिसाब लगाकर खर्च करना नहीं जानता, पात्र-अपात्रका हिसाब लगाकर दान नहीं कर सकता;—मन रो उठता है तो देहके कपड़े तक उतार देनेमें दुविधा नहीं करता। फिर चाहे वह कोई भी क्यों न हो और किसी भी कारणसे हो; मगर यह बात कोई भी नहीं कह सकता कि सुरेश किसीसे द्वेष करता है, या स्वार्थके लिए उसने ऐसा किया है जो उसे करना नहीं चाहिए था। हृदयके व्यापारमें इस तरह जन्म-कालसे ही अत्यन्त कमजोर होनेकी जिसकी बदनामी थी, और खुद भी जिसे वह सच समझता था, उसी सुरेशको जब अकस्मात् अचलाके सम्बन्धमें अन्तिम क्षणोंमें अपने इतने बड़े कठोर संयमका परिचय मिला, तब अपने अन्दर उसने अज्ञात शक्तिका दर्शन पाकर सिर्फ आत्म-प्रसाद ही नहीं अनुभव किया, बल्कि उसका हृदय मारे गर्वके फूल उठा। अचलाके विवाहके बाद दो दिन तक वह बराबर यह बात कहता रहा—मैं शक्तिहीन अक्षम नहीं,—मैं प्रवृत्तिका दास नहीं; बल्कि आवश्यकता आ पड़नेपर सम्पूर्ण प्रवृत्तियोंको मैं भीतरसे समूल उखाड़ फेंक सकता हूँ। मित्रता क्या चीज है, मित्रके आनन्दके लिए मित्र कितना जबरदस्त त्याग कर सकता है, अब मित्र और मित्र-पत्नी इस बातको समझें।

परन्तु किसी भी असत्यसे दीर्घकाल तक कोई फाँक या खाली जगह भरके नहीं रखी जा सकती। आत्म-संयम उसकी सच्ची चीज नहीं थी, वास्तवमें वह आत्म-प्रतारणा थी। इसका नतीजा यह हुआ कि पूरा एक सप्ताह भी न बीत पाया कि वह मिथ्या-संयमका मोह उसके विस्फारित हृदयसे धीरे धीरे निकल गया और उसे वह संकुचित करने लगा। मन उसका बार बार यही कहने लगा कि इस स्वार्थ-त्यागसे मुझे मिला क्या? उसने मुझे दिया क्या? किस अवलम्बनके सहारे मैं अपनेको खड़ा रखूँ?

बुआजीने कहा—बेटा, अब तू भी एक ऐसी ही बहू ले आ, मैं उसे लेकर गृहस्थी चलाऊँ।

एक दिन ब्राह्मसमाजके दरवाजेके आगे केदार बाबूसे भेंट होनेपर उन्होंने स्पष्ट ही स्वीकार किया कि असलमें यह काम उन्होंने अच्छा नहीं किया। महिमके

साथ विवाह करनेकी उनकी शुरूमें ही इच्छा नहीं थी, सिर्फ सुरेशके निश्चेष्ट हो जानेसे ही अन्तमें उन्हें सम्मति देनी पड़ी। घर आकर सुरेशके मनमें अभिशाप-सा जाग उठा कि इस ब्याहसे कोई भी सुखी न हो। अपनी अवस्थाका उल्लंघन करनेका अपराध उसका मित्र भी अनुभव करे, और अचला भी अपनी गलती समझकर आत्म-ग्लानिसे जलती रहे। मगर इसका मतलब यह नहीं कि उसका मन ओछा है। इस अकल्याण-कामनाके लिए अपनेको वह अनेक प्रकारसे शासित करने लगा; परन्तु उसका पीड़ित और प्रतारित हृदय किसी तरह भी वशमें न आया और अत्यन्त जिद्दी लड़केकी तरह निरन्तर वही एक बात बार बार दुहराने लगा। इस तरहसे किसी कदर उसने एक महीना बिता दिया और अन्तमें एक दिन, कुतूहल न दबा सकनेके कारण, वह हाथमें बैग लिये महिमके घर पहुँच गया।

सुरेशने मित्रके मुँहकी तरफ देखकर कहा—अब देख रहे हो महिम, मेरी बात कितनी सच निकली?

महिमने पूछा—कौन-सी बात?

सुरेशने विज्ञ व्यक्तिकी भाँति कहा—मैं गाँवका रहनेवाला तो नहीं, पर, यहाँकी सब बातोंसे वाकिफ हूँ। फिर भी मैंने क्या तुम्हें सावधान नहीं कर दिया था कि गाँवके समाजके साथ एक घोर विरोध उठ खड़ा होगा?

महिमने सहज भावसे कहा—कहाँ, ऐसी तो कोई खास बात हुई नहीं!

सुरेश—और विरोध क्या होता है! तुम्हारे घर किसीने खाया-पिया? यही क्या काफी अशान्ति और अपमानका कारण नहीं है?

महिम—मैंने तो किसीको खाने बुलाया नहीं?

सुरेश—बुलाया नहीं? अच्छा, और, मुझे तो तुमने बहू-भातका न्योता ही नहीं दिया?

महिम—वह हुआ ही नहीं, इससे नहीं दिया।

सुरेशने आश्चर्यान्वित होकर कहा—बहू-भात नहीं हुआ? अच्छा, तुम लोगोंके यहाँ—लेकिन इस तरह कितने उपद्रवोंसे बचते रहोगे महिम? आफत-विपत है, बाल-बच्चोंका काम-काज है,—आखिर घर-गृहस्थीमें क्या नहीं करना पड़ता? मेरा तो यह कहना है—

इतनेमें यदुके हाथमें चायका सामान और खुद थालीमें जल-पान लिये हुए

अचला आ पहुँची। सुरेशके अन्तिम शब्द उसके कानमें पड़ चुके थे; पर उसके भावसे सुरेश उसे ताड़ न सका। दोनों मित्रोंका जल-पान और चाय पीना खतम होनेपर महिम कंधेपर दुपट्टा डालकर खड़ा हो गया। गाँवके जमींदार मुसलमान हैं; उनके लड़केको महिम अँगरेज़ी पढ़ाता है। जमींदार साहब शिक्षित न होनेपर भी स्वभावके उदार थे, और महिमके साथ उनका सद्भाव भी काफी था। इसीलिए गाँववालोंको समाजकी दुहाई देकर अब तक उसपर अत्याचार करनेकी हिम्मत नहीं पड़ी थी।

अचलाने कहा—आज पढ़ाने न जाते तो कोई हर्ज था?

महिमने कहा—क्यों?

अचलाके मनका जोर और हृदयकी निर्मलता कितनी ही बढ़ी चढ़ी क्यों न हो, सुरेशके साथ उसका जैसा सम्बन्ध हो गया था, उससे उसके आकस्मिक आगमनसे कोई भी स्त्री संकोच महसूस किये बिना नहीं रह सकती। सुरेशको वह अच्छी तरह जानती थी; उसका हृदय चाहे जितना भी महान् क्यों न हो, उस हृदयके आवेशपर उसे विश्वास न था,—यहाँ तक कि उससे वह डरती थी। शामके वक्त उसीके साथ उसे अकेली छोड़ जानेके प्रस्तावसे वह मन ही मन व्याकुल हो उठी; मगर बाहर उसे लेशमात्र भी प्रकट न करके हँसकर बोली—वाह, ऐसा भी कहीं होता है? अतिथिको अकेला छोड़कर—

महिमने कहा—इससे अतिथि-सत्कारमें कोई त्रुटि नहीं होगी। इसके अलावा, तुम तो हो ही—

अचलाने बगलें झाँकते हुए कहा—लेकिन, मैं तो रह नहीं सकूँगी।—फिर सुरेशकी तरफ देखकर बोली—हमारे उड़िया महाराज ऐसे निपुण रसोईया हैं कि उनके साथ बगैर रहे कोई भी चीज मुँहमें न दी जायगी। मैं तो कहती हूँ, बल्कि तुम—

महिमने गरदन हिलाते हुए कहा—नहीं, सो नहीं हो सकता। दो ही घंटेकी तो बात है।—कहकर कोनेसे छड़ी उठा ली। एक तो महिमका कामका सिलसिला आसानीसे बदलता नहीं, उसपर इस मामूली-सी बातके लिए बार बार अनुरोध करनेमें भी अचलाको शरम मालूम होने लगी,—कहीं ऐसा न हो कि उसके इस डरको सुरेश ताड़ जाय और उसकी लज्जा सौ-गुनी बढ़ जाय।

महिम धीरे-से बाहर चला गया। उसको सुनाते हुए सुरेशने अचलासे हँसते

हुए कहा—क्यों फिजूल कहके अपना मुँह दुखा रही हो ? हमेशासे मैं जानता हूँ, वह ऐसा शख्स ही नहीं जो किसीकी बात रखे। बल्कि तुम, कोई एक किताब मुझे दे जाओ और अपने कामसे चली जाओ,—मेरा वक्त मजेसे कट जायगा।

बात चटसे अचलाको खटक गई, वास्तवमें महिमने कभी किसी दिन उसका अनुरोध नहीं माना। भले ही यह उसका महान् गुण हो; परन्तु फिर भी सुरेशके मुँहसे पतिकी इस आजन्म कर्तव्यनिष्ठताका परिचय अपने ही मुँहके सामने आज उसे अपमानजनक उपेक्षाके रूपमें चुभ गया। वह कोई बात न करके कमरेमें गई और यदुके हाथ एक पुस्तक भिजवाकर रसोई-घरमें चली गई।

बहुत रात बीते जब महिम सोने गया तो उसने पूछा—सुरेश कितने दिन यहाँ रहेगा, तुमसे कुछ बोला ?

एक तो यों ही नाना कारणोंसे आज दिन-भर पतिके प्रति उसका मन अप्रसन्न था; उसपर इस प्रश्नमें कुत्सित व्यंगकी कल्पना करके वह उसी क्षण जल उठी; कठोर कंठसे बोली—इसके मानी ?

महिम दंग रह गया। उसने सहजभावसे ही बात जाननी चाही थी, व्यंग-कटाक्ष कुछ नहीं किया था। वह उतनी देरकी बातचीतमें मित्रसे यह बात पूछ नहीं सका था, और सुरेशने भी खुद कुछ बताया नहीं था। मगर उसे आशा थी कि सुरेशने जरूर ही अचलासे यह बात कही होगी।

महिमको चुप देखकर अचला खुद ही बोली—इस बातके मानी इतने सीधे हैं कि तुम्हें पूछनेकी भी जरूरत नहीं है। तुम्हारी धारणा है कि सुरेश बाबू कोई संकल्प लेकर ही यहाँ आये हैं; और उसके सफल होनेमें कितनी देर होगी, सो मैं जानती हूँ। यही तो ?

महिम और भी कुछ देर तक चुप रहकर स्निग्ध स्वरमें बोला—मेरी ऐसी कोई धारणा नहीं। लेकिन, मृणालके व्यवहारसे आज तुम्हारा चित्त अच्छा नहीं है, तुम किसी भी बातको धीर भावसे न समझ सकोगी। आज सो जाओ, कल होंगीं ये सब बातें।—कहकर वह खुद ही बिस्तरपर पड़ रहा और करवट लेकर सोनेकी कोशिश करने लगा।

अचला भी पड़ रही, पर किसी भी तरह सो नहीं सकी। उसके मनमें दिन-भरसे जो विरक्ति उत्तरोत्तर इकट्ठी हो रही थी, यदि वह कोई मामूली-सा कारण पाकर कलहके

रूपमें निकल जाती तो उसे शान्ति मिल सकती थी; किन्तु, इस तरह उसका मुँह बन्द कर देनेसे वह अपने ही अन्दर आप जलने लगी। और मुश्किल यह कि जो प्रसंग बन्द हो गया, उसको अशिक्षित साधारण स्त्रियोंकी तरह जबरदस्ती जारी रखनेमें जो लज्जा और नीचता है, वह भी उसके द्वारा बिलकुल असम्भव थी। सिर्फ वह अपनी कल्पनामें पतिको प्रतिपक्षमें खड़ा करके और ज्वालामयी प्रश्नोत्तर-मालासे अपनेको क्षत-विक्षत करके, बहुत रात तक जागकर बिस्तरपर पड़ी पड़ी फड़फड़ाती रही।

कुछ अबेरमें जब आँख खुली तो वह भड़भड़ाकर उठ बैठी। बाहर आकर देखा कि यदु चायकी केटली हाथमें लिये रसोई-घरकी तरफ जा रहा है। उसे बुलाकर पूछा—बाबू कुछ कह गये हैं?

यदुने कहा—कह गये हैं कि एक पहर दिन चढ़ते ही लौट आयेंगे।

महिम रोज तड़के ही उठकर अपना खेत-खलिहान देखने जाया करता है; लौटनेमें कभी कभी दोपहर भी हो जाता है।

अचलाने पूछा—नये बाबू उठे हैं?

यदुने कहा—हाँ, उठे क्यों नहीं? उन्होंने तो चाय बनानेको कहा है।

अचलाने झटपट हाथ-मुँह धोकर, कपड़े बदलकर बाहर जाकर देखा कि सुरेश बहुत पहलेसे ही तैयार होकर, दरवाजे-जंगले खोलकर, खुले हुए दरवाजेके सामने एक कुरसीपर बैठा कलकी दी हुई पुस्तक पढ़ रहा है। अचलाके पैरोंकी आहट सुनकर उसने पुस्तकपरसे निगाह उठाकर देखा। अचलाके चेहरेपर रात्रि-जागरणके सारे चिह्न देदीप्यमान हैं। आँखोंके नीचे कलछाँई पड़ गई है, कपोल फीके और ओठ मलिन हो गये हैं—वह जितना ही देखने लगा उतनी ही उसकी आँखें ईर्ष्याकी आगसे जलने लगी; और किसी भी तरह अपनी दृष्टि उस-परसे हटा न सका।

उसकी चितवनके ढँगसे अचला विस्मित हो गई, पर अर्थ न समझ सकी; बोली—कब उठे? मुझे उठनेमें आज जरा देर हो गई।

“ हूँ, सो ही तो देख रहा हूँ। ” कहते हुए सुरेशने धीरे-से सिर हिलाया। सामनेकी दीवारपर बहुत दिनका पुराना एक बड़ा सीसा टँगा हुआ था; ठीक उसी समय अचलाकी दृष्टि उसपर जा पड़ी और सुरेशकी चितवनका अर्थ उसे क्षण-भरमें मालूम हो गया। अपनी श्रीहीनताकी लज्जासे वह एकबारगी गड़गड़ गई।

इस चेहरेको वह कैसे छुपाये, कहाँ छुपाये, सुरेशकी झूठी धारणाका कैसे प्रतिवाद करे,—कुछ समझमें न आनेसे वह बाहर चली गई और कहती गई—जाऊँ, आपकी चाय ले आऊँ।

सुरेश कुछ बोला नहीं; सिर्फ एक गहरी साँस लेकर शून्य-दृष्टिसे आकाशकी तरफ देखता हुआ स्तब्ध बैठा रहा।

दसेक मिनिट बाद चायका सामान लिये हुए अचला जब लौटके आई, तब सुरेशने अपनेको सम्हाल लिया था। चाय पीते पीते सुरेशने कहा—तुमने नहीं पी?

अचलाने हँसते हुए कहा—मैं अब पीती नहीं।

"क्यों नहीं पीतीं?"

"अब अच्छी नहीं लगती। इसके सिवा यह जगह गरम है न, पीनेसे नींद नहीं आती। कल तो लगभग रात-भर नहीं सो सकी।" फिर हँसकर बोली—एक रात नींद न आये तो चेहरा ऐसा भद्दा हो जाता है कि जला मुँह किसीके सामने निकाला नहीं जाता। कहकर लज्जित चेहरेसे मन्द मन्द हँसने लगी।

सुरेश कुछ देर चुप रहकर बोला—मगर यह तो तुम्हारी बचपनकी आदत है,—चाय पीनेके लिए महिम अनुरोध नहीं करता?

अचलाने हँसकर कहा—अनुरोध करें भी तो यहाँ सुनता कौन है? इसके सिवा, यह क्या ऐसी चीज है कि जिसके पीये बगैर काम ही नहीं चले?

सुरेश स्पष्ट समझ गया कि उसकी यह हँसी सूखी है। फिर कुछ देरतक चुप रहकर बोला—तुम तो जानती ही हो, भूमिका बनाकर बात करनेकी मेरी आदत नहीं, कर भी नहीं सकता। इसीसे पूछता हूँ, साफ साफ एक-दो बातें पूछूँ तो क्या तुम गुस्सा होगी?

अचलाने हँसते चेहरेसे कहा—यह खूब कहा! गुस्सा मैं क्यों होने लगी?

सुरेशने कहा—अच्छा। तो मैं पूछता हूँ, तुम यहाँ सुखसे हो क्या?

अचलाका हँसता हुआ चेहरा सुर्ख हो उठा, बोली—ऐसी बात पूछना आपको उचित नहीं।

"क्यों नहीं?"

अचलाने सिर हिलाकर कहा—नहीं। आपके मनमें ऐसा विचार आना ही अन्याय है कि मैं सुखसे नहीं—

सुरेशने जरा म्लान हँसी हँसकर कहा—मन क्या न्याय-अन्याय सोचकर ही

कुछ विचार करता है अचला ? सिर्फ दो ही महीने पहले मुझहीको यह सोचना उचित था, यही नहीं, मुझहीको सोचनेका अधिकार था। आज दो महीने बाद सब अधिकार अगर नष्ट हो गया हो तो हो जाने दो, मुझे कोई शिकायत नहीं,—अब सिर्फ सच्ची बात जानकर जाना चाहता हूँ। जबसे आया हूँ, कभी तो मालूम होता है जीत हुई, कभी ऐसा मालूम होता है कि हार हुई है। मेरा मन तो तुमसे छिपा नही है,—एक बार सच सच बताओ न अचला, क्या है ?

अचलाके दुर्निवार आँसुओंकी लहरें कंठतक उफन आईं; मगर जी-जानसे उनकी शक्तिको रोककर अचलाने जोरसे सिर हिलाकर कहा—मैं अच्छी तरह हूँ।

सुरेशने धीरेसे कहा—अच्छा ही है।

इसके बाद कुछ देर तक किसीको भी कोई बात ढूँढ़े नहीं मिली। सुरेश अकस्मात् मानो चौंक-सा पड़ा—और एक बात है। तुम्हारे लिए मैंने कितना सहा है, सो क्या तुम्हें कभी—

अचला दोनों कानोंमें उँगली देकर बोल उठी—इन सब बातोंके लिए मुझे माफ कीजिएगा।

सुरेशने खुले हुए किवाड़ोंपर दोनों हाथ रखकर अचलाके निकल भागनेका रास्ता रोकते हुए कहा—नहीं, मैं माफ नहीं कर सकता, तुम्हें सुनाना ही होगा।

उसकी आँखोंमें वही दृष्टि थी जिसकी याद करके अचला आज भी सिहर उठती है। जरा पीछे हटकर अचलाने डरते हुए कहा—अच्छा कहिए—

सुरेशने कहा—डरो मत, तुम्हारे शरीरको मैं हाथ नहीं लगाऊँगा, मुझे अभी तक इतना होश है।—कहकर वह फिर चौकीपर बैठ गया और बोला—यह बात तुम्हें याद रखनी ही होगी कि तुमपरसे मेरा सारा अधिकार चला जानेपर भी, मेरे ऊपर तुम्हारा सारा अधिकार मौजूद है।

अचलाने रोकते हुए कहा—इसके याद रखनेसे मेरा कोई लाभ नहीं,—परन्तु—कहते कहते उसने देखा कि उसकी इस बातने मानो जोरसे आघात पहुँचा कर सुरेशको पल-भरमें विवर्ण कर दिया है, और उसी क्षण उसने खुद भी स्पष्ट अनुभव किया कि अनुतापकी बात उसकी अपनी पीठपर भी जोरसे आ पड़ी है !

क्षण-भर चुप रहकर अबकी उसने कोमल स्वरमें कहा—सुरेश बाबू, ये सब बातें सुनना मेरे लिए भी पाप है और आपको भी नहीं करना चाहिए। क्यों

आप इन सब बातोंको छेड़कर मुझे दुःख दे रहे हैं !

सुरेशने उसके चेहरेपर दृष्टि रखकर कहा—दुःख होता है क्या अचला ?

अचलाके मुँहसे अकस्मात् निकल गया—मैं क्या पत्थर हूँ सुरेश बाबू !

सुरेशने तो अपनी दृष्टि अचलाके मुँहपरसे नहीं हटाई, पर अचलाने अपनी निगाह नीचे कर ली। सुरेशने धीरेसे कहा—बस, यही मेरे चिर-जीवनकी पूँजी रही अचला, इससे ज्यादा मैं और कुछ नहीं चाहता।—इतना कहकर वह क्षण-भर स्थिर रहा, और फिर बोला—तुम जब कि पत्थर नहीं हो तब इस अन्तिम भिक्षासे मुझे हर्गिज वंचित नहीं कर सकतीं। तुम्हारे सुखका भार चाहे जिसपर रहा करे; परन्तु तुम्हारे हाथसे जब कि मैंने दुःख ही दुःख पाया है, तो तुम्हारे समस्त दुःखोंका बोझ भी आजसे मेरे ही ऊपर रहे, इस वरकी भीख आज तुम मुझे दे दो अचला ! कहते कहते आँसुओंसे उसका गला रुक आया। अचलाकी आँखोंसे भी उसके विगत रात-दिनकी समस्त पुंजीभूत वेदना गल-गलकर आँसुओंके रूपमें झरने लगी।

ठीक इसी समय दरवाजेके बाहर जूतोंकी आहट सुनाई दी, और उसके दूसरे ही क्षण महिमने घरमें घुसते हुए कहा—क्यों भई सुरेश, चाय-वाय पी ली ?

सुरेशसे सहसा जवाब देते न बना। उसने किसी कदर मुँह नीचा करके धोतीके छोरसे आँखें पोंछ लीं, और अचला आँचलसे मुँह ढककर जल्दीसे महिमके बगलसे निकलकर बाहर चली गई। महिम एक कदम चौखटके भीतर और एक बाहर रखे हत-बुद्धिकी भाँति खड़ा रह गया।

१७

महिमने अपनेको सम्हाल लिया और भीतर आकर वह एक चौकी खींचके बैठ गया।

मानव-चित्त जिस अवस्थामें सबसे ज्यादा असंकोच और आसानीसे झूठी बात सोचकर निकाल सकता है, सुरेशकी इस समय वही अवस्था थी। उसने चटसे हाथसे आँखें पोंछ डालीं, और सलज्ज हँसी हँसते हुए अत्यन्त उदारताके साथ स्वीकार किया कि मुझमें वास्तवमें बहुत ज्यादा कमजोरी आती जा रही है। किन्तु महिमने जरा भी उद्वेग प्रकट नहीं किया, यहाँ तक कि उसने इसका कारण तक न पूछा।

सुरेश तब अपने आप ही अपनी कैफियत देने लगा। बोला—कोई कुछ भी क्यों न कहे महिम, इतना मैं दावेके साथ कह सकता हूँ कि इनकी आँखोंमें आँसू देखनेसे न जाने कहाँसे मेरी आखोंमें भी आँसू आ जाते हैं,—किसी भी तरह सम्हाले नहीं सम्हलते। मैं नहीं पहुँचता तो केदार बाबू तो इस मरतबा किसी भी तरह नहीं बचते। लेकिन, बुड्ढा ऐसा बदमिजाज आदमी है महिम, कि अपनी एकमात्र लड़कीको भी उसने खबर तक नहीं देने दी! ब्याहके दिनसे ही जो हजरत नाराज़ हुए सो फिर शान्त होनेका नाम तक नहीं। मैंने कहा, जो होना था सो तो हो ही चुका—

महिमने पूछा—चाय तो मिल गई है?

सुरेशने गरदन हिलाकर कहा—हाँ, मिल गई। लेकिन, पिताकी तरफसे ऐसा व्यवहार पानेसे किसकी आँखोंमें आँसू नहीं आते? पुरुषोंसे ही हमेशा नहीं सहा जाता, फिर ये तो स्त्री ठहरीं!

महिमने कहा—सो तो है ही। रातको तुम्हें सोनेकी कोई तकलीफ तो नहीं हुई,—खूब आरामसे नींद आई थी? नई जगहमें—

सुरेशने चटसे कहा—नहीं, नई जगहमें मुझे सोनेमें कोई तकलीफ नहीं हुई। अच्छा महिम, केदार बाबूने अपनी बीमारीकी खबर तुम लोगोंको बिलकुल ही नहीं दी, यह क्या आश्चर्य नहीं है?

महिमने बिलकुल सहजभावसे कहा—आश्चर्य तो है ही!—कहकर वह जरा हँस दिया, फिर बोला—हाथ-मुँह धोकर जरा कहीं घूमने निकलोगे क्या? चलो तो, जरा जल्दीसे तैयार हो लो भाई, मुझे फिर घंटे-भर बाद बाहर जाना है। अभी तक मेरा सबेरेका ही काम-काज पूरा नहीं हुआ।

सुरेशने अपनी पुस्तकमें मन लगाते हुए कहा—कहानी बहुत अच्छी लग रही है,—इसे खतम कर डालूँ।

"सो ही करो। मैं दो घंटेके भीतर ही लौट आऊँगा।" कहकर महिम उठके चला गया।

उसके पीठ फेरते ही सुरेशने आँख उठाके देखा। मालूम हुआ, मानो किसी अदृश्य हाथने क्षण-भरमें उसके सारे मुँहपर लज्जाकी स्याही-सी पोत दी है।

जिस दरवाजेसे महिम चला गया, उस खुले हुए दरवाजेकी तरफ एकटक देखता हुआ सुरेश काठकी तरह कठिन होकर बैठा रहा। परन्तु भीतर ही भीतर

पूर्वोक्त बिना-माँगे दी हुई कैफियतकी सारी निष्फलता क्रुद्ध-अभिमानके साथ उसके सारे शरीरमें डंक मार-मारकर काटने लगी।

दोनों मित्रोंकी बातचीत किवाड़की ओटमें खड़ी खड़ी अचला सुन रही थी। महिमके कपड़े बदलनेके लिए कमरेमें घुसते ही वह भी पीछे पीछे पहुँच गई।

महिमके मुँह उठाकर देखते ही अचलाने स्वाभाविक मृदु कंठसे पूछा—मेरे पिताने क्या तुम्हारा ऐसा कोई बड़ा-भारी अपराध किया है?

अकस्मात् इस तरहके प्रश्नका तात्पर्य न समझ सकनेके कारण महिम जिज्ञासु-दृष्टिसे चुपचाप अचलाकी तरफ देखता रह गया।

अचलाने फिरसे पूछा—मेरी बात शायद समझ नहीं सके, क्यों?

महिमने कहा—नहीं, बातें प्रिय न होनेपर भी स्पष्ट जरूर हैं; मगर उनका अर्थ समझना काफी कठिन है। कमसे कम मेरे लिए तो है ही।

अचलाने भीतरके क्रोधको यथाशक्ति दमन करके जवाब दिया—दोनोंमेंसे कोई भी बात आपके लिए कठिन नहीं, मगर कठिन है स्वीकार करना। सुरेश बाबूको जो बात तुम आसानीसे जता आये, वही बात मुझे जतानेकी शायद तुम्हारी हिम्मत नहीं पड़ती। लेकिन, आज मैं तुमसे साफ साफ पूछना चाहती हूँ कि मेरे पिता क्या तुम्हारी दृष्टिमें इतने ज्यादा तुच्छ हो गये हैं कि उनकी ऐसी खतरनाक बीमारीकी खबर पर भी तुम ध्यान देना जरूरी नहीं समझते?

महिमने गरदन हिलाते हुए कहा—समझता तो खूब हूँ। पर जहाँ उसकी जरूरत नहीं, वहाँ मुझे तुम क्या करनेको कहती हो?

अचलाने कहा—कहाँ जरूरी नहीं, सुनूँ भी तो?

महिमने क्षण-भर स्त्रीके मुँहकी तरफ चुपचाप देखकर कठोर कंठसे कह डाला—जैसे अभी अभी सुरेशको नहीं थी। और जैसे इसे लेकर तुम्हें भी इतना क्रोध करके मेरे मुँहसे कड़ी बात खींचके निकालनेकी जरूरत नहीं थी। खैर, जाने दो। जिसके नीचे कीच जमी है, उसके पानीको घँघोलना मैं बुद्धिमानी नहीं समझता।—इतना कहकर महिम बाहर चला जाना चाहता था कि इतनेमें अचला तेजीसे सामने आकर रास्ता रोकके खड़ी हो गई। क्षण-भर वह दाँतोंसे जोरसे ओठ दबाये रही; ठीक ऐसा मालूम हुआ, जैसे आकस्मिक दुःसह आघातके मर्मान्तिक चीत्कारको उसने जी-जानसे कोशिश करके दबा रखा हो। उसके बाद बोली—तुम्हें बाहर क्या कोई खास जरूरी काम है? दो मिनट ठहर

नहीं सकते ?

महिमने कहा—हाँ, सो ठहर जाऊँगा।

अचलाने कहा—तो, यह बात स्पष्ट ही हो जानी चाहिए। पानी जब हट जाता है, तभी कीचका पता लगता है, यही तो ?

महिमने गरदन हिलाकर कहा—हाँ।

अचलाने कहा—निरर्थक पानी घँघोलनेके पक्षमें मैं भी नहीं हूँ; मगर, इसी डरसे क्या कीचड़ निकाल कर सफाईका काम बन्द रखना अच्छा है ? एक न एक दिन अगर घँघुलना है, तो घँघुलने दो न, अगर हमेशाके लिए कीचड़के हाथसे छुटकारा मिल जाय ! क्या कहते हो ?

महिमने कठोर भावसे कहा—मुझे कोई आपत्ति नहीं। मगर उससे भी बढ़कर जरूरी काम मेरा पड़ा हुआ है,—अभी वक्त नहीं है।

अचलाने भी ठीक उसी तरह कठोर कंठसे जवाब दिया—तुम्हारा यह बहुत जरूरी काम खतम हो जायगा, तब तो फुरसत मिलेगी ? अच्छी बात है, तब तक न हो तो मैं प्रतीक्षा किये बैठी रहूँगी। इतना कहकर वह हटके एक तरफ खड़ी हो गई।

महिम कमरेसे बाहर चला गया। जब तक वह दिखाई दिया, अचला खड़ी खड़ी देखती रही, फिर उसने किवाड़ बन्द कर लिये।

घंटे-भर बाद जब वह स्नान करनेका प्रसंग लेकर बाहर सुरेशके कमरेमें आकर खड़ी हुई तब उसके शान्त शोकाच्छन्न चेहरेको सुरेश आँख उठाके देखते ही ताड़ गया। महिमके साथ इस बीचमें जरूर कोई न कोई घटना घट चुकी है, इस बातका अनुमान करके सुरेश मन ही मन अत्यन्त संकुचित हो उठा; परन्तु हिम्मत करके कुछ पूछ न सका।

अचलाने चुपचाप खड़े होकर पूछा—यह क्या हो रहा है ?

सुरेश सूटकेसमें अपने कलके उतारे हुए कपड़े रख रहा था, बोला—एक बजे गाड़ी जाती है, जरा पहलेसे ही तैयारी किये लेता हूँ।

अचलाने कुछ अचम्भेमें आकर पूछा—आप क्या आज ही जा रहे हैं ?

सुरेशने मुँह बगैर उठाये ही कहा—हाँ।

अचलाने कहा—क्यों, क्या बात है ?

सुरेशने उसी तरह सूटकेसकी तरफ नीची निगाह रखे रखे ही कहा—अब

और रहकर क्या करूँ ? तुम लोगोंसे एक बार मिलने आया था, सो मिल चला।

अचला कुछ देर तक स्थिर रहकर बोली—तो उठ आइए वहाँसे। यह सब काम आप लोगोंका नहीं, औरतोंका है। मैं सजाकर ठीकसे रखे देती हूँ। कहते हुए उसके आगे बढ़ते ही सुरेश व्यस्तताके साथ बोल उठा—नहीं नहीं, आपको कुछ न करना होगा। इसमें है क्या,—मामूली-सा—

परन्तु उसकी बात खतम होनेसे पहले ही अचलाने उसके सामनेसे सूटकेस खींच लिया, और उसकी सारी चीजें नीचे उलट दीं, फिर तहियाये हुए कपड़े फिरसे तहियाकर वह धीरे धीरे बाक्समें रखने लगी। सुरेश पास ही खड़ा हुआ अत्यन्त संकुचित होकर बार बार कहने लगा—इसकी कोई जरूरत नहीं थी,—अगर मैं खुद ही,—इत्यादि इत्यादि।

अचलाने बहुत देर तक उसकी किसी भी बातका उत्तर नहीं दिया; धीरे धीरे काम करते हुए कहा—आपकी बहन या स्त्री होतीं तो यह काम उन्हींके करनेका था, आपको थोड़े ही करने देतीं। लेकिन आपको डर है कि अगर मित्रने आकर कहीं देख लिया,—यही बात है न ? मगर इससे क्या हो गया, यह है तो औरतोंका ही काम।

सुरेश चुपचाप खड़ा रहा। अभी अभी महिमके साथ उसकी जो बातचीत हो चुकी है, अचलाको अवश्य ही उसका कुछ पता नहीं; इसलिए उस प्रसंगको छेड़कर उसका मन दुखानेकी उसे हिम्मत नहीं पड़ी, और डर भी लगने लगा कि कहीं वह आ न जाय और अपनी आँखसे यह देख न ले।

बाक्सको खूब अच्छी तरह सजाकर अचलाने आहिस्तेसे कहा—पिताजीकी बीमारीकी बात न कहते तो अच्छा था,—इससे उनका सिर्फ अपमान ही हुआ, इन्होंने तो ध्यान तक नहीं दिया।

सुरेशने चौंककर कहा—किसने कहा तुमसे, महिमने !

अचलाने उसके प्रश्नका ठीक जवाब न देकर बगलके दरवाजेकी ओर इशारा करके कहा—वहाँ खड़ी खड़ी मैं खुद ही सब सुन रही थी।

सुरेश लज्जित होकर बोला—इसके लिए मैं तुमसे माफी चाहता हूँ अचला।

अचलाने मुँह उठाकर हँसते हुए कहा—क्यों ?

सुरेशने अनुतप्त कंठसे कहा—कारण तो तुमने खुद ही बता दिया है। आज मैंने अपने दोषसे उन्हें और तुम्हें दोनोंको ही अपमानित किया है; इसीलिए

तुमसे मैं खास तरहसे क्षमा चाहता हूँ अचला!

अचलाने मुँह उठाकर देखा। सहसा उसका साराका सारा चेहरा मानो भीतरके आवेगसे उद्भासित हो उठा; बोली—आपने कुछ भी क्यों नहीं किया हो सुरेश बाबू, किया तो मेरे ही लिए है! मुझे लज्जाके हाथसे बचानेके लिए ही तो आज आपको ऐसे लज्जित होना पड़ रहा है। फिर भी मुझसे ही आपको माफी माँगनी होगी, इतनी बड़ी अमानुषी मैं नहीं हूँ। आप किस लिए लज्जित हो रहे हैं? आपने जो किया है, ठीक किया है।

सुरेशके विस्मित हतबुद्धि-से चेहरेकी तरफ देखकर अचला समझ गई कि वह उसकी बातको हृदयंगम नहीं कर सका है। इसलिए क्षण-भर मौन रहकर बोली—आप आज न जाइए सुरेश बाबू! यहाँ अगर आपको लज्जित होना पड़ा हो तो वह मेरी लज्जा ढँकनेके लिए। नहीं तो, अपने लिए तो आपको कोई जरूरत ही नहीं थी। और यह घर सिर्फ आपके मित्रका ही नहीं, मेरा भी तो इसपर कुछ अधिकार है। उसी जोरपर मैं आज आपको निमन्त्रण देती हूँ, मेरे अतिथि होकर और कुछ दिन रहिए।

उसका साहस देखकर सुरेश अभिभूत हो गया। परन्तु द्विविधाग्रस्त हृदयसे कुछ कहनेकी तैयारी करते ही उसने देखा, महिम अपना बाहरका काम पूरा करके घर आ रहा है।

अचला अब तक सूटकेस सामने रखे जमीनपर उधरको पीठ किये बैठी थी। सुरेश इस डरसे कि कहीं महिमका आगमन जाने बगैर अचला और भी कुछ न कह बैठे, एक बारगी संकुचित होकर कह उठा—आ गये महिम, काम पूरा हुआ तुम्हारा?

"हाँ, हो गया।" कहते हुए उसने जो कमरेमें पैर रखा तो अचलाको उस अवस्थामें देखकर पूछा—यह क्या हो रहा है?

अचलाने गरदन फेरकर पीछेको देखा, परन्तु इस प्रश्नका कुछ भी उत्तर न देकर सुरेशको ही लक्ष्य करके पहलेके प्रसंगके सिलसिलेमें कहा—आप मेरे भी तो मित्र हैं,—सिर्फ मित्र ही क्यों;—आपने हमारे लिए जो कुछ किया है, उससे आप हमारे परम आत्मीय भी हैं। आपके इस तरह चले जानेसे मेरे लज्जा और क्षोभकी सीमा न रहेगी। आज तो आपको मैं किसी तरह भी नहीं जाने दे सकती।

सुरेशने सूखी हँसी हँसकर कहा—सुनो इनकी बात महिम ! तुम लोगोंसे मिलने आया था, मिल लिया, बस । फिर इस जंगलमें मुझे अनर्थक ज्यादा दिन रोक रखनेसे तुम लोगोंको लाभ क्या है ? और मुझे भी कष्ट सहनेसे क्या फायदा, बताओ ?

महिमने धीरतासे जवाब दिया—शायद तुम नाराज़ होकर जा रहे थे; और यह बात इन्हें पसन्द नहीं ।

अचलाने तीक्ष्ण कण्ठसे कहा—और तुम पसन्द करते होगे शायद ?

सुरेश मन ही मन अत्यन्त व्याकुल हो उठा; इसीलिए इस अप्रिय प्रसंगको किसी तरह बन्द करनेकी गरजसे प्रफुल्लताका भाव दिखलाकर हँसता हुआ बोला—झूठा अपवाद क्यों देते हो भई, गुस्सा मैं क्यों होने लगा ! तुम लोग तो अजीब आदमी हो ! अच्छी बात है, तुम्हें खुशी हो तो और भी कुछ दिन रह जाऊँगा । भाभी, कपड़े सरियानेकी जरूरत नहीं, निकालके रख दो । महिम, चलो, आज तुम्हारे तालमें नहा आऊँ । उसके बाद घर जाकर न होगा तो एक शीशी कुनैन ही निगल ली जायगी !

" चलो । " कहकर महिम कपड़े उतारनेके लिए कमरेसे बाहर चला गया ।

१८

जो लोग नये जूतोंका सुतीक्ष्ण दंशन चुपचाप सहकर बाहरसे आरामसे चलनेका भाव दिखाते हैं, ठीक उन्हींकी तरह सुरेशने दिन-भर हँसी खुशीमें बिता दिया । मगर दूसरी, जिसे और भी गोपनरूपसे दंशनका हिस्सा लेना पड़ा, वह न बिता सकी ।

पतिकी अविचालित गंभीरताके आगे अपने इस कुत्सित पाखंडसे,—इस बेहयाईसे मारे क्षोभ और अपमानके उसे सिर पटकर मर जानेकी इच्छा होने लगी । महिमको वह अब भी हृदयकी बाजूसे न पहचाननेपर भी बुद्धिकी बाजूसे पहचान गई थी । उसने स्पष्ट ही देखा कि इस तीक्ष्ण बुद्धिमान्, अल्प-भाषी पुरुषके आगे यह अभिनय बिलकुल ही व्यर्थ हुआ जा रहा है और लज्जाकी कालिमा प्रति क्षण ही मानो उसीके मुँहपर गाढ़ी होती जा रही है ।

आज सबेरेके बाद महिम घरसे बाहर नहीं निकला; लिहाजा दिनके दाल-भात खानेसे लेकर रातके पूड़ी-साग खाने तकका लगभग साराका सारा समय इसी

तरह बीता।

बहुत रात तक बिस्तरपर तड़पते रहनेके बाद अचलाने धीरेसे कहा—रात-भर बत्ती जलाये पढ़ते रहनेसे दूसरा सो नहीं सकता। तुमसे क्या मैं इतनी भी दया नहीं पा सकती?

उसके कंठ-स्वरसे महिम चौंक पड़ा; और झटपट बत्ती नीची करके बोला—गलती हो गई, मुझे माफ करना। कहकर किताब बन्द करके बत्ती बुझाके बिस्तरपर आकर सो गया। इस प्रार्थित कृपा-प्राप्तिके लिए अचलाने कृतज्ञता जाहिर नहीं की। परन्तु इससे उसकी नींदको जरा भी सहायता नहीं मिली। बल्कि ज्यों ज्यों समय बीतने लगा, त्यों त्यों यह निःशब्द अन्धकार मानो व्यथासे भारी होकर प्रतिक्षण उसे दुःसह मालूम होने लगा। बहुत देर बाद जब उससे बिलकुल न सहा गया, तो उसने धीरेसे कहा—अच्छा, जानमें हो या अनजानमें, संसारमें गलती करनेपर उसका दण्ड भोगना ही पड़ता है, क्या यह बात सच है?

महिमने अत्यन्त सहजभावसे जवाब दिया—अनुभवी लोग तो ऐसा ही कहते हैं।

अचला फिर कुछ देर चुप रहकर बोली—तो, जो गलती हम दोनोंहीने की है, और जिसका कुफल शुरूसे ही दिखाई देने लगा है, उसका अन्त कैसा होगा, तुम अन्दाजा लगा सकते हो?

महिमने कहा—नहीं।

अचलाने कहा—मैं भी नहीं लगा सकती। मगर सोचते सोचते मैंने इतना समझा है कि और सब बातें छोड़ देनेपर भी सिर्फ इस लिहाजसे कि एक पुरुष है और एक स्त्री, इस दण्डका ज्यादा भार पुरुषको ही उठाना चाहिए।

महिमने कहा—और भी जरा सोचोगी, तो समझ जाओगी कि इससे स्त्रीका बोझ रंच-मात्र भी घटता नहीं। मगर वह पुरुष है कौन? मैं या सुरेश?

अचला सिहर उठी, अँधेरा होनेपर भी महिमने इसे महसूस किया। क्षण-भर चुप रहकर अचलाने धीरेसे कहा—यह मैं जानती थी कि तुम किसी दिन मेरे मुँहपर ही मेरा अपमान करना शुरू कर दोगे, और यह भी जानती हूँ कि यह बात एक बार शुरू हो जानेपर फिर कहाँ जाकर खतम होगी, सो कोई नहीं बता सकता। लेकिन न तो मैं झगड़ सकती हूँ, और न ब्याह हो गया है इसलिए झगड़ा करते हुए तुम्हारी गृहस्थी ही चला सकती हूँ। कल हो, परसों हो, मैं अपने बापूजीके पास लौट जाऊँगी।

महिमने कहा—तुम्हारे बापूजीको कुछ आश्चर्य तो जरूर होगा।

अचलाने कहा—नहीं। वे जानते थे, इसीलिए उन्होंने बार बार मुझे सावधान करनेकी कोशिश की थी कि इसका नतीजा कभी अच्छा नहीं होगा। कलकत्तेमें चल सकता है, मगर गाँवके समाजमें आत्मीय स्वजनोंको छोड़कर सिर्फ स्त्रीको लेकर किसीका भी ज्यादा दिन नहीं चल सकता। लिहाजा, उन्हें और चाहे जो भी खयाल हो, पर आश्चर्य नहीं होगा।

महिमने कहा—तो फिर तुमने उनकी मनाहीको सुना क्यों नहीं?

अचलाने जी-जानसे कोशिश करके एक उफनती हुई साँसको दबाकर कहा—मैं समझती थी कि तुम कोई भी काम बगैर समझे नहीं करते।

"वह धारणा क्या अब जाती रही?"

"हाँ।"

"इसीसे साझेके कारबारमें नफा होते न देख दुकान उठाकर घर लौटा जाना चाहती हो?"

"हाँ।"

महिम कुछ देर चुप रहकर बोला—यदि ऐसा है तो जाओ। और हाँ, इसे अगर तुमने रोजगार समझना ही सीखा हो, तो तुम्हारे साथ मेरा मत मिलेगा नहीं। मगर इस बातको मत भूलना कि रोजगार जैसी चीजको भी समझनेमें समय लगता है। अपनी यह गलती अगर किसी दिन महसूस करो, तो मुझे लिख देना, मैं उसी वक्त आकर लिवा लाऊँगा।

अचलाकी आँखोंसे आँसू ढलक पड़े; हाथसे उन्हें पोंछकर कुछ देर चुप रहनेके बाद कंठको संयत करके बोली—गलती आदमीसे बार बार नहीं होती। तुम्हें कभी तकलीफ उठानेकी जरूरत होगी, ऐसा मैं नहीं समझती।

महिमने कहा—अभीसे समझमें नहीं आता, इसीसे उसे भविष्य कहा जाता है। उस भविष्यकी चिन्ता भविष्यके लिए छोड़कर आज मुझे क्षमा करो, अब मुझसे बका नहीं जाता।

अचला चोट खाकर बोली—मुझसे क्या तुम मजाक कर रहे हो? अगर यही बात है तो तुम गलती कर रहे हो। मैं सचमुच ही कल-परसोंतक चली जाना चाहती हूँ।

महिमने कहा—मैं सचमुच ही तुम्हें जाने देना नहीं चाहता।

अचला सहसा अत्यन्त उत्तेजित हो उठी, बोली—तुम क्या मुझे मेरी इच्छाके विरुद्ध जबरदस्ती रक्खोगे ? ऐसा तुम हरगिज नहीं कर सकते, जानते हो ?

महिमने शान्त और स्वाभाविक भावसे जवाब दिया—अच्छी बात है, मगर आज ही रातको थोड़े ही जा रही हो। कल-परसों जब जाओगी, तब विचार कर देख लिया जायगा। अभी काफी समय है, आज यहीं तक रहने दो।—इतना कहकर उसने माथेका तकिया उलटा और इस प्रसंगको जबरदस्ती यहीं खतम करके निश्चिन्त होकर लेट गया; और शायद दूसरे ही क्षण सो भी गया।

दूसरे दिन सबेरे चाय पीते समय सुरेशने अचलासे पूछा—महिम शायद आज भी अपनी खेती-बारी देखने तड़के ही उठके चला गया है ?

अचलाने गरदन हिलाके कहा—दुनिया चाहे उलट जाय, पर उनके काममें फर्क नहीं आयेगा।

सुरेशने चायका प्याला टेबिलपर रखते हुए कहा—एक हिसाबसे वह हम लोगोंसे कहीं ज्यादा अच्छा है। उसके कामकी एक गति तो है जो मशीनके चक्केकी तरह जब तक चाबी भरी है तब तक चलती ही रहेगी।

अचलाने कहा—मशीनकी तरह होनेको ही क्या आप अच्छा कहते हैं ?

सुरेशने सिर हिलाते हुए कहा—सो तो कहूँगा ही, क्योंकि ऐसा होना मेरे बूतेके बाहरकी बात है। कमजोर होनेमें कितने दोष हैं, सो मुझे मालूम है; इसीसे जो स्थिरचित्त है उसकी मैं तारीफ किये बगैर नहीं रह सकता। मगर आज मुझे छुट्टी दे दो, मैं घर जाऊँ।

अचला उसी क्षण राजी होकर बोली—जाइए, मैं भी कल जा रही हूँ।

सुरेशने आश्चर्यान्वित होकर पूछा—तुम कहाँ जाओगी कल ?

" कलकत्ता।"

" अचानक कलकत्ता क्यों ? कल तो कोई ऐसी बात नहीं हुई थी ?"

" पिताजी बीमार हैं, इसीसे उन्हें एक बार देखने जाऊँगी।"

सुरेशके मुँहपर उद्वेगकी छाया आ पड़ी। बोला—बीमार पिताको सहसा देखने जानेकी इच्छा होना संसारमें कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं; मगर मुझे डर है कि कहीं मेरे ही कारण आपसमें कलह करके—

अचलाने इस बातका कोई जवाब नहीं दिया। यदु सामनेसे जा रहा था, सुरेशने उसे बुलाकर कहा—तेरे बाबू खेतसे लौट आये रे ?

यदुने कहा—वे तो आज सबेरे गये ही नहीं। अपने पढ़नेके कमरेमें सो रहे हैं।

अचलाने जल्दीसे जाकर दरवाजेके बाहरसे झाँककर देखा, महिम एक कुरसीपर पीठ टेके और टेबलपर टाँग फैलाये सो रहा है। संसारमें यह बात बिलकुल अद्भुत नहीं कि कोई अपनी रातकी अधूरी नींद इस तरह पूरी कर ले; मगर वास्तवमें अचलाके आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब उसने अपनी आँखोंसे देखा कि उसका पति दिनका काम-धन्धा बन्द करके ऐसे असमयमें सो रहा है। वह दबे पाँव कमरेमें घुसकर महिमके मुँहकी तरफ देखती रही। सामनेकी खुली खिड़कीसे प्रभातका पर्याप्त प्रकाश उसके निद्रामग्न चेहरेपर पड़ रहा था। आज अकस्मात्, इतने दिनों बाद, उसकी आँखोंने ऐसी एक नई चीज देखी जो इसके पहले कभी नहीं देखी थी। आज उसने देखा, शान्त चेहरेपर मानो एक अशान्तिका बारीक जाल पड़ा हुआ है; माथेपर जहाँ कई रेखाएँ पड़ गई हैं, एक साल पहले तक वहाँ एक भी दाग नहीं था। साराका सारा चेहरा उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी गुप्त व्यथासे श्रान्त हो, पीडित हो। वह चुपके-से आई थी, और चुपकेहीसे चली जा रही थी; परन्तु पीकदानसे पैर लग जानेसे जो शब्द हुआ, उससे महिमकी आँख खुल गई। अचला लज्जित-सी हो गई, बोली—इस वक्त सो रहे हो? तबीयत खराब तो नहीं हो गई?

महिम आँखें रगड़ता हुआ उठके बैठ गया, बोला—मालूम नहीं, बीमार न होना ही आश्चर्यकी बात है!

अचला फिर कोई प्रश्न न करके कमरेसे बाहर चली आई।

खा-पी चुकनेके बाद सुरेश जानेकी तैयारी कर रहा था और महिम पास ही बैठा एक कुरसीपर बैठा उसके साथ बातचीत कर रहा था। अचला दरवाजेके पास आकर बिना किसी भूमिकाके ही कह उठी—कल मैं भी जा रही हूँ। फुरसत मिले तो बापूजीसे एक बार मिल लीजिएगा।

सुरेशने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—ऐसी बात है क्या, और फिर महिमकी तरफ आँख उठाकर कहा—भाभीको तुम कल ही कलकत्ते भेज रहे हो क्या महिम?

स्त्रीके इस खामखाह विरोधके भावसे महिमका हृदय मानो जल उठा; परन्तु, उसने अपने चेहरेका भाव प्रसन्न रखके मुसकराते हुए कहा—और तो कोई बाधा थी नहीं, पर हमारे इन गाँवोंमें गृहस्थोंके घर नाटक करनेकी रीति नहीं है। कल ही क्यों, आज भी तो तुम्हारे साथ भेज सकता था।

सुरेशका चेहरा लज्जासे आरक्त हो उठा। अचलाने उसी क्षण इसे ताड़कर जबरन हँसते हुए कहा—सुरेश बाबू, हम शहरके रहनेवाले हैं, इसमें लज्जित होनेका कोई कारण नहीं। बीमार मा-बापको देखने जानेकी अगर गाँवकी रीति न हो, तो मैं कहती हूँ, हमारा शहरका नाटक ही इससे कहीं अच्छा। न हो तो आज आप और ठहर जाइए, कल एक ही साथ चले चलेंगे।

अचलाके इस हद दरजेके औद्धत्यसे सुरेशका चेहरा फक पड़ गया। वह सिर झुकाकर कहने लगा—नहीं नहीं, मैं अब नहीं ठहर सकूँगा भाभी, तुम्हारी इच्छा हो तो कल जाना, मगर मैं आज ही जाऊँगा। कहते कहते वह तीव्र उत्तेजनाके साथ सूटकेस हाथमें लेकर सहसा उठ खड़ा हुआ।

उसकी उत्तेजनाके आवेगने अचलाको भी मानो एक बार जड़से हिला दिया। वह अकस्मात् व्याकुल होकर कह उठी—अभी तो गाड़ीमें बहुत देर है सुरेश बाबू, अभीसे जायँगे? जरा ठहरिए, कृपा करके मेरी दो बातें सुनते जाइए।—उसके आर्त्त कंठस्वरके व्याकुल अनुरोधसे दोनोंके दोनों श्रोता एक साथ चौंक उठे।

अचला किसी तरफ बगैर ध्यान दिये कहने लगी—मैं तुम्हारे किसी काममें नहीं आई सुरेश बाबू, परन्तु, तुम्हारे सिवा और कोई हम लोगोंका असमयका मित्र नहीं। तुम बापूजीसे जाके कह देना कि इन लोगोंने मुझे बन्द कर रखा है, ये कहीं भी जाने नहीं देंगे,—मैं यहाँ मर जाऊँगी। सुरेश बाबू, मुझे तुम यहाँसे ले जाओ। जिससे प्रेम नहीं है, उसकी गृहस्थी चलानेके लिए मुझे तुम लोग यहाँ मत डाल जाओ।

महिम विह्वलकी भाँति चुपचाप देखता रह गया। सुरेश मुड़कर खड़ा हो गया और दोनों आँखें तरेरकर बोला—तुम जानते हो महिम, ये ब्राह्म-महिला हैं। कहनेको स्त्री होनेपर भी इनके ऊपर पाशविक बलप्रयोग करनेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं।

महिम क्षण-भरके लिए अभिभूत-सा हो गया था। उसने अपनेको सम्हालते हुए कहा—तुम किस बातके लिए क्या कर रही हो, एक बार सोच तो देखो अचला! फिर सुरेशसे बोला—पशु-बल, या मनुष्य-बल, किसी तरहका कोई बल मैंने किसीके ऊपर किसी दिन प्रयोग नहीं किया। अच्छा ही तो है सुरेश, तुम अगर ठहर सको, तो आजके दिन रुककर कल इन्हें अपने साथ ही ले जाओ। मैं चलकर गाड़ीमें बिठा आऊँगा,—इससे गाँवमें विशेष दृष्टि-कटुता भी न होगी।

—जरा ठहरकर फिर बोला—जरा काम है मुझे, अभी बाहर जा रहा हूँ। आज जब कि जाना हुआ ही नहीं, तो कपड़े-लत्ते उतार डालो। मैं घंटे-भरमें लौट आता हूँ। इतना कहकर वह धीरे-से कमरेके बाहर हो गया।

अचला, मूर्तिकी तरह, चौखट थामें जैसे खड़ी थी वैसे ही खड़ी रही। सुरेश मिनट-भर सिर झुकाये खड़ा रहा, फिर सहसा अट्टहास्य करके बोला—वाह जी वाह! खासा नाटकका एक अंक अभिनय कर डाला गया! तुमने भी बुरा नहीं किया, और मैंने तो खूब ही बढ़िया किया! जिसका घर है उसीकी स्त्रीके बारेमें उसीको आँखें दिखा दीं! और क्या चाहिए? और मित्र भी मेरा मीठे मुँहसे जरा हँसकर मानो वाहवाही देकर चला गया। मैं शर्त लगाके कह सकता हूँ अचला, वह सिर्फ गला खोलके जोरसे ठहाका मारके हँसनेके लिए ही कामका बहाना करके बाहर चला गया है। जाने दो, शीशा तो जरा ले आना भाभी, देखूँ, मेरा अपना चेहरा कैसा दिखाई दे रहा है!—इतना कहकर उसने अचलाके चेहरेकी तरफ जो देखा तो, उसका चेहरा सफेद फक पड़ गया है। उसने कुछ जवाब नहीं दिया, वह सिर्फ एक गहरी साँस लेकर धीरेसे वहाँसे हट गई।

१९

मानव-चित्तके सम्बन्धमें जिन्हें जरा भी अनुभव है, उनसे यह बात छिपी नहीं रह सकती कि जिस शय्याको छूनेमें भी आज अचलाको घृणा होनी चाहिए थी, उसीको यथानियम तैयार करनेके लिए जब वह शामसे पहले कमरेमें गई, तब उसका सम्पूर्ण मन कहाँ और किस अवस्थामें था?

यंत्र-चालितकी तरह अभ्यस्त कार्य समाप्त करके लौटते समय बगलकी छोटी टेबिलपर अकस्मात् ही उसकी निगाह पड़ गई; और ब्लाटिंग पैडपर खुली रखी हुई छोटी-सी चिट्ठीको उसने पल-भरमें पढ़ लिया। सिर्फ एक ही लाइन थी। न वार था, न तारीख; मृणालने लिखा है—भइयाजी साहब, क्या कर रहे हो? परसोंसे तुम्हारी राह देखते देखते तुम्हारी मृणालकी आँखें पथरा गई हैं।

बहुत देर तक अचलाकी आँखोंके पलक नहीं गिरे। ठीक पत्थरकी बनी मूर्तिकी-सी पलकहीन दृष्टि उसी एक लाइनपर रखकर वह स्थिर खड़ी रही। यह कबकी है, कब और कौन दे गया है, उसे कुछ भी नहीं मालूम। मृणालका घर कहाँ, किस दिशामें है, किधरके दरवाजेसे उसके घरमें घुसना पड़ता है, किस

लिए उसने इनके लिए इस तरह व्यग्र-उत्सुक दृष्टि बिछा रखी है, इन सब बातोंके जाननेका उसके पास कोई भी उपाय नहीं। सामनेकी लिखावटके काले काले दाग उसे सिर्फ इतनी ही खबर दे रहे हैं कि किसी परसोंसे एक व्यक्ति किसी और व्यक्तिकी प्रतीक्षामें राह देखता हुआ अपनी आँखें नष्ट किये डाल रहा है, फिर भी भेंट नहीं हो रही है।

इधर इस अन्धकार-प्राय घरमें एकटक देखते देखते उसकी अपनी आँखें भी वेदनासे पीड़ित हैं और उसके आगे काले-काले अक्षर पहले धुँधले और बादमें मानो छोटे छोटे कीड़ोंकी तरह सारे कागजपर किलबिलाने लगे हैं। और भी वह इसी तरह स्थिर खड़ी रहती; परन्तु, अपनी अजानकारीमें अब तक उसके भीतर ही भीतर जो दुःखका वेग उत्तरोत्तर जमा हो रहा था वह जब रुके हुए स्रोतके बाँध टूटनेकी तरह अकस्मात् सशब्द गरजकर बाहर निकल आया, तब उस शब्दसे वह चौंक पड़ी और उससे उसका होश लौट आया। दरवाजेके बाहर मुँह उठाकर देखा कि संध्याका अन्धकार आँगनमें उतर आया है और यदु नौकर हरीकेन लालटेन जलाकर बाहरवाले कमरेमें रखने ले जा रहा है। उसे बुलाकर अचलाने पूछा—बाबू आ गये यदु?

यदुने कहा—नहीं माजी, अभी तक तो लौटे नहीं।

अब अचलाको खयाल आया, दोपहरको उस लज्जाजनक अभिनयका अंक समाप्त होनेपर वे जो बाहर चले गये हैं, सो अभी तक नहीं लौटे। पतिकी गति-विधिके सम्बन्धमें अब उसे रंचमात्र भी सन्देह न रहा। सुरेशके आनेके बादसे इस घरमें एक ऐसी उत्कट और अविच्छिन्न कलहकी धारा बह रही थी कि उसके साथ द्वन्द्व करनेमें अचला और सब भूल गई थी। वह पतिसे प्रेम नहीं करती, फिर भी गलतीसे ब्याह कर लिया है, और जीवन-भर उस गलतीकी दासता करनेके विरुद्ध उसका अशान्त चित्त विद्रोह घोषित करके दिन-रात लड़ाई लड़ रहा है। मृणालकी बात एक तरहसे वह भूल ही गई थी मगर आज संध्याके अन्धकारमें मृणालकी उस एकमात्र पंक्तिने उसके समस्त पुराने दाहके साथ जब उलटा स्रोत बहा दिया, तब एक क्षणमें प्रमाणित हो गया कि उसके उस गलती-शुदा पतिकी अन्य नारीके प्रति आसक्तिका जो संशय है हृदय दग्ध करनेके लिए वह संसारमें किसी भी चिन्तासे कम नहीं।

उस लिखावटको और एक बार पढ़नेके लिए उसने उसे आँखोंके पास

लानेके लिए हाथ बढ़ाया, परन्तु अत्यन्त घृणासे उसका हाथ अपने आप वापस चला आया। वह चिट्ठी वहींकी वहीं खुली पड़ी रही; और अचला कमरेसे बाहर निकलकर बरामदेके खंभेसे पीठ टेककर स्तब्ध खड़ी रही।

सहसा उसे मालूम हुआ—सब झूठा है! यह घर-द्वार, पति और गृहस्थी, खाना और पहरना, सोना और बैठना कुछ भी सत्य नहीं,—इनमेंसे किसी भी चीजके लिए आदमीको तिल-भर भी पैर बढ़ानेकी जरूरत नहीं। सिर्फ मन और समझकी गलतीसे ही आदमी फड़फड़ाकर मरता है; नहीं तो क्या गाँव और क्या शहर, फूसका घर हो चाहे राज-महल,—पति-पत्नी, बाप-मा, भाई-बहन, ये सब सम्बन्ध हैं कहाँ? मनमुटाव भी किस लिए और रोना-धोना और लड़ाई-झगड़ा करके ही आदमी क्यों मरता है? और दोपहरको इतनी बड़ी घटनाके बाद भी जो पति स्त्रीको घरमें अकेली छोड़कर घंटों निश्चिन्ततासे बाहर बिता सकता है, उसके मनकी बात जाँचनेके लिए भी इतनी मगजपच्ची क्यों? सब झूठा है! सब धोखाधड़ी है! मरीचिकाकी तरह सब असत्य है! परन्तु घर-गृहस्थी उसे इतनी सूनी नहीं मालूम हो सकती थी अगर वह एक बार भी मृणालकी उस भाषापर ही अपने सारे चित्तको न उँड़ेल देती,—अगर वह उस मृणालपर भी एक बार विचार करनेकी कोशिश करती। अगर वह अन्य नारीके साथ उस ग्रामवासिनी सदा-आनन्दमयी मृणालके आचरणकी तुलना करके एक बार भी देखती तो अपने मनको शायद लिखे हुए इन कुछ शब्दोंकी कालिमासे इस तरह काला न कर सकती।

यदुने लौटकर कहा—बाबूजी पूछ रहे हैं, चायका पानी गरम हो गया क्या?

अचला मानो सोतेसे जग गई, बोली—कौन बाबू?

यदुने जोर लगाकर कहा—अपने बाबू। वे अभी अभी लौटे हैं। चायका पानी तो, बहुत देर हुई, गरम हो गया होगा माजी!

"तू जा, मैं आती हूँ।" कहकर अचला रसोई-घरकी तरफ चली गई। कुछ देर बाद चाय और जल-पान नौकरके हाथ देकर वह बाहर पहुँच गई। वहाँ देखा कि महिम अँधेरे बरामदेमें टहल रहा है और सुरेश घरके भीतर लालटेनके पास बैठा अखबार पढ़ रहा है,—जैसे किसीको किसीकी उपस्थिति आज मालूम ही न हुई हो।

यह जो अत्यन्त लज्जाकर संकोच है, जिसने दो बाल-बन्धुओंके बीच सहज

शिष्टाचारका मार्गतक बन्द कर दिया है, उसका कारण याद आते ही अचलाके पैर अपने आप जहाँके तहाँ रुक गये।

उसके लौटते ही महिम ठिठकके खड़ा हो गया और बोला—सुरेशको चाय देनेमें इतनी देर क्यों हुई?

अचलाके मुँहसे किसी तरह बात ही नहीं निकली। वह क्षण-भर सिर झुकाये खड़ी रही, फिर धीरेसे कमरेके अन्दर पहुँच गई।

यदु चायका सामान टेबिलपर रखकर लौट गया तो सुरेशने अखबार रखके मुँह फेरा; बोला—महिम कहाँ है, क्या अभी तक नहीं आया?

कहनेके साथ ही महिम भीतर आया और कुरसी खींचकर बैठ गया; परन्तु, वह जो दस मिनटसे उसके कानके पास ही बरामदेमें टहल रहा था, उस बातके कहनेकी उसने जरूरत नहीं समझी। इसके बाद सब चुप! अचला बगैर कुछ बोले-चाले सिर झुकाये दो प्याला चाय बनाकर एक प्याला सुरेशकी तरफ और दूसरा पतिकी तरफ खिसकाकर चुपके-से उठी जा रही थी, पर महिमके टोक देने-पर चौंककर खड़ी हो गई।

महिमने कहा—जरा ठहरो। कहकर वह खुद ही उठके दरवाजेकी संकल लगा आया। सुरेशको उसी क्षण उसकी छै-नली पिस्तौलकी याद आ गई; उसके हाथका प्याला काँप उठा और थोड़ी-सी चाय उछलकर जमीनपर गिर गई। उसका चेहरा मुरदा-सा फक पड़ गया, बोला—किवाड़ क्यों लगा दिये?

उसका कण्ठस्वर, चेहरा और प्रश्नका ढंग देखकर अचलाके भी, उसी बातको याद करके, सिरके बाल तक खड़े हो गये। शायद एक बार उसने चीखनेकी भी कोशिश की, लेकिन उसकी वह कोशिश सफल नहीं हुई। महिम क्षण-भरके लिए अचलाकी तरफ देखकर सब समझ गया। उसके बाद सुरेशके चेहरेकी तरफ देखकर बोला—नौकर न आ जाय, इसीलिए;—नहीं तो मेरी पिस्तौल हमेशा जैसी बाक्समें बन्द रहती है, अब भी वैसी ही रखी है। तुम लोग इतने डर जाओगे, यह अगर मैं जानता तो दरवाजा बन्द भी नहीं करता।

सुरेशने चायका प्याला टेबिलपर रखकर चेहरेपर हँसनेका-सा भाव लाते हुए कहा—वाह, डरने क्यों लगा जी? तुम मुझपर पिस्तौल चलाओगे,—वाह—जानका डर? मुझे? कब देखा तुमने? अच्छे रहे—

उसकी असम्बद्ध कैफियत खतम होनेके पहले ही महिमने कहा—सचमुच

ही मैंने तुम्हें कभी डरते हुए नहीं देखा। प्राणोंकी ममता तुम्हें नहीं है, यही मैं समझता था। सुरेश, मेरे अपने दुःखसे भी आज तुम्हारे अधःपतनने मुझे ज्यादा चोट पहुँचाई है। जो चीज तुम जैसे आदमीको भी छोटा बना दे सकती है,—नहीं सुरेश, कल तुम जरूर घर चले जाओ। किसी भी बहानेसे अब देर करना ठीक नहीं।

सुरेशने फिर भी कुछ जवाब देना चाहा, किन्तु, अबकी बार उसके गलेसे आवाज ही नहीं निकली; और तो क्या, गरदन तक सीधी न कर सका, मानो वह उसकी अजानकारीमें ही अपने आप झुक गई।

"तुम भीतर जाओ अचला।" कहकर महिम साँकल खोलकर दूसरे ही क्षण अँधेरेमें बाहर चला गया।

अब सुरेश सिर उठाकर जबरदस्ती हँसता हुआ बोला—सुन लो बात! ऐसी कितनी ही बन्दूक-पिस्तौलें दिन-रात चलाते चलाते जिन्दगी बिता दी,—अब उसके एक टूटे-फूटे रिवालवरके डरसे मर जाऊँगा! और क्या!—खूब हँसाया भई!—कहता हुआ वह खुद ही जबरदस्ती खींच-खींचकर हँसने लगा। उस हँसीमें शरीक होनेके लिए कमरेमें अचलाके सिवा और कोई नहीं था। मगर वह जिस तरह सिर झुकाये अब तक खड़ी थी, उसी तरह और भी कुछ देर स्तब्धभावसे खड़ी रही और फिर बगलके दरवाजेसे धीरे धीरे भीतर चली गई।

घंटे-भर बाद महिम घर लौटा। उसने अपने कमरेमें जाकर देखा तो वहाँ कोई नहीं। बगलके कमरेमें जाकर देखा कि जमीनपर चटाई बिछाकर बाँहपर सिर रखे हुए अचला पड़ी हुई है। पतिको भीतर आते देख वह उठके बैठ गई। पास ही एक सूना तख्तपोश बिछा हुआ था, महिमने उसपर बैठते हुए कहा—क्यों, कल तुम्हारा मायके जाना ही तय रहा?

अचला नीचेको निगाह किये बैठी रही, कुछ बोली नहीं। महिमने कुछ देर ठहरकर फिर कहा—जिसे चाहती नहीं उसीके साथ रहकर गृहस्थी चलाओ, इतना बड़ा अन्याय मैं पति होनेपर भी तुम्हारे ऊपर नहीं कर सकता।

परन्तु अचलाको फिर भी उसी तरह पाषाण-मूर्तिकी तरह मौन और स्थिर रहते देख महिम कहने लगा—तुमसे मेरी एक दूसरी शिकायत है। मेरा स्वभाव तुम जानती ही हो। ब्याहके बादसे ही नहीं, उसके बहुत पहलेहीसे तुम जानती हो कि मैं सुख-दुःख कुछ भी हो, अपने प्राप्यके सिवा तिलमात्र भी अधिक पानेकी

आशा नहीं करता,—पानेपर भी लेता नहीं। प्रेमपर तो जोर चल नहीं सकता अचला। न हो सके, तो दुःखकी बात है; लेकिन लज्जाकी तो कोई बात नहीं। फिर क्यों इतने दिनोंसे तकलीफ पा रही थीं? क्यों तुमने मुझे बिना जताये सोच लिया था कि मैं जबरदस्ती तुम्हें रोक रक्खूँगा? किसी भी दिन किसी भी विषयमें तो मैंने जबरदस्ती नहीं की। वे तुम्हारा उद्धार करके ले जायँ, क्या तभी तुम्हारी जान बचेगी,—और मुझे जतानेसे क्या कोई उपाय नहीं होता? तुम्हारे प्राणोंकी कीमत क्या सिर्फ वे ही समझते हैं?

अचलाने अश्रु-विकृत अस्पष्ट कंठको जहाँ तक बना सहज और स्वाभाविक करके चुपकेसे कहा—तुम भी तो प्यार नहीं करते।

महिमने आश्चर्य-चकित होकर कहा—यह तुमसे किसने कहा? मैंने तो कभी कहा नहीं।

अचलाको उत्तप्त होनेमें देर न लगी, बोली—सिर्फ कहना ही क्या सब-कुछ है? सिर्फ मुँहकी बात ही सच है, और सब झूठ है? गुस्सेकी हालतमें मनका जो कुछ दुःख होता है, वह मुँहसे बाहर निकल जाता है; क्या उसीको सच मानकर तुम जोर चलाना चाहते हो? तुम्हारी तरह जो तौल तौलकर बात करना नहीं जानता, उसे क्या सिरपर पैर रखकर डुबो देना चाहिए?—कहते कहते उसका गला प्रायः रुक-सा आया।

महिम कुछ समझ न सका, बोला—इसके मानी?

अचलाने अपनी उमड़ती हुई रुलाईको दबाकर कहा—यह न समझ लेना कि तुम जैसे सावधान आदमी भी झूठको हमेशा दबाये रख सकते हैं! तुम्हारी भी तो कितनी ही गलतियाँ हो सकती हैं,—देखो जरा अपनी टेबिलपर! सिर्फ हम लोगोंका ही—

महिम हतबुद्धि-सा हो गया, बोला—क्या है मेरी टेबिलपर?

अचला मुँहमें आँचल ठूँसकर औंधी होकर चटाईपर पड़ रही। उसकी तरफसे और कोई जवाब न पाकर महिम धीरे-से उठकर अपनी टेबिल देखने चला गया। उसके पढ़नेके कमरेमें टेबिलपर कुछ किताबें पड़ी थीं; करीब करीब दस मिनट तक वह उन्हें उलट-पुलटकर ढूँढ़ता रहा, और अन्तमें स्त्रीके अभियोगका कुछ भी मतलब न समझ सकनेपर विमूढ़की भाँति लौटा तो अपने सोनेके कमरेमें कदम रखते ही छोटी टेबिलपर मृणालकी चिट्ठीपर उसकी नजर पड़ी। उसे हाथमें लेकर

पढ़ते ही, अकस्मात् अँधेरेमें बिजली चमक जानेपर जैसे राह दिखाई दे जाती है, वैसे ही एक ही क्षणमें उसे सब कुछ मालूम हो गया। अचलाका इशारा कहाँ है, समझनेमें देर न लगी। उसे हाथमें लेकर महिम बिस्तरपर बैठ गया और शून्य-दृष्टिसे चुपचाप बाहरके अन्धकारकी तरफ देखता रहा। जिस तरह वह पहले दिन आई थी, जिस तरह वह चली गई थी, जिस तरह सौत कहकर उसने अचलासे हँसी की थी,—एक एक करके सभी बातें उसे याद आने लगीं। गँवई-गाँवके इन सब हँसी-मजाकोंसे जो स्त्री परिचित नहीं उसे ये बातें प्रतिदिन किस कदर चुभती रही हैं, और जब कि वह खुद भी किसी दिन खुले मनसे उसमें शामिल नहीं हो सका है बल्कि स्त्रीके सामने लज्जित होकर बार बार उसे रोकनेकी ही कोशिश करता रहा है,—उसकी वह लज्जा अगर इस उच्च शिक्षिता बुद्धिमती स्त्रीकी धारणामें अपराधी ठहरी हो और सचमुचकी लज्जा अगर धीरे धीरे उसके मनमें पैठ गई हो, तो, आज उसे वह जड़से उखाड़कर कैसे फेंक सकता है? बाहरके अन्धकारमेंसे आज बहुत-सा सत्य उसे दिखाई देने लगा;—किस तरह अचलाका हृदय धीरे धीरे उससे दूर हटता गया है, किस तरह पतिका साथ उसके लिए दिनपर दिन विषाक्त हो गया है, किस किस तरह पतिका आश्रय उसके लिए प्रतिक्षण कारागार-सा हो उठा है;—सब कुछ उसे मानो स्पष्ट दिखाई देने लगा। इस प्राणान्तकारी अवरोधसे छुटकारा पानेकी जो उसकी व्याकुल प्रार्थना सुरेशके आगे उमड़ पड़ी थी, वह उसके हृदयके किस अन्तरतमसे निकली थी, सो भी आज महिमकी मनकी आँखोंसे छिपी नहीं रही। अचलाको वास्तवमें वह सम्पूर्ण हृदयसे चाहता था। उसी अचलाके इतने दिनों तक इतने पास रहकर भी उसकी इतनी बड़ी मनो-वेदनाकी तरफसे वह आँख मीचे रहा, इसे उसने अपना बड़ा गहरा अपराध समझा। परन्तु, इस तरह अब तो एक क्षण भी नहीं चल सकता। स्त्रीका हृदय वापस पानेका कोई उपाय है या नहीं, वह कहाँ कितनी दूर हट गया है, इस बातका अनुमान करना भी आज दुःसाध्य है। परन्तु, अनेक प्रतिकूलताओंके विरुद्ध लड़ते हुए भी पति मानकर जिसका उसने एक दिन आश्रय लिया था आज उसीके द्वारा अपमान और लांछना पाकर उसे लौटना पड़ रहा है,—इतनी बड़ी भूल तो उसे बता देनी चाहिए थी।

महिम धीरेसे उठकर अचलाके दरवाजेके सामने जाकर खड़ा हुआ तो देखा

किवाड़ बन्द हैं, धक्का दिया तो मालूम हुआ कि भीतरसे बन्द हैं। धीरे धीरे दो-एक बार बुलानेपर जब कोई जवाब नहीं मिला, तो सिर्फ जबरदस्ती शान्ति भंग करनेकी उसकी प्रवृत्ति नहीं हुई। इतना ही नहीं, बल्कि फिलहाल एक अति कठिन परीक्षाकी जिम्मेदारीसे छुटकारा पाकर मानो उसकी जानमें जान आ गई।

महिम वहाँसे लौटकर खाटपर पड़ रहा; परन्तु जिसके अभावमें बगलका स्थान आज सूना पड़ा है, दूसरे कमरेमें वह बिना खाये-पीये जमीनपर पड़ी है, इस बातका खयाल करके किसी भी तरह उसे नींद नहीं आई। उठकर उसे जगाकर उठा लाना चाहिए या नहीं, यह सोचते सोचते और दुबिधा करते करते बहुत रात बीते शायद उसकी आँख झपक गई थी कि इतनेमें सहसा मिची हुई आँखोंसे तीव्र प्रकाशका आभास पाकर उसने आँखें खोलीं, तो देखता क्या है कि सिरहानेके खुले जंगले और छप्परकी संधोंमेंसे जोरका उजाला आ रहा है, मारे धुँएके कमरा भर गया है; और बहुत ही पाससे एक ऐसी आवाज आ रही है, जिसके कानमें पड़ते ही हाथ पाँव ढीले पड़ जायँ। कहीं आग लगी है, इस बातको निश्चित जानकर भी क्षण-भरके लिए उससे हाथ-पैर नहीं हिलाये गये! मगर इन्हीं कुछ क्षणोंमें ही उसके दिमागके भीतर ब्रह्माण्ड उलट-पुलट गया। उसने उछलकर दरवाजा खोला और बाहर जाकर देखा कि रसोईघर और अचलावाले कमरेके बरामदेके एक कोनेको चीरती हुई बड़े जोरकी आगकी लौ निकल रही है और उसने जामुनके पेड़को लाल कर दिया है। गाँवमें फूसके घरमें आग लगनेपर उसे बुझानेकी कल्पना करना पागलपन है;—कोई इसकी कोशिश भी नहीं करता। मुहल्लेके लोग अपनी अपनी चीज-बस्त और गाय-भैंसें हटानेके लिए इधरसे उधर दौड़-धूप करते रहते हैं, और दूसरे मुहल्लेवाले एक तरफ स्त्रियाँ और एक तरफ मर्द इकट्ठे होकर अत्यन्त उद्वेगके साथ हाय हाय करते हुए,—कितनी चीजें जल गई होंगी, कैसे यह सर्वनाश हुआ, इत्यादि आलोचना करते हुए तब तक प्रतीक्षा करते हैं जब तक कि घर जलकर भस्म नहीं हो जाता। उसके बाद, घर लौटके हाथ-पैर धोकर बाकी रात बिस्तरपर पड़के बिता देते और सबेरे फिर लोटा हाथमें लेकर शौचको जाते दिखाई देते हैं; और अलोचनाकी बाकी बातोंको खतम करके घर जाकर नहा-धोकर खाते-पीते हैं।—एकके जले हुए घरकी खाक दूसरेकी नियमित जीवन-यात्रामें रंच-मात्र भी चोट नहीं पहुँचा सकती।

महिम गाँवका रहनेवाला है, सभी बातें उसे मालूम हैं। इसीसे, निरर्थक ही

शोर-गुल मचाकर उसने मुहल्लेवालोंकी नींद असमयमें खराब नहीं की। इसकी कोई जरूरत भी नहीं थी। कारण, उसके आम-कटहलके इतने बड़े बगीचेको पार करके यह आग और किसीके घरको छू भी नहीं सकती थी। बाहरकी तरफ जिन कोठरियोंमें सुरेश और नौकर-चाकर सो रहे थे, वहाँ तक आग पहुँचनेमें अभी देर थी। देर नहीं थी तो सिर्फ अचलाकी कोठरी तक पहुँचनेमें। उसने उसके दरवाजेपर जोरसे धक्का देकर पुकारा—अचला!

अचलाने इस तरह उत्तर दिया जैसे जाग रही हो—क्यों?

महिमने कहा—दरवाजा खोलकर निकल आओ।

अचलाने श्रान्त कंठसे जवाब दिया—क्या है? मैं तो मजेमें हूँ!

महिमने कहा—देर मत करो, निकल आओ,—घरमें आग लग गई है!

उत्तरमें अचला एक बार भय-विह्वल कंठसे चीत्कार कर उठी;—उसके बाद बिलकुल चुप। महिमने फिर व्यग्रतासे पुकारा तो उसने कोई जवाब ही नहीं दिया। महिमको ठीक यही डर था; क्योंकि घरमें आग लगना किसे कहते हैं, इसका अचलाको कोई ज्ञान ही नहीं था। महिम ठीक समझ गया कि इसके पहले वह आँखें मीचे मीचे ही बात कर रही थी, और अब आँख खोलते ही, उस अग्निमय दृश्यको देखकर जिसने उसे भी कुछ देरके लिए जड़वत् बना दिया था, अचलाको बेहोशी आ गई होगी। मगर इस दुर्घटनाके लिए महिम तैयार ही था। उसने एक किवाड़ ऊँचेको उचकाकर खोल डाला, भीतर जाकर मूर्च्छित स्त्रीको उठाकर छातीसे चिपटाके जल्दीसे बाहर ले आया और आँगनमें आ खड़ा हुआ।

अब वह घरके और सबोंको जगानेके लिए नाम ले-लेकर पुकारने लगा। सुरेश बाहर आके खड़ा हो गया था। यदु वगैरह और सब कोई दरवाजा खोल खोलके भागके बाहर निकल आये। उसके बाद ही एक प्रचण्ड शब्द हुआ जिससे अचला होशमें आ गइ और दोनों बाँहोंसे पतिके गलेसे चिपटकर फूट-फूटकर रोने लगी।

महिम सबको लेकर जब बाहरकी खुली जगहमें पहुँचा तब बड़े कमरेके छप्परमें आग लग चुकी थी। अब उसे याद आया, अचलाके गहने वगैरह जो भी कीमती चीजें हैं, सब उसी कमरेमें हैं और अब एक क्षण भी देर करनेसे उनमेंसे कुछ भी न बचाया जा सकेगा।

अचला प्रकृतिस्थ हो गई थी; उसने जोरसे पतिका हाथ पकड़कर कहा—नहीं, सो नहीं होगा। बदला लेनेका क्या तुम्हें यही वक्त मिला है? मैं इसके भीतर हर्गिज न जाने दूँगी। जाने दो, सब जल जाने दो।

"जाये बगैर न चलेगा अचला!" कहता हुआ वह जबरदस्ती हाथ छुड़ाकर उस जमे हुए धुएँके भीतर तेजीके साथ घुस गया। यदु भी चिल्लाता हुआ पीछे-पीछे दौड़ पड़ा।

सुरेश अब तक अभिभूतकी भाँति देखता हुआ दूर खड़ा था; अकस्मात् होश आते ही ज्यों ही वह कुछ लेनेके लिए आगे बढ़ा कि चटसे अचलाने उसकी धोतीका छोर पकड़कर कठोर कंठसे कहा—आप कहाँ जाते हैं?

सुरेशने धोती खींचते हुए कहा—महिम गया है जो—

अचलाने तीखे स्वरमें कहा—वे गये हैं अपनी चीज बचाने। आप कौन हैं? आपको मैं हर्गिज नहीं जाने दूँगी।

उसके कंठस्वरमें स्नेहका लेशमात्र भी सम्पर्क न था,—मानो उसने सिर्फ अनधिकारीके उपद्रवको तिरस्कार करके दमन कर दिया।

दो-तीन मिनट बाद ही महिम दोनों हाथोंमें दो बाक्स लटकाये और एक भारी ट्रंक सिरपर लादे बाहर आ पहुँचा। महिमने बाक्स अचलाके पैरोंके पास रखते हुए कहा—अपना गहनेका बाक्स सम्हाले रहना, हर्गिज इधर उधर न होने देना; देखूँ अगर अपनी किताबोंवाली कोठरीका कुछ बचा सकूँ।

अचलाके मुँहसे कोई बात नहीं निकली। उसकी मुट्ठीमें अब भी सुरेशकी धोतीका छोर था। महिम क्षण-भरके लिए उधर देखकर यदुको साथ लेकर फिर अदृश्य हो गया।

२०

प्रभातके प्रथम प्रकाशमें अपने पतिके चेहरेपर नजर पड़ते ही अचलाका हृदय हाय हाय करके रो उठा। आँखोंके आँसू उससे किसी भी तरह रोके न रुके। यह हो क्या गया! सिरके बाल धूल-बालू और राखसे रूखे और विवर्ण हो गये हैं; शीर्ण विरस चेहरा आगकी लपटोंसे झुलसकर ऐसा हो गया है जैसे एक ही रातमें उसके ऐसे सुन्दर पतिको किसीने बूढ़ा बना दिया हो। गाँवके लोग चारों तरफ घूम-फिरकर बातचीत कर रहे हैं। पीतल-काँसेके बरतन वगैरह तो सब

कुछ चले गये दीखते हैं। खैर जाने दो, मगर शाल-दुशाले, गहने, सो भी—उस एक ट्रंकमें कितने बचे होंगे! इसी विषयमें सब अत्यन्त तीक्ष्ण आलोचना कर रहे हैं। इन्हीं लोगोंसे कुछ दूर चुपचाप खड़ा हुआ महिम बुझते हुए अग्नि-स्तूपकी तरफ शून्य दृष्टिसे देख रहा था। वह सब कुछ सुन रहा था, लेकिन कुतूहल दूर करने लायक उसके मनकी अवस्था नहीं थी। परले मुहल्लेके भीखू बनर्जी बहुत ही गण्य-मान्य व्यक्ति हैं, वातरोगकी वजहसे अब तक आ नहीं पाये थे; अब लाठीके सहारे दल-बल सहित आते दिखाई दिये तो महिम जरा आगे बढ़ गया। बनर्जी महाशयने बहुत तरहसे विलाप कर-कराके अन्तमें कहा—महिम, तुम्हारे बापको मरे तो बहुत दिन हो गये, लेकिन, हम और वे भिन्न नहीं थे। हम दोनों हरि-हर-आत्मा थे।

महिमने गरदन हिलाकर विनयके साथ कहा—इसमें क्या सन्देह है! सुनकर उन्होंने कहा कि ऐसी दुर्घटना होगी, इस बातको मैं पहलेहीसे जानता था।

महिम चौंककर जिज्ञासु दृष्टिसे देखने लगा। पास ही बेंड़ेकी ओटमें अचला चीज-वस्त लिए स्तब्ध बैठी थी, वह भी सुननेके लिए चौकन्नी हो गई। इतनी भूमिका बाँधकर बनर्जी महाशय कहने लगे—ब्रह्माका क्रोध यों ही झूठमूठको नहीं होता बेटा! हम लोगोंसे एक बार पूछा तक नहीं,—इतने बड़े ब्राह्मणके लड़के होकर तुमने कैसा अकर्म कर डाला!

महिम बातको समझ न सका। वे खुद ही अपनी बातकी विस्तृत व्याख्या करनेके लिए अपने अनुचरोंकी तरफ देखते हुए कहने लगे—हम लोग सभी कहा-सुना करते थे कि कोई न कोई उपद्रव होगा जरूर। अच्छा, और किसीपर तो ब्रह्माकी अकृपा नहीं हुई? बेटा, जैसे ब्राह्मसमाजी वैसे ही क्रिस्तान! साहब होनेसे क्रिस्तान कहते हैं और बंगाली होनेसे ब्राह्मसमाजी। यह बात हम लोगोंसे, जिन्हें शास्त्र-ज्ञान हो गया है, छिपी थोड़े ही रहती है!

उत्साहित होकर और सबोंने भी इसका अनुमोदन किया। बनर्जी साहब उत्साह पाकर कह उठे—कुछ भी क्यों न करो बेटा, पहले एक प्रायश्चित्त करके इसे छोड़-छाड़—

महिमने हाथ उठाकर कहा—ठहरिए। आप लोगोंका मैं असम्मान नहीं करना चाहता, लेकिन जो बात हो नहीं सकती उसे जबानपर न लाइए। मैं जिन्हें घरमें लाया हूँ उनके पुण्यसे घर रहे तो अच्छा, न हो तो बार बार जल जाय,

सो भी मुझे सहन होगा। इतना कहकर वह अन्यत्र चला गया।

बनर्जी महाशय दल-बल सहित कुछ देर तक मुँह बाये देखते रहे, फिर लाठी खटखटाते हुए घर लौट गये और मन ही मनमें जो कुछ कहते गये, सो न कहना ही अच्छा है।

अचलाने सब बातें सुन ली थीं; उसकी दोनों आँखोंसे बड़ी बड़ी आँसुओंकी बूँदे टपकने लगीं।

यदुने आकर कहा—माजी, आपसे पूछकर बाबूजीने पालकी लानेको कहा है। ले आऊँ?

अचलाने आँचलसे आँखें पोंछकर कहा—बाबूको एक बार यहाँ भेज दे।

"पालकी?"

"अभी रहने दे।"

महिमके पास आकर खड़े होनेपर फिर उसकी आँखोंमें आँसू आ गये। सहसा उसके झुककर पैर छूनेपर महिम विस्मित और व्यस्त हो उठा। शायद वह पतिका हाथ पकड़कर उसे अपने पास बिठा लेती, या और कोई लड़कपन कर बैठती,—क्या करती, सो अन्तर्यामी ही जान सकते हैं;—मगर सबेरा हो चुका था, चारों तरफ कुतूहली लोगोंकी आँखें थीं; इसलिए अचलाने अपनेको संयत करके कहा—पालकी क्यों?

महिमने कहा—नौ बजेकी गाड़ी मिल जाती, तो सब तरहसे सुभीता रहता। एक बजे तक घर पहुँचकर नहा-धोकर खा-पी सकतीं। कल रातको भी तो कुछ खाया-पीया नहीं।

"और तुम?"

"मैं?" महिमने जरा सोचकर कहा—मेरा भी कुछ न कुछ ठिकाना हो जायगा।

"तो मेरा भी हो जायगा। मैं नहीं जाती।"

"क्या होगा, बताओ?"

अचला इस प्रश्नका उत्तर न दे सकी। एक बार जबानपर आया कि जंगलमें, पेड़-तले रहूँगी! लेकिन ऐसा तो वास्तवमें हो नहीं सकता। और, मुहल्लेमें किसीके घर घंटे-भरके लिए आश्रय लेना कितना अपमान-जनक है, इस बातका आभास तो उसे अभी अभी बहुत अच्छी तरह मिल चुका है। मृणालका उसे

खयाल न आया हो, सो बात नहीं; बार बार खयाल आया है, परन्तु मारे शरमके उसे वह मुँहसे कह नहीं सकी। कुछ देर चुप रहकर बोली—तुम भी साथ चलो।

महिमने आश्चर्यचकित होकर कहा—मैं साथ चलूँ? इससे लाभ क्या होगा?

अचलाने कहा—लाभ-नुकसान देखनेका भार आजसे मैं लेती हूँ। तुम्हारे हितैषी यहाँ ज्यादा नहीं हैं, सो मुझे मालूम हो गया है। इसके सिवा, तुम्हारे मुँहकी शकल रात-भरमें जैसी हो गई है, सो तो तुम्हें दिखाई दे नहीं रही, मैं देख रही हूँ। मेरे गलेमें छुरी भोंक देनेपर भी मैं तुम्हें यहाँ अकेला छोड़के नहीं जा सकती।

महिमके मनके भीतर उथल-पुथल होने लगी; मगर वह स्थिर बना रहा।

अचला कहने लगी—क्यों तुम इतना सोच कर रहे हो? मेरे गहने तो हैं। उससे पश्चिममें, कहीं भी हो, एक छोटा-सा मकान आसानीसे खरीदा जा सकता है। कहीं भी रहें, मुझे तुम खाना दिये बिना भूखों मार न सकोगे। इसकी कोशिश तो तुम करोगे ही। और मैंने तो तुमसे कह ही दिया है, तुम्हारा भार अबसे मेरे ऊपर रहा।

यदुने पास आकर पूछा—पालकी लाने जाऊँ माजी?

उत्तरके लिए अचला उत्सुक दृष्टिसे पतिके मुँहकी तरफ देखने लगी। महिमने उसका कुछ जवाब नहीं दिया। यदुको पालकी लानेकी आज्ञा देकर स्त्रीसे कहा—लेकिन, मैं तो अभी नहीं जा सकूँगा।

सुनकर अनिवर्चनीय शान्ति और तृप्तिसे अचलाकी छाती भर आई। उसने हृदयके आवेगको सम्हालकर सहज भावसे कहा—सो तो ठीक है, अभी तुम्हारा जाना नहीं हो सकता;—लेकिन शामकी गाड़ीसे जरूर आ जाओगे, बताओ? नहीं तो मैं तुम्हारे लिए ब्यालू लिए बैठी बैठी सोचती रहूँगी, और—

परन्तु उसका यह मन्तव्य महिमके दीर्घ श्वाससे मानो बुझ गया। उसने उदास होकर डरते हुए कहा—शामको भी नहीं जा सकोगे? तो इस अँधेरी रातमें किसके घरमें,—कहते कहते वह रुक गई। जिसके घर उसके पतिकी रात बितानेकी सम्भावना है, उसकी याद आते ही उसका चेहरा गम्भीर और उदास हो गया। शायद उसके मनकी बात महिमने समझी नहीं। उसने पूछा—कलकत्ते मुझे कहाँ जानेको कहती हो?

अचलाने उसी वक्त जवाब दिया—क्यों, बापूजीके यहाँ।

महिमने गरदन हिलाकर कहा—नहीं।

" नहीं क्यों? वह क्या तुम्हारा अपना घर नहीं है?"

महिमने पूर्ववत् सिर हिलाकर कहा—नहीं।

अचलाने कहा—न हो, तो वहाँ दो-चार दिन ही रहकर हम लोग पश्चिम चल देंगे?

" नहीं।"

अचला जानती थी कि उसे अपने निश्चयसे टलाना सम्भव नहीं। कुछ देर सोच-विचारकर बोली—तो चलो, यहींसे हम लोग सीधे पश्चिमके किसी शहरको चल दें। मैं साथ रहूँगी तो तुम्हें कहीं कोई तकलीफ न होगी। लेकिन गहने तो बेचने होंगे; सो कलकत्तेके सिवा कैसे होगा?

महिम दूसरी तरफ देखता हुआ चुप रहा। अचलाने व्यग्र कण्ठसे पूछा—पश्चिममें भी तो बड़े शहर हैं, वहाँ भी तो बेचे जा सकते हैं? मेरे बाक्समें करीब दो सौ रुपये होंगे, अभी उनसे भी तो हम लोगोंका जाना हो सकता है? चुप क्यों हो रहे? बताओ न जल्दी?

महिमसे स्त्रीकी आँखोंकी तरफ न देखा गया, पर उसने जवाब दिया; बोला—तुम्हारे गहने न ले सकूँगा अचला!

अकस्मात् मानो एक जोरका धक्का खाकर अचला पीछे हट गई। कुछ देर बाद बोली—क्यों नहीं ले सकोगे?

महिमने इसका कोई जवाब नहीं दिया; और कुछ देर तक दोनों निस्तब्ध खड़े रहे। अचानक अचला एक साथ ढेरके ढेर प्रश्न पूछ बैठी। बोली—दुनियामें पति क्या सिर्फ तुम्हीं एक हो? विपत्तिके समय वे कैसे लेते हैं? स्त्रीके गहने होते किस लिए हैं? इतनी तकलीफ उठाकर फिर इन्हें बचाने क्यों गये थे?—कहते कहते उसने अपना छोटा टीनका बाक्स हाथसे ढकेल दिया, और कहा—और विपत्तिके समय अगर ये कुछ काम ही न आये, तो झूठमूठ इनका बोझ ढोनेसे क्या होगा? आग तो अब भी धधक रही है, उसमें डालकर मैं निश्चिन्त होकर चली जाऊँ,—फिर तुम्हारे मनमें हो सो करना। इतना कहकर उसने आँचलसे आँखें दबा लीं।

दो-एक मिनट चुप रहकर महिम धीरे-से बोला—मैंने खूब विचारके देख लिया

अचला। लेकिन तुम तो जानती हो, मैं कोई भी काम तावमें आकर नहीं करता; और कोई करे, सो भी नहीं चाहता। तुम जो देना चाहती हो, उसे मैं अपना समझके ले सकता तो मेरे आनन्दकी आज सीमा न रहती; लेकिन, किसी भी तरह ले नहीं सकता। मेरा दुःख देखकर तुम्हारी तरह और भी एकने इससे भी बहुत ज्यादा देना चाहा था, परन्तु वह जैसी दया थी यह भी वैसी ही दया है। मगर मेरा विश्वास है कि इससे न तो तुम्हारा, और न मेरा,—किसीका भी अन्त तक भला नहीं हो सकता।

अचलासे अब सहा न गया। रोना भूलकर शायद प्रतिवाद करनेके लिए ही उसने अपनी दर्पयुक्त आँखें ऊपर उठाई थीं कि इतनेमें पतिकी दृष्टि अनुसरण करते ही उसे दिखाई दिया: कुछ दूरीपर उनका जो तालाब है, उसके घाटके पास नीमके पेड़के नीचेवाले पक्के चबूतरेपर सुरेश बाँहपर हाथ रखे आकाशकी तरफ मुँह उठाये चुपचाप पड़ा है। अचलाकी मुँहकी बात मुँहमें ही रह गई, और उठा हुआ सिर अपने आप नीचेको झुक गया।

मगर महिम मानो कुछ अनमना-सा होकर अपने मनमें ही कहने लगा—यही नहीं कि सिर्फ मुझे ही कभी शान्ति न मिलेगी, तुम्हें बार बार वंचित कर सकूं, ऐसा सम्बन्ध ही हम दोनोंमें कभी नहीं हुआ। जरा ठहरकर बोला—अचला, निजको खाली करके दान करनेमें अनेक दुःख हैं। आवेशमें आकर शायद एक क्षणमें ऐसा किया जा सकता है, मगर इसका नतीजा भोगना पड़ता है जिन्दगी-भर। मैं जानता हूँ कि एक गलतीके कारण तुम्हारे मानसिक संतापकी हद नहीं। फिर और एक गलती हो जानेसे न तो तुम किसी दिन अपनेको ही क्षमा कर सकोगी और न मुझे ही। इतनी क्षति सहने लायक पूँजी तुम्हारे पास नहीं है,—यह बात तुम आज न समझ सकोगी, दो दिन बाद समझ सकोगी, इसीसे मैं तुमसे कुछ भी ले नहीं सकता।

बात अचलाकी छातीमें जाकर चुभ गई। पतिकी दृष्टिमें वह कितनी गैर है, इस बातको आज उसने जितना महसूस किया उतना पहले कभी नहीं किया था। और इसके साथ ही वह मृणालकी याद आ जानेसे क्रोधसे भर उठी। उसने भी कठोर होकर कह दिया—तुम अब तक जो कुछ समझा रहे हो, सो मैं समझती हूँ। शायद तुम्हारी ही बात सच है, शायद तुम्हारा मुँह देखकर दया आ जानेसे ही मैं अपना सर्वस्व तुम्हें देना चाहती थी। हो सकता है कि दो दिन बाद

मुझे सचमुच ही इसके लिए पछताना पड़ता;—सब ठीक है,—मगर सुनो, दूसरेके मनकी बात समझ लेनेकी तुममें चाहे कितनी भी बुद्धि क्यों न हो, तुम्हें समझा देने लायक भी बातें हैं। स्त्रीकी चीज़ जबरदस्ती लेनेकी बात तो दूर रही, हाथ पसारकर लेने लायक पूँजी भी क्या तुममें है? अब मैं तुमसे बहस नहीं करना चाहती। कमसे कम इतनी भी विवेक-बुद्धि तुममें बाकी बची है, आजसे यही मेरे लिए सान्त्वना है। मगर, मैं कहीं भी रहूँ, किसी न किसी दिन तुम्हें सब बातें समझनी ही होंगीं। जरूर समझनी होंगीं।—इतना कहकर, उसने हाथसे अपना मुँह दाबकर अपनी रुलाई रोक ली।

नौ बजेकी गाड़ीसे सुरेश भी घर लौट रहा था। पिछली रातके अग्नि-काण्डने उसे न जाने कैसा कर दिया था। किसीके साथ बात करनेकी शक्ति भी उसकी जाती रही थी। गाड़ी आनेमें अब भी कुछ देर थी। सुरेशने स्टेशनपर महिमको एक किनारे ले जाकर कुछ देर चुप रहकर कहा—महिम, आग लगनेके बारेमें मुझपर तो तुमने सन्देह नहीं किया?

महिमने उसके दोनों हाथ जोरसे पकड़कर केवल इतना ही कहा—छिः!

सुरेशकी दोनों आँखें डबडबा आईं। रुँधे हुए गलेसे कहा—कलसे इसी डरसे मुझे जरा भी शान्ति नहीं महिम।

महिमने चुपकेसे सिर्फ उसका हाथ दबा दिया। उसके बाद बोला—सुरेश, एक सचमुचका अपराध बहुतसे झूठे अपराधोंका बोझ लाद देता है। लेकिन, बहुत दुःख पानेके बाद भी तुम और चाहे जो करो, पर जिसको कि 'क्राइम' कहते हैं सो तुम कभी नहीं कर सकते, इतना मुझे अब भी विश्वास है। फिर जरा ठहरकर बोला—सुरेश, तुम तो भगवान नहीं मानते; पर जो वास्तवमें मानता है, वह दिन-रात प्रार्थना करता है कि उसके विश्वासको वे नष्ट न कर दें।

इतनेमें गाड़ी आ गई। जनाने डब्बेमें अचला और उसकी दासीको चढ़ाकर महिम सुरेशके पास पहुँचा तो उसने खिड़कीसे हाथ बढ़ाकर महिमका दाहना हाथ पकड़के कहा—तुमने कलसे अपने नुकसानकी पूर्ति करनेकी मेरी प्रार्थना किसी भी तरह मंजूर नहीं की, खैर, पर तुम्हारे भगवान् तुम्हारी प्रार्थना जरूर स्वीकार करेंगे भाई। मुझे अब वे छोटा न बनावें। इतना कहकर उसने हाथ छोड़ दिया, और वह मुँह फेर कर बैठ गया।

उधर खिड़कीसे मुँह निकालकर अचला यदुसे चुपके चुपके कुछ बात कर रही

थी; महिमके पास आते ही उसने पूछा—मृणाल जीजीके पति आज सुना है कि मर गये ?

महिमने गरदन हिलाकर कहा—हाँ, सुना कि घंटे-भर पहले मर गये।

अचलाने कहा—करीब दस-बारह दिनसे न्युमोनियामें पड़े थे। मुझे इसकी भी खबर तुमने देनी आवश्यक नहीं समझी ?

महिमने जवाब देना चाहा, पर बातको कैसे बनाकर कहे यह सोचते सोचते ही सीटी हो गई और गाड़ी छूट गई।

२१

अभी केदार बाबू पहलेके-से स्वस्थ नहीं हो पाये थे। खा-पीकर बाहरके बरामदेमें एक आराम-कुर्सीपर पड़कर अखबार पढ़ते-पढ़ते शायद कुछ आँख झपकी ही थी कि दरवाजेपर किरायेकी घोड़ा-गाड़ीके कठोर शब्दसे खुल गई। देखा कि सुरेश और उसके साथ उनकी कन्या और महरी उतर रही है। उनकी तंद्रा उसी क्षण उड़ गई, वे किसी एक अज्ञात आशंकासे घबराकर उठ बैठे और आगेको गरदन बढ़ाकर चिल्लाके बोले—अचला! और सुरेश, तुम कहाँसे आये ? महरी, क्या बात है ? यह सब क्या मामला है, मेरी कुछ समझमें नहीं आ रहा है !

अचलाने ऊपर पहुँचकर पिताके पाँव छुए; सुरेशने नमस्कार किया और कहा—महिमका तार नहीं मिला ?

केदार बाबूने उद्विग्न चेहरेसे कहा—नहीं तो !

सुरेश एक कुरसी खींचकर बैठ गया, बोला—तो शायद तार करना भूल गया है, या फिर अभी तक पहुँचा नहीं है।

केदार बाबूने कहा—तारको जाने दो, क्या बात है सो पहले बताओ ? तुम इन लोगोंको कहाँसे लिवा लाये ?

सुरेशने कहा—कल रातको आग लग जानेसे महिमका मकान जल गया है।

" मकान जल गया ? चौपट हो गया ! क्या कह रहे हो,—मकान जल गया ? कैसे जला ? महिम कहाँ है ? तुम्हें ये लोग कहाँ मिल गईं ?—एक साँसमें इतने प्रश्न करके केदार बाबू धप-से अपनी आराम-कुर्सीपर बैठ गये।

सुरेशने कहा—इन्हें वहींसे लाया हूँ। मैं वहींपर था न !

केदार बाबूका चेहरा अत्यन्त अप्रसन्न और गम्भीर हो उठा, बोले—तुम थे

वहाँ ? कब गये, मुझे तो कुछ मालूम नहीं। लेकिन, वह कहाँ है ?

सुरेशने कहा—महिम तो आ नहीं सका, इसलिए—

केदार बाबूके चेहरेपर अँधेरा छा गया। सिर हिलाकर बोले—नहीं नहीं, यह अच्छी बात नहीं। बहुत ही वाहियात बात है। हद दरजेका अन्याय है। इन सब बातोंको तो मैं हर्गिज—कहते कहते वे आँखें उठाकर अपनी कन्याकी तरफ देखने लगे।

अचला अब तक एक कुरसीकी पीठपर हाथ रखे चुपचाप खड़ी थी। पिताका यह सन्देह उसके हृदयमें जाकर चुभ गया। उसके इस अकस्मात् आगमनके कारणपर उन्होंने जरा भी विश्वास नहीं किया, इस बातको स्पष्ट महसूस करके मारे लज्जा और घृणाके उसके चेहरेपर खूनका नामो निशान तक बाकी न रहा।

केदार बाबूने यहाँ गलती की। लड़कीके मुँहकी शकल देखकर उनका सन्देह और भी दृढ हो गया। वे आराम-कुरसीसे पीठ टेकके पड़ रहे और मुँहके आगे अखबार रखकर फुसकारके साथ एक लम्बी साँस छोड़के बोले—जो तुम लोग अच्छा समझो, सो करो। मैं कल ही इस मकानको छोड़कर और कहीं चला जाऊँगा।

सुरेश क्रुद्ध-आश्चर्यके साथ बोल उठा—यह सब क्या कह रहे हैं आप, केदार बाबू? क्यों तो आप मकान छोड़के चले जायँगे, और क्यों,—क्या, हुआ क्या है?—कहकर वह एक बार अचलाकी तरफ और एक बार उसके पिताकी तरफ देखने लगा। परन्तु किसीका भी चेहरा उसे दिखाई नहीं दिया।

केदार बाबूकी तरफसे कोई जवाब न पाकर वह उठके खड़ा हो गया और बोला—खैर, मुझपर महिमने जो भार दिया था, वह मैं उठा चुका। अब आप लोग जो अच्छा समझें, करें। मेरा अभी नहाना-खाना नहीं हुआ है, मैं घर चल दिया। और वह दरवाजेकी तरफ बढ़ा ही था कि केदार बाबूने उठके बैठते हुए क्लान्त स्वरमें कहा—अरे रे, जाते क्यों हो भई? बात क्या है, सुनूँ भी तो। आग लगी कैसे?

सुरेशने रूठे स्वरमें कहा—सो नहीं मालूम।

"तुम वहाँ कब पहुँचे?"

"पाँच-छै रोज पहले। मैंने कुछ खाया नहीं अभी, अब मैं देर नहीं कर सकता।" कहकर वह फिर जानेको तैयार हो गया, तो केदार बाबू बोले—

अरे भई, देख रहा हूँ कि नहाना-खाना तो तुम लोगोंमेंसे किसीका भी हुआ नहीं —लेकिन पानीमें थोड़े ही भीग रहे हो, यह भी तो आखिर घर ही है, यहाँ भी तो नौकर-चाकर मौजूद हैं। अचला, बुलाओ न जरा बेहराको—खड़ी क्यों रह गई? बैठो, बैठो सुरेश, बात क्या हुई, सब खोलके बताओ, सुनूँ।

सुरेश लौटकर बैठ गया। जरा चुप रहकर बोला—रातको सो रहा था, महिमकी चीख सुनकर कोठरीसे बाहर निकलकर देखा कि सब धाँय धाँय करके जल रहा है! फूसका घर ठहरा, बुझानेका कोई चारा नहीं, इसकी किसीने कोशिश भी नहीं की—सब-कुछ जल-जलाकर खाक हो गया, बस, और क्या!

केदार बाबू उछल-से पड़े, बोले—क्या कहते हो जी! सर्वस्व जल गया? कुछ भी नहीं बचाया जा सका? अचलाके गहने वगैरह?

"सो सब बचा लिये हैं।"

"फिर भी बचे तो सही!" कहकर एक लम्बी साँस लेकर वे चेयरपर बैठ गये। कुछ देर स्तब्ध रहकर फिर पूछने लगे—फिर भी, लगी कैसे आग?

सुरेशने कहा—कहा न अभी आपसे कि इसका पता अभी तक नहीं लगा। मगर हाँ, इतना जरूर मालूम कर आया हूँ कि गाँवमें उसका कोई शुभाकांक्षी नहीं है।

"कोई नहीं?"

"नहीं।"

केदार बाबू फिर कुछ नहीं बोले। बहुत देर तक चुपचाप बाहरकी तरफ देखते रहे, और अन्तमें एक गहरी साँस लेकर उठके खड़े होकर बोले—जाओ, तुम नहा आओ सुरेश, अब देर न करो। देखूँ, रसोईका क्या इन्तजाम हो रहा है।—इतना कहकर सुरेशको साथ लेकर वे बाहर चले गये।

खाने-पीनेके बाद भी उन्होंने सुरेशको छुटकारा नहीं दिया। वह एक आराम-कुरसीपर अर्ध-निद्रित अवस्थामें पड़ा था। अचलाने तभी अपने कमरेमें जाकर जो भीतरसे हुड़का बन्द कर लिया, सो फिर उसकी आहट तक नहीं मिली। विश्राम नहीं था तो एक केदार बाबूको। अब जिस तारके आने न-आनेमें कोई सार्थकता नहीं थी, उसीके लिए वे छटपटाते रहे; और इस बहानेसे कि शामके वक्त बेवक्त सोना ठीक नहीं, लड़कीको बुलावा भेजा।

अचलाके आते ही उन्होंने पहले यही बात पूछी—तुम लागान कहा था

कि महिमने तार भेजा है, तार भेजा है,—सो कहाँ है? तार-वार तो कुछ आया नहीं। तुम लोग रेलसे चलकर आ पहुँचे, और तारका अभी तक पता नहीं! अच्छा, ठहरो जरा! देखूँ, कहते हुए वे लड़कीका जवाब बगैर सुने ही स्लीपर चटकाते हुए तेजीके साथ बाहर निकल गये, और क्षण-भर बाद ही नीचेसे उनका उत्तेजित कंठस्वर स्पष्ट सुनाई देने लगा। अचलाकी दासीसे वे तरह तरहकी जिरह कर रहे हैं, और उसके उत्तरमें वह आश्चर्यान्वित होकर बार बार प्रतिवाद कर रही है—सो कैसे बाबूजी, आग लगके घर-द्वार सब जलकर भस्म हो गया, अपनी आँखोंसे देख आई हूँ मैं, और आप कहते हैं कि आग नहीं लगी! अगर आग नहीं लगी, तो घर-द्वार जलके भस्म कैसे हो गया, जरा सोचिए तो सही।

सुरेश सब कुछ सुन रहा था; उसने सिर उठाकर देखा—अचला चौखटके सहारे खड़ी हुई, सफेद-फक चेहरेसे, कान बिछाये प्रत्येक शब्द लील-सी रही है। उसने शुष्क उपहासके ढंगसे कहा—तुम्हारे बापूजीको हो क्या गया है, बता सकती हो?

अचला चौंक पड़ी; उसकी तरफ मुँह फेरकर बोली—नहीं।

सुरेशने कहा—मैं निश्चयसे कह सकता हूँ कि उन्हें विश्वास नहीं हुआ है। उनकी धारणा है कि आग लगनेकी बात हम लोगोंकी मन-गढ़न्त है। फिर जरा चुप रहकर बोला—सच-झूठ तो किसी दिन मालूम हो ही जायगा; मगर उनका सन्देह ऐसा है कि यहाँ आना मेरे लिए बिलकुल ही असम्भव हुआ जा रहा है।

अचलाने सूखे मुँहसे पूछा—आप क्या अब यहाँ न आयेंगे?

सुरेश उठके खड़ा होकर बोला—शायद सम्भव न होगा। मुझे भी तो कुछ आत्म-सम्मानका ज्ञान है। किसी आदमीके हाथ मेरा सूटकेस भिजवा देना।

अचलाने गरदन हिलाकर कहा—अच्छा।—परन्तु उसके यहाँ आने न आनेके बारेमें वह कुछ नहीं बोली।

"तो कल सबेरे ही भिजवा देना। बहुत-सी जरूरी चीजें हैं उसमें मेरी।" कहकर वह केदार बाबूके लिए बगैर ठहरे ही चल दिया।

केदार बाबू लौटे तो उन्हें कुछ आश्चर्य जरूर हुआ; पर मन ही मन अप्रसन्न हुए हों, ऐसा नहीं मालूम हुआ।

रातको बहुत देर तक अचला बिस्तरपर पड़ी फड़फड़ाती रही और अन्तमें उठ बैठी। उसकी इच्छा थी कि बाहरके बरामदेमें खड़ी होकर सामनेके रास्तेसे

निकलनेवाले राहगीरोंका आना-जाना देख कर कुछ देरके लिए अन्यमनस्क हो जाय।

अपने कमरेके बरंडावाले किवाड़ खोल कर वह बरामदेमें पहुँच गई, और वहाँसे उसने देखा कि बैठकमें अभी तक बत्ती जल रही है। पहले तो समझा कि नौकर लोग गैस बन्द करना भूल गये हैं; परन्तु कई कदम आगे बढ़नेपर भीतरसे जब उसे अपने पिताकी आवाज सुनाई दी, तो उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। हमेशा वे दस बजते न बजते सो जाया करते हैं; लेकिन आज साढ़े दस बज चुके हैं। दूसरे ही क्षण दासीकी आवाज सुनाई दी। वह कह रही थी—अब मृणाल-दीदीका मालिक मर गया है,—और वे ससुरालमें ठीकसे रहती हों, ऐसा तो मुझे नहीं मालूम होता बाबू। जमाई-बाबूके साथ उनका कैसा नाना-नातनीका सम्बन्ध है सो वे ही जानें।

इसके उत्तरमें केदार बाबू सिर्फ ' हूँ ' करके चुप रह गये।

अचला समझ गई कि इसके पहले बहुत-सी बातें हो चुकी हैं। मृणालके विषयमें, महिमके सम्बन्धमें, उसके अपने बारेमें;—कुछ भी बाकी नहीं रहा है। परन्तु इस डरसे कि कहीं अपने ही सम्बन्धमें अपने ही कानोंसे कोई अत्यन्त अप्रिय बात न सुननी पड़े, वह जैसे चुपकेसे आई थी वैसे ही उसने चुपचाप लौट जानेकी इच्छा की; परन्तु मालूम नहीं कैसे उसके पैर लोहेकी जंजीरसे बँध-से गये।

केदार बाबू थोड़ी देर चुप रहकर बोले—तो दोनोंमें बनी नहीं, यों कहो?

नौकरानीने कहा—बिलकुल नहीं बाबूजी, बिलकुल नहीं। एक दिनके लिए भी नहीं बनी।

इस नौकरानीको अचला अब तक बेवकूफ ही समझती रही है; आज देखा कि उसकी बुद्धि किसीसे भी कम नहीं।

केदार बाबू फिर मिनट-भर चुप रहकर बोले—तो कल रातमें किसीका खाना भी नहीं हुआ यों कहो? सुरेशके पहुँचनेके बादसे एक तरहसे लड़ाई-झगड़ेमें ही दिन कट रहे थे?

दासीका जवाब सुनाई तो नहीं दिया; परन्तु पिताके मुँहकी बातसे समझ लिया कि उसने गरदन हिलाते हुए कैसी राय जाहिर की होगी। कारण, दूसरे ही क्षण केदार बाबू एक गहरी साँस लेकर कहने लगे—एक दिन ऐसा होगा ही, सो तो मैं हले ही जानता था। आज-कलके लड़के-लड़कियाँ मा-बापकी बात नहीं मानतीं;

नहीं तो, मैंने तो सब-कुछ एक तरहसे ठीक ही कर लिया था। वैसा होता तो फिर आज उसे चिन्ता ही क्या थी! इतना कहकर फिर उन्होंने एक गहरी साँस ली जो साफ सुनाई दी।

नौकरानीने पूर्ण सहानभूतिके साथ लगभग साथ ही साथ जवाब दिया—भला कहिए तो बाबूजी, आज उन्हें फिकर किस बातकी थी? कहाँ गँवई-गाँवमें एक फूँसका घर! सो भी रहा नहीं। और जमाई-बाबू तो,—कहकर उसने बातको खतम न करके भी एक गहरी साँस लेकर उसे दूरतक लुढ़का दिया।

"तकदीर!" कहकर बाबू दो मिनट चुप रहकर उठके खड़े हो गये, और "अच्छा, तू जा।" कहके उसे बिदा करके बत्ती बुझानेके लिए नौकरको बुलाने लगे।

अचला दबे-पाँव अहिस्तेसे अपने कमरेमें जाकर बिस्तरपर पड़ रही। पिताकी उदारता और भद्रता-सम्बन्धी धारणाके विषयमें अचलाको बहुत ऊँचा खयाल पहले भी कभी नहीं था; परन्तु यह वह कभी नहीं सोच सकती थी कि वे घरकी एक नौकरानीके साथ एकान्तमें आलोचना करने जैसी क्षुद्रता कर सकते हैं। आज उसका अपना मन छोटा होकर धूलमें लोट रहा है,—परन्तु उसके पति, उसके पिता, उसकी दासी, उसका बन्धु,—सभी जब कि उसीकी तरह धूलमें पड़े हैं तब किसका सहारा लेकर वह कभी इस धूलि-शय्यासे उठके खड़ी हो सकेगी, इस भरोसेकी वह कल्पना भी न कर सकी।

२२

केदार बाबू संसारके उन्हीं साधारण आदमियोंमेंसे हैं, जिनमें दोष और गुण दोनों बातें पाई जाती हैं। लड़कीके ब्याहके विषयमें उन्होंने यही चाहा था कि दामाद डिगरी-धर और सम्पन्न हो। महिम अच्छा लड़का था, उसने एम्० ए० पास किया था और देशमें उसके गुजारेका जरिया भी था, लिहाजा उसके हाथ कन्या सौंपनेमें उन्होंने अपना सौभाग्य ही समझा था। परन्तु, अकस्मात् उसके धनाढ्य मित्र सुरेशने एक दिन अपनी घरकी गाड़ीमें उनके घर आकर जब इससे उलटी खबर दी और खुद ही दामाद बननेकी उम्मेदवारी की, तब दोनों मित्रोंमें आर्थिक सम्पन्नताका हिसाब लगाकर महिमको बरखास्त करनेमें केदार बाबूको कोई आपत्ति नहीं हुई। वे प्रेमके सूक्ष्म तत्त्वको इतना महत्त्व नहीं देते

थे; उनकी धारणा थी कि स्त्रियाँ पतिके तौरपर उन्हींको ज्यादा पसन्द करती हैं जिनके पास चढ़नेको पालकी-गाड़ी और पहरनेको कपड़े-गहने आदि हों जिससे कि वे आरामसे जीवन बिता सकें। लिहाजा, लड़कीको सुखी बनाना ही अगर पिताका कर्तव्य हो, तो, इतना बड़ा बिन-माँगा मौका किसी भी तरह हाथसे न जाने देना चाहिए, इस बातको तय करनेमें उन्हें ज्यादा सोचना नहीं पड़ा।

यहाँ तक कि धनी दामादसे कर्जके तौरपर, ब्याहके पहले ही, पाँच हजार रुपये लेनेमें भी उन्होंने दोष नहीं समझा; और जब कि मकान उसीका रहेगा, तो कर्ज अदा करनेकी दुश्चिन्ताने भी उन्हें विचलित नहीं किया।

मगर, अभागी लड़कीने सब बना-बनाया चौपट कर दिया,—किसी भी तरह न मानी। इसलिए, अन्तमें यद्यपि उन्हें उसी महिमके हाथ ही लड़की सौंपनी पड़ी, फिर भी इस दुर्घटनासे उनके क्षोभकी सीमा न रही। इसके सिवा, जो बात उन्हें अपने आप स्वीकार करनी पड़ी वह यह कि अब उन्हें सुरेशके रुपये वापस कर देने चाहिए। परन्तु एक तो इसकी कोई लिखा-पढ़ी न होनेसे और दूसरे अदा करनेका रास्ता बिलकुल साफ और सरल होकर दिखाई न पड़नेसे इसकी चिन्ताको भी अपने हृदयसे उतने स्पष्ट रूपमें दूर न कर सके। इसलिए, यद्यपि यह प्रश्न मनमें उठा जरूर, पर उत्तर प्रायः धुँधलाका धुँधला ही रह गया।

फिर अचला सुसराल चली गई। इसके बाद सुरेशका आना-जाना और घनिष्ठता केदार बाबूको पसन्द नहीं आई। 'घरपर हैं नहीं'का बहाना करके अकसर वे मुलाकात भी नहीं करते थे। परन्तु, लड़कीके दुर्व्यवहारसे वे मन ही मन अत्यन्त लज्जित और दुःखी ही बने रहे।

इसी तरह दिन बीत रहे थे। इस बीचमें वे सहसा सख्त बीमार पड़ गये। सुरेशने आकर उनका इलाज किया और पुत्रसे भी अधिक सेवा-टहल करके उन्हें अच्छा कर दिया। उनके स्वयं ऋणका उल्लेख करनेपर सुरेशने उसे मित्रको दहेजके तौरपर दिया है, कहकर हँसीमें उड़ा दिया। उसी दिनसे इस युवकपर उनका स्नेह दिनपर दिन गहरा और अकृत्रिम होता रहा। यहाँ तक कि कभी कभी उनके मनमें अपनी लड़कीके विरुद्ध अभिशाप-सा उदित होता कि अभागीने ऐसे रत्नको न पहचाना, उपेक्षा करके छोड़ दिया, उसे कभी न कभी इसका फल भोगना ही पड़ेगा।

माना कि इस मामलेमें महिम उनकी आँखोंका काँटा हो गया था, मगर इसका मतलब यह नहीं कि वे चाहते हैं कि उनकी कन्या नारी-धर्मको तिलांजलि देकर पतिको त्यागनेकी गहरी कालिमा मुँहपर पोतकर उन्हींके घरमें चली आये;—इस बातकी उन्होंने कभी स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की थी; और इस पापमें जिस आदमीने सहायता की है, चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो, पिताके मनका भाव उसके विरुद्ध कैसा बिगड़ उठेगा,—इस बातका अनुमान करना कठिन नहीं।

दूसरी ओर, पिताके प्रति कन्याके मनका भाव पहले चाहे जैसा रहा हो, पर जिस दिन उन्होंने सिर्फ रुपयेके लोभसे ही महिमको छोड़कर सुरेशके साथ उसका सम्बन्ध करनेकी ठान ली, और अदा करनेका कोई जरिया न होनेपर भी उससे कर्ज ले लिया, उस दिनसे मनुष्यताके लिहाजसे केदार बाबू अचलाकी दृष्टिमें बहुत गिर गये। और, वह अश्रद्धा सौगुनी बढ़ गई कल रातको, जब उसने अपने कानोंसे सुन लिया कि उन्हें अपनी लड़कीके चरित्रके सम्बन्धमें छिपे छिपे दासीकी राय लेनेमें भी संकोच नहीं हुआ।

परन्तु, साथ ही साथ अचला आज अपनेको भी देख सकी। उसका सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा जब उसे यह दिखाई दिया कि उसने स्वयं अपने पतिसे कहा है कि मैं तुमसे प्रेम नहीं करती, उसी क्षण नारीकी सर्वोत्तम मर्यादा भी उसके लिए संसारसे धुल-पुछ कर साफ हो गई। इसीसे आज वह पतिके आगे तुच्छ हो गई है, दासीकी निगाहसे गिर गई है, यहाँ तक कि उस सुरेश जैसे आदमीकी दृष्टिमें भी आज वह इतनी छोटी हो गई है कि उसे अगर वह लालसाकी साथिन समझने लगा हो तो उसके लिए यह दुराशा नहीं। परन्तु वास्तवमें क्या यही बात है? क्या वह इतनी ओछी है? अभी उस दिनकी ही तो बात है कि वह अपने प्रेमको सर्व-जयी करनेके लिए सारे विरोध और सारे प्रलोभनको ठुकराकर कसौटीमें खरी उतरी थी; और आज इतनेमें ही उस बातको सब भूल गये? उसे सुरेशके साथ भेजकर भी पतिने कोई खबर-सुध नहीं ली। इस उदासीनतामें छिपे हुए अपमान और लांछनासे वह सारी रात जलती रही।

सबेरे जब वह जागी, तब अबेर हो चुकी थी। तरुण सूर्यकी किरणें खिड़कीके रास्ते कमरेके भीतर आकर फर्शपर बिखर रही थीं। वह धीरेसे बिस्तरसे उठकर, सिरहानेकी खिड़की खोलकर, चुपचाप बैठी हुई रास्तेकी तरफ देखने लगी।

कलकत्तेकी आम सड़कपर राहगीरोंकी कमी नहीं। कोई कामपर जा रहा है,

कोई घर लौट रहा है और कोई प्रभातके प्रकाश और हवामें यों ही घूम-फिर रहा है। उधर देखते देखते सहसा उसे खयाल आया कि इस समय तो कोई भी घरमें नहीं बैठा है,—फिर मैंने ही यथार्थमें ऐसा कौन-सा भारी अपराध किया है जो किसीको मुँह नहीं दिखा सकती और खुद अपने आपको इस तरह कैद कर रखा है? अपराध अगर कुछ किया ही हो तो उनके प्रति किया है। उसका दण्ड वे ही देंगे; बिना किसी विचारके दूसरा कोई सजा देना चाहे, तो वह उसे चुपचाप क्यों सहेगी?

अचला उसी वक्त उठके खड़ी हो गई, और सारी ग्लानिको मानो जबरन झाड़कर, मुँह-हाथ धोकर, कपड़े बदलके बैठकमें पहुँच गई।

केदार बाबू अपनी आराम-कुरसीपर पड़े अखबार पढ़ रहे थे, एक बार मुँह उठाकर देख-भर लिया और फिर अखबार पढ़नेमें लग गये।

कुछ देर बाद ही बेहरा आया और केटलीमें चायका गरम पानी तथा और और सामान टेबिलपर रखकर चला गया। केदार बाबूने खुद उठकर अपने लिए एक प्याला चाय बना ली, प्याला हाथमें लेकर चुपचाप अपनी आराम-कुरसीपर जा बैठे और अखबार देखने लगे।

अचलाने सिर झुकाये हुए पिताका आचरण देखा; परन्तु स्वयं अपनी गरज दिखाकर आज उसे चाय बनाने या कोई बात करनेका साहस नहीं हुआ, और न इच्छा ही हुई।

लेकिन, एक ही कमरेमें इस तरह कठोर मूर्ति बनाकर मुँह बन्द करके बैठे रहना असम्भव है। और वह इस जटिल समस्यापर एकान्तमें विचार करनेके लिए कि इस तरह ज्यादा दिन एक घरमें उनके साथ रहना सम्भव और उचित है या नहीं, और न हो, तो उसे क्या उपाय करना चाहिए, उठना ही चाहती थी कि इतनेमें उसने असह्य आश्चर्यके साथ आँख उठाकर देखा कि सुरेश भीतर आ रहा है।

सुरेशने हाथ उठाकर केदार बाबूको नमस्कार किया तो उन्होंने मुँह उठाकर जरा-सा सिर हिला दिया और वे फिर पढ़नेमें लग गये।

सुरेश कुरसी खींचकर बैठ गया। चायका सामान उठानेके लिए बेहराके कमरेमें घुसते ही सुरेशने उससे कहा—मेरा सूटकेस कहाँ है, पहुँचा तो दो मेरी गाड़ीपर। शेव करनेका सामान भी उसीमें है। देर मत करना, मुझे अभी जाना है।

"जो आज्ञा" कहकर वह चला गया; और फिर सारा कमरा निस्तब्ध हो गया। कुछ देर बाद सुरेश अचानक पूछ बैठा—महिमका कोई समाचार आया?

केदार बाबूने बगैर मुँह उठाये ही जवाब दिया—नहीं।

सुरेशने कहा—आश्चर्य है!

उसके बाद फिर सब चुप। बेहराने वापस आकर कहा—सूटकेस गाड़ीपर पहुँचा दिया गया है।

"तो मैं चल दिया। महिमकी चिट्ठी आनेपर मुझे जरा खबर पहुँचा दीजिएगा।" इतना कहकर सुरेश उठना ही चाहता था कि सहसा केदार बाबू हाथका अखबार फर्शपर डालकर कह उठे—तुम जरा ठहरो सुरेश, मैं अभी आता हूँ और उसके मुँहकी तरफ बगैर देखे ही स्लीपर चटकाते हुए जरा-कुछ तेजीके साथ कमरेसे बाहर चले गये।

अब तक अचला सिर झुकाये ही बैठी थी। केदार बाबूके चले जानेपर विस्मित सुरेशके मुँह फेरते ही उसकी दृष्टि अचलाकी त्रस्त, पीड़ित और अत्यन्त मलिन आँखोंपर पड़ी। उसने पूछा—क्या बात है?

अचलाने, नीचेको मुँह किये हुए ही, सिर्फ सिर हिला दिया।

सुरेशने फिर कहा—तुम्हारे पिताजी मुझे इतना नीच, इतना बड़ा पापी समझ सकते हैं, यह बात मैंने कभी स्वप्नमें भी न सोची थी।

इस अभियोगका भी अचलाने कोई उत्तर नहीं दिया, वह पहलेकी तरह स्थिर बैठी रही।

सुरेश कहने लगा—मेरी ऐसी इच्छा होती है कि इसी समय महिमके पास जाकर उसे—

बात खतम भी न होने पाई कि केदार बाबू लौटकर आ गये।

उनके हाथमें एक कागजका टुकड़ा था। उसे सुरेशके सामने टेबिलपर रखते हुए बोले—आज-कल करते करते आलसमें अब तक तुम्हें उन रुपयोंकी एक रसीद तक न दे सका। पाँच हजार रुपयोंका हैण्डनोट लिख दिया है,—ब्याज शायद अब न दे सकूँगा; लेकिन मकान तो रहेगा ही, इससे शायद असल रकम अदा हो जायगी।

सुरेश भौंचक्का-सा होकर क्षण-भर खड़ा रहा, फिर बोला—मैंने तो आपसे हैण्डनोट माँगा नहीं, केदार बाबू!

केदार बाबूने कहा—तुमने नहीं माँगा, सो ठीक है; लेकिन मुझे तो देना चाहिए। अब तक न दे सका, यही मुझसे काफी अन्याय हो गया सुरेश, कागज तुम जेबमें रख लो। बूढ़ा हो चुका हूँ, अचानक अगर किसी रोज मर जाऊँ तो रुपयेके बारेमें झगड़ा खड़ा हो सकता है।

सुरेशने आवेगके साथ जवाब दिया—केदार बाबू, सुरेश और चाहे जैसा भी हो, वह रुपये-पैसेके मामलेमें किसीसे झगड़ा नहीं करता। इसके सिवा, आप खुद भी अच्छी तरह जानते हैं कि मैं रुपया नहीं चाहता, मैंने ये दहेजके तौरपर मित्रको दिये हैं।

केदार बाबूने कहा—तो वह तुम अपने मित्रको ही देना, मुझे मत दो। मैंने जो लिया है, सो कर्ज ही लिया है।

सुरेशने कहा—अच्छी बात है, मैं अपने मित्रको ही दूँगा। कहकर टेबिलपरसे कागज उठा कर ज्यों ही वह दो कदम पीछे हटकर अचलाके सामने खड़ा हुआ, त्यों ही केदार बाबू अग्निकाण्डकी तरह भभक उठे। चीत्कार करके बोले—खबरदार सुरेश! कलसे मैंने बहुत-सा अपमान चुपचाप सहा है, मगर मेरी ही लड़कीको मेरे ही सामने तुम रुपये दे जाओगे, यह मुझसे हरगिज न सहा जायगा। —कहते कहते वे काँपते हुए अपनी आराम-कुरसीपर धप-से बैठ गये।

पहले तो सुरेश चौंक पड़ा और एकटक केदार बाबूकी तरफ देखता रहा। फिर, उनके इस तरह बैठ जानेपर उसने अपना सफेद फक चेहरा अचलाकी तरफ फेर कर देखा कि वह क्षण-भरमें पाषाण-सी हो गई है। बहुत कोशिश करके उसने कुछ कहना भी चाहा, पर उसके सूखे कण्ठसे एक अव्यक्त ध्वनिके सिवा और कुछ निकला ही नहीं। उसने फिर मुड़कर देखा, केदार बाबू दोनों हथेलियाँ मुँहपर रखे उसी तरह पड़े हैं। फिर उसने कोई बात कहनेकी कोशिश भी नहीं की,—सिर्फ जड़वत् और भी मिनट-भर स्तब्ध रहकर अन्तमें धीरे धीरे चुपचाप कमरेसे बाहर निकल गया।

वह चला गया, किन्तु कन्या और पिता ठीक उसी तरह ज्योंके त्यों बैठे रहे; और दीवारपर टँगी बड़ी घड़ीके टक टक शब्दके सिवा सारे कमरेमें एक तरहकी निष्ठुर नीरवता छा गई।

नीचे सुरेशकी रबर-टायरकी गाड़ी फाटक पार करके चली गई, यह घोड़ोंकी टापोंकी आवाजसे मालूम हो गया; और इसके दूसरे ही क्षण बेहराने कमरेमें आकर

पुकारा—बाबू !

केदार बाबूने आँख उठाकर देखा—उसके हाथमें एक फटा हुआ कागज है। उसे और कुछ कहना नहीं पड़ा, वे उछलकर उसकी तरफ अपना दाहना हाथ बढ़ाकर चीत्कार कर उठे—ले जा, कहता हूँ, ले जा मेरे सामनेसे ! निकल यहाँसे—

हतबुद्धि नौकर मालिककी हालत देखकर भाग खड़ा हुआ। उसके चले जानेपर उन्होंने लड़कीकी तरफ अग्नि-दृष्टिसे देखते हुए गलेको और भी एक परदा चढ़ाकर कहा—हरामजादा ! लुच्चा बदमाश कहींका ! आइन्दा फिर किसी दिन किसी बहाने मेरे घरमें घुसनेकी कोशिश की, तो पुलिसके सुपुर्द कर दूँगा—यह तुमसे कहे देता हूँ अचला !

अपना नाम सुनकर अचला अपना पीला-सा सूखा चेहरा धीरे-से उठाकर व्यथित म्लान दृष्टिसे पिताके मुँहकी तरफ चुपचाप देखती रह गई।

पिताने कहा—रुपये फैलाकर बापकी आँखोंमें धूल नहीं झोंकी जा सकती, पाखंडी इस बातको याद रखे !

लड़की फिर भी निरुत्तर, चुप रही। परन्तु उसकी मलिन दृष्टि क्रमशः प्रखर होती जा रही थी, इसपर पिताकी दृष्टि नहीं पड़ी। वे तर्जनीको कँपाते हुए कहने लगे—हैण्डनोट फाड़कर बापको रिश्वत नहीं दी जा सकती, इस बातको मैं उसे समझा दूँगा तब छोड़ूँगा। इस मकानको मैं स्वयं बेचकर, उसका कर्ज चुकाकर, जहाँ खुशी होगी, चला जाऊँगा,—मुझे कोई नहीं रोक सकेगा, सो कहे देता हूँ।

अब अचलाने बात की। उसे पहले तो कुछ संकोच जरूर हुआ, पर बादमें वह स्थिर और अविचलित कंठसे बोली—कर्ज न चुकाकर मकान मेरे लिए छोड़ जाओ, क्या मैं यही चाहती हूँ बापूजी ? तुम न करते, तो यह काम मुझे ही करना पड़ता।

केदार बाबूने और भी ज्यादा उत्तेजित होकर जवाब दिया—तुम लोगोंने जैसा किया है, उससे मैं भद्र-समाजमें मुँह नहीं दिखा सकता, सो तुम जानती हो ?

अचलाने उसी तरह शान्त दृढ़ स्वरमें जवाब दिया—नहीं, मैं नहीं जानती। मैं अगर ऐसा कोई काम करती बापूजी, जिसके लिए तुम मुँह नहीं दिखा सकते, तो सबसे पहले मेरा मुँह ही तुम लोगोंमेंसे कोई नहीं देख पाता। उस देशमें और चाहे जिस चीजकी कमी हो, पर डूब मरने लायक पानीकी कमी नहीं थी।—

कहते कहते रुलाईके मारे उसका गला रुँध आया; बोली——कलसे जैसा अपमान तुम मेरा कर रहे हो, सिर्फ झूठ होनेसे ही मैं उसे सह सकी हूँ, नहीं तो——

यहाँ उसका एकबारगी ही गला रुक गया। वह मुँहपर आँचल दबाकर उबलती हुई रुलाई किसी तरह दबाकर तेजीके साथ कमरेसे बाहर चली गई।

केदार बाबू एकबारगी हतबुद्धि हो गये। क्रोध करनेका, चोट पहुँचानेका, शोक करनेका,——यानी लड़कीका निन्दित आचरण एकमात्र उन्हींके लिए सब तरहके गभीर विषादका कारण हुआ है, ऐसी उनकी धारणा थी; पर दूसरा पक्ष भी अकस्मात् उन्हींके आचरणको अधिकतर गर्हित समझकर उनके मुँहपर तिरस्कार करके तीव्र अभिमानसे रोकर चला जा सकता है, इसकी सम्भावना उनके भीतर स्वप्नमें भी उदित नहीं हुई थी। इसीसे अभिभूतकी भाँति कुछ देर खड़े रहकर वे आहिस्तेसे बैठ गये और माथेपर हाथ फेरते हुए कहने लगे——यह देखो, यह और एक काण्ड हो गया!

इसके बादके आठ-दस दिन पिता-पुत्रीके कैसे कटे, सो सिर्फ अन्तर्यामी ही जानते हैं। अचला किसी भी तरह अपने कमरेमेंसे बाहर नहीं निकली, घरके नौकर-चाकरोंके सामने भी उसके लिए मुँह दिखाना असम्भव-सा हो गया। पिछले कई दिनोंकी तरह आज भी वह रास्तेकी तरफ देखकर दिन काटनेके लिए बरामदेमें आ बैठी।

जाड़ेका दिन था, मध्याह्नके साथ साथ एक म्लान छाया मानो आकाशसे जमीनपर धीरे धीरे झर रही थी और उस मालिन्यके साथ हृदयकी गहरी तलीमें अपने जीवनके किसी एक अज्ञात सम्बन्धका अनुभव करके उसका सम्पूर्ण मन मानो अल्पायु समयकी तरह ही चुपके चुपके अवसन्न होने लगा। उसकी आँखें ठीक कुछ देख रहीं हों, सो भी नहीं; फिर भी, अभ्यासके अनुकूल ऊपर, नीचे और आस-पासकी कोई भी बात उसकी दृष्टिसे छिप नहीं रही थी! इसी तरह एकासनसे बैठे बैठे जब दिन ढलनेमें देर नहीं रही, तब सहसा उसने देखा कि सुरेशकी गाड़ी उसके मकानमें घुस रही है। लहमे-भरमें उसका सारा चेहरा फक पड़ गया, और पुलिस देखकर चोर जिस तरह सिरपर पैरकर भागता है, ठीक उसी तरह वह खिड़कीके पाससे भागकर सीधी खाटपर जाकर पड़ रही।

बीसेक मिनट बाद उसके दरवाजेपर धक्के पड़े; और बाहरसे उसके पिताने स्निग्ध स्वरमें पुकारा——बेटी अचला, जाग रही हो क्या?

परन्तु, अचलाकी तरफसे कोई जवाब न पाकर उन्होंने और भी कोमल कण्ठसे कहा—शाम हो रही है बेटी, उठो। सुरेशकी बुआ तुम्हें लेने आई हैं, महिम सख्त बीमार है।

अचलाके उठकर दरवाजा खोलते ही सुरेशकी बुआने भीतर प्रवेश किया।

अचलाने झुककर उनके पाँव छुए।

केदार बाबूने सबसे पीछे कमरेमें घुसकर खाटके एक किनारे बैठकर लड़कीको सम्बोधित करके कहा—तुम लोगोंके चले आनेके बादसे ही महिमको जोरका बुखार आ गया। सम्भवतः रातको ओस लगनेसे दुश्चिन्ता, परिश्रम और कई कारणोंसे बुखार आ गया होगा।—कहते कहते सुरेशकी बुआको लक्ष्य करके कहा—मारे फिकरके घबरा रहा था कि इन लोगोंको भेजकर फिर उसने कोई खबर क्यों नहीं दी? सुरेश हमारा दीर्घजीवी हो, वह जाकर बुद्धिमानीके साथ अगर उसे यहाँ न लिवा लाता तो क्या होता, सो भगवान ही जानें! कहते कहते स्नेहपूर्ण अनुतापसे वृद्धका गला रुक आया।

अचलाने सिर झुकाये नीरव खड़े खड़े सब सुना; कोई प्रश्न नहीं किया, जरा भी चंचलता नहीं दिखाई।

सुरेशकी बुआने अचलाकी बाँहपर अपना दाहना हाथ रखकर शान्त मृदु कंठसे कहा—डरनेकी कोई बात नहीं बहू, दो ही दिनमें अच्छा हो जायगा।

अचलाने मुँहसे कुछ न कहकर फिरसे झुककर उन्हें प्रणाम किया और अलगनीसे सिर्फ चादर उतारकर चलनेके लिए तैयार हो गई।

ऐसे जाड़ेके वक्त शामको ठंडमें उसे कुछ भी गरम कपड़े न पहनके यों ही खाली पाँव अनभ्यस्त पोशाकमें बाहर जानेके लिए तैयार देख वृद्ध पिताका हृदय पिघल गया; परन्तु सामने खड़ी हुई उस विधवाका पहनावा देखकर फिर उन्हें व्यथा पहुँचानेकी प्रवृत्ति नहीं हुई। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा कि 'चलो बेटी, मैं भी साथ चल रहा हूँ।' और स्लीपर पहनकर वे सबसे आगे सीढ़ीसे नीचे उतर गये।

२३

महिमके प्रति अचलाको सबसे बढ़कर खीझ यह थी कि स्त्री होकर भी वह एक दिनके लिए भी पतिकी दुःख-दुश्चिन्तामें हिस्सा नहीं बँटा सकी थी। इस

बातको लेकर सुरेशने भी बचपनसे लेकर अब तक मित्रके साथ बहुत विवाद किया है, परन्तु कोई फल नहीं हुआ। कंजूसके धनकी तरह महिमने उस चीजकी सारे संसारसे हमेशा ऐसी कठोरतासे रखवाली की है कि दुःख-दुःसमयमें कोई उसे सहायता तो क्या करता, औरोंके लिए इतना भी जानना मुश्किल था कि किस बातका उसे अभाव है और कहाँ उसकी व्यथा है ?

लिहाजा, मकान जब जल गया, तब उस बाप-दादोंसे चले आये हुए घरके भस्मीभूत स्तूपकी तरफ देखकर महिमकी छाती फटने लगी, और यह बात अचला उसका मुँह देखकर ताड़ नहीं सकी। मृणालके वैधव्यसे भी पतिके दुःखकी गहराईका पता लगाना असाध्य था। जिस दिन उसने अपने मुँहसे सुनाया था कि वह उसे नहीं चाहती, उस दिन उस चोटकी गहराईके बारेमें भी वह ऐसे ही अन्धकारमें रही। और साथ ही, वह इतनी निर्बोध भी नहीं है कि सब तरहके दुर्भाग्योंमें भी पतिकी निर्विकार उदासीनताको यथार्थमें सत्य रूपमें स्वीकार करनेमें उसके मनमें किसी तरहका सन्देह ही न झाँका हो। इसीसे उस दिन स्टेशनपर वह अपने पतिके अविचलित शान्त चेहरेकी तरफ बार बार देखकर, रास्ते-भर सिर्फ यही बात सोचती आई थी कि सहिष्णुताके इस झूठे नकाबके भीतर उसके मुँहकी सचमुचकी शकल न जाने कैसी होगी !

आज उसकी बीमारीकी खबरको हलकी और स्वाभाविक घटनाका रूप देनेके लिए केदार बाबूने जब स्वाभाविक स्वरमें कहा था कि उन्हें कुछ आश्चर्य नहीं हुआ, बल्कि इतनी बड़ी दुर्घटनाके बाद उन्हें ऐसी ही किसी बातकी आशंका थी, तब अचलाके अपने हृदयमें जो भाव एक क्षणके लिए भी प्रकट हुआ था, उसे खालिस उत्कंठा भी नहीं कहा जा सकता।

सुरेशकी रबर-टायरकी गाड़ी तेजीसे जा रही थी। बुआजी एक तरफका दरवाजा बन्द करके चुपचाप बैठी थीं, और उनके बगलमें बैठी अचला भी पत्थरकी मूर्तिकी तरह स्थिर बैठी थी। सिर्फ केदार बाबू, किसीकी तरफसे कोई उत्साह न पाते हुए भी, सड़ककी तरफ देखते हुए अनर्गल बके जा रहे थे। सुरेशके समान दयालु, बुद्धिमान् और सुदक्ष लड़का धरतीकी पीठपर दूसरा नहीं है; महिमकी जिदके मारे वे परेशान हो गये हैं; जिस जगह आदमी नहीं, डाक्टर नहीं, वैद्य नहीं, सिर्फ चोर-डाकू और सियार-कुत्तोंका वास है, उस गँवई-गाँवमें जाकर रहनेकी सजा उसे किसी दिन अच्छी तरह भोगनी ही पड़ेगी, इत्यादि संबद्ध असंबद्ध

बातें वे निरन्तर इस नीरव बैठी स्त्रीके कानोंमें बराबर उँड़लते ही जा रहे थे।

इसका कारण भी था। केदार बाबू स्वभावतः ही इतने हलके प्रकृतिके आदमी थे, सो बात नहीं। परन्तु आज उनके हृदयका गूढ आनन्द किसी संयमका शासन नहीं मान रहा था। अपने परम मित्र सुरेशके साथ प्रकट रूपसे झगड़ा हो जाना, अपनी एकमात्र कन्याका नीरव विद्रोह करना, और सबसे बढ़कर अत्यन्त कुत्सित और भद्दे सन्देहका भारी बोझ, जो कई दिनोंसे उनकी छातीपर पत्थरकी तरह जमा बैठा था, आज सुरेशकी बुआके अप्रत्याशित आगमनसे अकस्मात हट गया। महिमकी बीमारीकी खबरको उन्होंने अपने मनमें कोई महत्त्व ही नहीं दिया। अगर उस दिन रातको दैववश ठंड लगकर जरा-कुछ बुखार-सा आ ही गया हो, तो वह कुछ नहीं। सुरेशकी बुआने दो-चार दिनमें अच्छा हो जानेकी आशा दे ही दी है। हो सकता है कि इतना समय भी न लगे, हो सकता है कि कल सबेरे तक ही तबीयत ठीक हो जाय। बीमारीके सम्बन्धमें यही उन्होंने सोच रखा था। किन्तु असल बात यह है कि सुरेश स्वयं जाकर महिमको अपने घर लिवा लाया है और किसी भी बहानेसे उसकी स्त्रीको पास लाकर बिठा देनेके लिए उसने बुआजीको भेजा है। लड़की और जमाईमें कुछ समयसे मनोमालिन्य चला आ रहा है, दासीके मुँहसे सुने हुए इस तथ्यको वे एक बार भी नहीं भूले। इसलिए आज इस सत्यके स्पष्ट हो जानेसे कि सब कुछ उसी दाम्पत्य-कलहका फल है, इस लगातार बकनेमें भी उन्हें अत्यन्त आत्मग्लानिके साथ मालूम होने लगा कि वहाँ पहुँचकर उस सम्पूर्ण निरपराध और भद्र युवकके मुँहकी तरफ वे आँख उठाकर देखेंगे कैसे? परन्तु उनकी कन्याके सारे शरीरपर एक कठिन नीरवता स्थिर होकर विराज रही थी। बीमारी विशेष कुछ नहीं होगी, इस बातको वह भी मन ही मन समझ गई, पर यह नहीं समझ सकी कि सुरेश उन्हें यहाँ पकड़ कैसे ले आये? पतिको इतना तो उसने पहचान ही लिया था।

शाम हो चुकी है। सड़ककी गैस-बत्तियाँ जलने लगी हैं। गाड़ी सुरेशके मकानके फाटकमें घुसी और सहनके पास खड़ी हो गई। केदार बाबू मुँह निकाल-कर सहसा उद्विग्न स्वरसे बोल उठे—दो दो गाड़ियाँ क्यों खड़ी हैं?

साथ ही अचलाकी चकित दृष्टि भी उनपर पड़ी; और लालटेनके उजालेमें उसने स्पष्ट देखा कि सुरेश एक प्रवीण अंग्रेजको सम्मानके साथ गाड़ीपर चढ़ा

रहा है, और पास ही एक दूसरा साहबी पोशाक पहने बंगाली खड़ा है। ये डॉक्टर होंगे, इस बातको दोनोंने ही उसी क्षण समझ लिया।

उनके चले जानेपर इनकी गाड़ी सहनके नीचे खड़ी हुई। सुरेश वहीं खड़ा था; केदार बाबूने चिल्लाकर पूछा—महिम कैसे हैं, सुरेश ? बीमारी क्या है ?

सुरेशने कहा—अच्छा है। आइए।

केदार बाबूने और भी ज्यादा व्यग्र कण्ठसे पूछा—बीमारी क्या है, बताओ तो सही ?

सुरेशने कहा—बीमारीका नाम बतानेसे तो आप समझ नहीं सकेंगे। बुखार है, छातीमें सरदी बैठ गई है। लेकिन आप उतर तो आइए,—इन्हें उतरने दीजिए।

केदार बाबू उतरनेकी जरा भी कोशिश न करके कहने लगे—जरा सरदी बैठ गई है, इसका इलाज तो तुम भी कर सकते थे ! मैं बच्चा नहीं हूँ सुरेश, दो दो डाक्टर कैसे आये ? और अँग्रेज डाक्टरकी ही क्यों जरूरत पड़ी ?—कहते कहते उनका स्वर काँपने लगा।

सुरेशने नजदीक आकर हाथ पकड़के उन्हें उतार लिया; कहा—बुआजी, अचलाको तुम भीतर ले जाओ, मैं अभी आया।

अचलाने किसीसे कुछ न पूछा। उसका चेहरा भी अंधेरेमें किसीको दिखाई नहीं दिया; और उतरते समय उसके पैर पाँवदानपर लड़खड़ाने लगे, इसपर भी किसीका ध्यान नहीं गया। वह जैसे चुपचाप आई थी, उसी तरह चुपके-से उतरकर बुआजीके पीछे पीछे घरके भीतर चली गई।

कई मिनट बाद दरवाजेका भारी परदा हटाकर जब वह रोगीके घरमें घुसी, तब महिम शायद अपने घरके बारेमें कुछ कह रहा था। उन शब्दोंके कानोंमें पड़ते ही उसे समझनेमें देर न लगी कि यह रोगीका अर्थशून्य प्रलाप है और रोग कहाँ तक पहुँच चुका है। क्षण-भरके लिए दीवारके सहारे खड़े होकर उसने अपनेको दृढ़ कर रखा।

जो स्त्री रोगीके सिरहानेके पास बैठी माथेपर बरफकी थैली रख रही थी, उसने निगाह उठाकर अचलाकी तरफ देखा और वह धीरजके साथ उठकर उसे प्रणाम करके सीधी खड़ी हो गई। उसका वैधव्य-वेश था। बाल गरदन तक छँटे हुए थे; और उसके मुँहपर सर्वदाकी समस्त विधवाओंका वैराग्य मानो

निबिड़ रूपसे छा रहा था। म्लान दीपालोकमें पहले तो अचला पहचान ही न सकी कि यह मृणाल है; पर अब आमने-सामने स्थिर होकर खड़े होते ही क्षणभरके लिए दोनोंकी दोनों मानो स्तम्भित हो रहीं; एक बार अचलाका सारा शरीर सिंहरकर हिल उठा; कुछ कहनेके लिए ओठ कुछ काँप उठे, परन्तु, मुँहसे कोई बात नहीं निकली और दूसरे ही क्षण उसकी मूर्च्छित देह छिन्न-लताकी तरह मृणालके पैरोंके पास गिर पड़ी।

होश आनेपर अचलाने आँख खोलकर देखा, वह पिताकी गोदमें सिर रखे कोचपर पड़ी है। एक दासी उसके मुँहपर गुलाब-जलके छींटे दे रही है और पास ही सुरेश खड़ा हुआ पंखेसे धीरे धीरे हवा कर रहा है।

घटना क्या हुई है, इस बातको याद करनेमें उसे कुछ देर लगी। परन्तु याद आते ही वह मारे शरमके मर गई, और जल्दीसे उठके बैठनेकी कोशिश करते ही केदार बाबूने उसे रोकते हुए कहा—जरा विश्राम करो बेटी, अभी उठनेकी जरूरत नहीं।

अचलाने मृदु कंठसे कहा—नहीं बापूजी, मैं ठीक हो गई हूँ। और फिर उठके बैठने लगी तो केदार बाबूने उसे जबरदस्ती पकड़कर उद्वेगके साथ कहा—अभी उठनेकी जरूरत नहीं अचला, बल्कि जरा सोनेकी कोशिश करो।

सुरेशने भी अस्फुट स्वरमें शायद इसी बातका अनुमोदन किया। अचला चुपके-से एक बार उसके मुँहकी तरफ देखकर, जवाबमें सिर्फ पिताका हाथ अलग करके, सीधी उठके खड़ी हो गई और बोली—सोनेके लिए तो यहाँ आई नहीं हूँ बापूजी, मुझे कुछ भी नहीं हुआ, मैं उसीकमरेमें जा रही हूँ। इतना कहकर वह किसीके उत्तरकी प्रतीक्षा न करके बाहर चल दी।

इस घरके कमरे और दरवाजोंको वह भूली नहीं थी। रोगीका कमरा पहचान लेनेमें उसे देर नहीं लगी। उसके कमरेके भीतर पहुँचते ही मृणालने उसको देखकर कहा—तुम आकर जरा यहाँ बैठो भाभी, मैं जरा सन्ध्या कर लूँ। बरफकी थैली खिसक न जाय, जरा खयाल रखना। इतना कहकर अचलाको अपनी जगहपर बिठाकर वह बाहर चली गई।

२४

कठिन सन्निपात-रोगके आराम होनेमें समय लगेगा। फिर भी इतना सभीने

स्पष्टतया समझ लिया था महिम धीरे धीरे आरोग्यकी तरफ बढ़ रहा है और अब उसे कोई खतरा नहीं। उसकी अर्थहीन बकवास और उद्भ्रान्त चितवन,—सब बातें शान्त और स्वाभाविक होती आ रही थीं।

दसेक दिन बाद, एक दिन, तीसरे पहर महिम शान्त भावसे सो रहा था। इस साल सभी जगह जाड़ा कुछ ज्यादा पड़ रहा था। उसपर अभी अभी वर्षा हो गई है। रोगीके पलंगके साथ एक बड़े तख्तको जोड़कर उसपर मजेके बिछौने बिछा दिये गये थे, इसीपर सब अच्छी तरह ओढ़-मोड़कर बैठे थे। सबकी आँखोंसे एक तरहकी निरुद्विग्न तृप्ति प्रकट हो रही थी; सिर्फ बुआजी अन्यत्र काम-काजमें लगी हुई थीं और केदार बाबू अब तक अपने घरसे नहीं आ पाये थे।

सुरेशकी तरफ देखकर मृणाल सहसा हाथ जोड़कर बोली—अब मेरी छुट्टीकी अर्जी मंजूर होनेका हुकम हो जाय सुरेश बाबू, मैं देश जाऊँ। इस जबरदस्त जाड़ेमें मेरी बुढ़िया सास कहीं चल न बसे।

सुरेशने कहा—अब भी क्या उनका जिन्दा रहना जरूरी है? नहीं, उनके लिए आपका जाना नहीं हो सकता।

मृणालने लहमे-भरके लिए मुँह फेर कर शायद एक दीर्घ-निःश्वास दबा लिया। उसके बाद सुरेशकी तरफ देखकर हँसते हुए कहा—सिर्फ आपहीकी बात नहीं सुरेश बाबू, यह प्रश्न मैंने भी बहुत बार किया है। मन भी कहता है कि अब उनका चला जाना ही अच्छा है। मगर, मारने-जिलानेके जो मालिक हैं, उनको तो इस बातका खयाल ही नहीं है;—होता तो शायद संसारमें आदमीको बहुतसे दुःख-कष्टोंसे छुटकारा मिल जाता।

अचला अब तक चुप ही थी। मृणालकी बातसे शायद उसके पतिकी मृत्युकी याद करके ही उसने कहा—इसके मानी ये हैं कि जो अन्तर्यामी हैं, वे जानते हैं कि आदमी सैकड़ों दुःखोंमें भी अपनी मृत्यु नहीं चाहता।

मृणालके चेहरेपर एक छिपी हुई वेदनाका चिह्न दिखाई दिया। उसने सिर हिलाकर कहा—नहीं भाभी, यह बात नहीं। ऐसा समय सचमुच ही आता है जब आदमी वास्तवमें मौत चाहता है। उस दिनकी बात है, बहुत रात बीते अचानक आँख खुल जानेपर देखा कि सासूजी बिस्तरपर नहीं हैं। झटपट उठकर बाहर जाके देखा कि ठाकुरद्वारेका दरवाजा जरा-सा खुला है। चुपकेसे पास जाकर खड़ी हो गई। देखा कि वे गलेमें आँचल डाले ठाकुरजीके आगे हाथ जोड़के

मौतकी भीख माँग रही हैं। कह रही हैं,—भगवान, अगर एक दिन भी मैंने मन-वचन-कायसे तुम्हारी सेवा की हो तो आज मेरी लज्जा दूर करो। मैं मुक्ति नहीं चाहती, स्वर्ग नहीं चाहती, सिर्फ इतना चाहती हूँ भगवान, कि तुम अब मुझे शरमिन्दा न करो,—अब मुझसे अपना यह मुँह बहूको नहीं दिखाया जाता।—कहते कहते मृणालके झर-झर आँसू गिरने लगे।

इस प्रार्थनामें मातृ-हृदयकी कितनी सुगभीर वेदना निहित थी, इस बातका अनुभव करनेमें किसीको देर न लगी। सुरेशकी दोनों आँखोंमें आँसू भर आये। किसीके मामूली दुःखसे भी वह विगलित हो जाता था; आज इस सन्तान-हीन वृद्धा जननीकी मर्मान्तक दुःखकी कहानीसे उसके हृदयमें आँधी-सी उठ खड़ी हुई। वह कुछ देर तक स्तब्ध भावसे जमीनकी तरफ देखता रहा और अचानक मुँह उठाकर उच्छ्वसित कण्ठसे कहने लगा—अच्छा, जाओ दीदी, अपनी बुढ़िया सासकी सेवा करके कर्तव्य-पालन करो जाकर, अब मैं तुम्हें नहीं रोकूँगा। इस अभागे देशके लिए आज भी अगर कोई गौरव करनेकी चीज मौजूद है तो वह तुम्हारे जैसी स्त्रियाँ। ऐसी चीज शायद और कोई भी देश नहीं दिखा सकता! कहकर उसने जिज्ञासु दृष्टिसे एक बार अचलाकी ओर देखा। परन्तु वह नीरव बैठी जंगलेके बाहर एक धूसर मेघकी तरफ देख रही थी, इसलिए उसकी तरफसे कोई जवाब नहीं मिला।

मगर, मृणाल इससे शरमा गई, और बातचीतके सिलसिलेको दूसरी तरफ घुमा देनेके लिए झटपट, जबरदस्ती जरा हँसकर, बोली—नहीं, सो थोड़े ही है! आप सब देशोंकी खबर जानते हैं? अच्छा, भइयासे आप छोटे हैं कि बड़े?

इस अद्भुत प्रश्नसे सुरेशको हँसी आ गई, बोला—क्यों, बताइए तो?

मृणालने रोकते हुए कहा—नहीं, मुझे अबसे 'आप' न कहिए। मैं दीदी होनेपर भी जब कि उमरमें छोटी हूँ, तब आप—बड़े भइया, छोटे भइया, या मझले भइया,—बताइए बताइए, जल्दी बताइए, क्या हैं?

अचला आकाशसे दृष्टि हटाकर अब इधर देखने लगी। बहुत दिन पहले, जिस दिन इस स्त्रीने ऐसे ही जल्दीसे 'भाभी' और 'जीजी' का रिश्ता कायम कर लिया था, उस दिनकी उसे याद आ गई। परन्तु, मृणालके चरित्रकी यह दिशा सुरेशको मालूम नहीं थी, इसलिए उसने इस विचित्र रमणीके मुँहकी तरफ देखकर कौतुक-पूर्ण हँसी हँसते हुए कहा—छोटे-भइया! छोटे-भइया! तुम्हारे

भइयासे मैं करीब डेढ़ साल छोटा हूँ ।

मृणालने कहा—तो, छोटे-भइया, कृपाकरके एक आदमीका इन्तजाम कर दीजिए, जो मुझे कल सबेरेकी गाड़ीसे पहुँचा आयेगा ।

जानेकी अनुमति खुद सुरेश ही अभी अभी दे चुका था, फिर भी उसने यह नहीं सोचा था कि वह कल सबेरे ही जानेको तैयार हो जायगी ! इसीसे क्षण-भर स्थिर रहकर उसने कुछ गम्भीरताके साथ कहा—और दो दिन क्या नहीं रह सकतीं दीदी ? तुमपर भार देकर महिमकी तरफसे हम लोग निश्चिन्त थे। ऐसी दिन-रात चौबीस घंटे सावधानी रखते, इस तरह सुन्दर ढँगसे सेवा करते, मैंने अस्पतालमें भी कभी किसीको देखा हो, मुझे खयाल नहीं आता । क्यों अचला ?

उत्तरमें अचलाने सिर्फ सिर हिला दिया ।

मृणालने सुरेशके चिन्तित भावको लक्ष्य करके हँसते हुए कहा—आप इसके लिए जरा भी चिन्ता न करें । जिसकी चीज है, उसीके हाथमें सौंपे जाती हूँ,—नहीं तो मैं भी शायद नहीं जा सकती । आपको तो याद होगा, हम लोगोंको कितनी जल्दी चला आना पड़ा था । इस कारण कोई इन्तजाम ही करके न आ सकी । कल मुझे छुट्टी दे दीजिए छोटे-भइया ! फिर जब हुकम करेंगे तभी आ जाऊँगी ।

सुरेश कुछ देर मौन रहकर सहसा बोल बैठा—अच्छा मृणाल, मैं सोचता हूँ। उस देहातमें सिर्फ एक बुढ़िया सासकी सेवा करके और सन्ध्या-पूजा करके तुम्हारा समय कटता कैसे होगा ?

मृणालके चेहरेपर फिर व्यथाकी रेखा चमक गई । परन्तु वह हँसके बोली—समय बितानेका भार तो मेरे ऊपर नहीं है छोटे-भइया । समयकी जिन्होंने सृष्टि की है, वे ही इसकी व्यवस्था करेंगे ।

सुरेशने कहा—अच्छा, यह तो हुआ । मगर तुम्हारी सास तो ज्यादा दिन जीयेंगी नहीं, और महिमको भी डाक्टरके कहे अनुसार आराम होनेपर पश्चिमके किसी स्वास्थ्यकर स्थानमें जाकर रहना पड़ेगा । तब, अकेली तुम वहाँ कैसे रहोगी ?

मृणाल, ऊपरकी तरफ देखकर फिर जरा हँस दी । बोली—सो वे ही जानें ।

अनजानमें सुरेशके मुँहसे एक दीर्घ-निःश्वास निकल गया । मृणालने कहा—आप तो शायद यह सब मानते नहीं ?

"क्या सब ?"

" यही, जैसे भगवान्—"

" नहीं। "

" तो शायद हम लोगोंके लिए तुमने अवज्ञासे गहरी साँस ली है, न ? "

सुरेशने इस प्रश्नका सहसा कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देर अनमना-सा उसके मुँहकी तरफ देखता रहा, और सहसा गरदन हिलाकर कह उठा—नहीं मृणाल, सो बात नहीं। जो किसी अज्ञात भविष्यका भार वैसे ही किसी अज्ञात ईश्वरपर छोड़ देते हैं, वे हम लोगोंकी अपेक्षा अधिक जीतके मार्गसे चलते हैं, ऐसा मैंने बहुत देखा है। मगर, इन सब बातोंको जाने दो बहन, हो सकता है कि इससे मेरे प्रति तुम्हें घृणा पैदा हो जाय।

मृणालने झटपट झुककर सुरेशके पैर छू लिये और सिरसे हाथ छुआकर कहा—अच्छा, रहने दो।

सुरेश आश्चर्यसे दंग रह गया, बोला—यह और क्या हुआ मृणाल ?

" क्या भइया ? "

" कोई बात न चीत, अचानक पैर छू लिये ? "

मृणालने कहा—बड़े भाईके पैर छूनेमें क्या शुभ-घड़ी देखनी पड़ती है ?—कहकर वह हँसती हुई उठ गई।

" अच्छी लड़की है ! " कहकर सस्नेह हँसते हुए सुरेशने अचलाके मुँहकी तरफ देखा तो मारे आश्चर्यके अभिभूत हो गया। उसका सारा चेहरा श्रावणके आकाशकी तरह मानो बदलोंसे घिर आया हो ! परन्तु, विस्मयके धक्केको सम्हालकर इस विषयमें किसी प्रकारके प्रश्नका आभास देनेके पहले ही अचला हतबुद्धि सुरेशको जमीन-आस्मानकी सोचनेका खुला मौका देकर जल्दीसे लगभग मृणालके साथ ही साथ कमरेसे बाहर चली गई।

सुरेश वहीं स्तब्ध बैठा बार बार अपने आपको पूछने लगा—यह कैसे क्या हुआ ? मृणालके पैर छूनेके साथ इसका कैसा गूढ़ सम्बन्ध है, इसका वह अपने भीतरसे ही निश्चित अनुमान करने लगा। परन्तु इसका सम्बन्ध है कहाँ ? क्यों मृणाल अकस्मात उसके पैर छूकर चली गई, और क्यों पलक मारते न मारते अचला इस तरह उदास चेहरेसे बाहर निकल गई ? अपने व्यवहार और बातचीतको आद्यन्त एक एक करके याद करके भी उसे इसका कोई किनारा ढूँढ़े न मिला। और वह यह भी समझ गया कि पास ही पास इतनी बड़ी दो घटनाएँ

व्यर्थ ही नहीं घटीं। लिहाजा, उसके मनमें यह संशय कि उसीकी तरफसे होनेवाला कोई अज्ञात निन्दित आचरण ही इस अनर्थका मूल है, काँटेकी तरह चुभने लगा।

परन्तु मृणालसे इस विषयमें किसी तरहका प्रश्न करना असम्भव है। रात तो उसने किसी कदर कतराकर बिता दी; परन्तु सबेरे एक समय अचलाको एकान्तमें पाकर उसने कहा—तुम्हें एक बातका जवाब देना होगा।

अचलाका चेहरा मारे शरमके सुर्ख हो उठा। उसका प्रश्न क्या है, यह बात अचलासे छिपी नहीं थी। गत रात्रिके उस अद्भुत आचरणकी कोई कैफियत देनी होगी, यह जानकर उसने आरक्त मुखसे कहा—क्या बात है?

सुरेशने आहिस्तेसे कहा—कल मृणाल अचानक मेरे पैर छूकर उठ गई और तुम मुँह फुलाकर गुस्सेमें उठके चल दीं, सो क्या मैंने उसकी सासके मरनेकी बात कही थी इसलिए?

इस अप्रत्याशित प्रश्नसे अचलाको एक रास्ता मिल गया और वह मन ही मन खुश होकर बोली—ऐसा प्रसंग क्या तुम्हें छेड़ना चाहिए था? उस बेचारीके पति नहीं है, सासके मर जानेपर उस बेचारीकी कैसी निःसहाय अवस्था हो जायगी, जरा सोचो तो सही!

सुरेश अत्यन्त क्षुब्ध होकर बोला—मुझसे बड़ा अन्याय हो गया है। मगर, वे ज्यादा दिन न जीयेंगी, सो तो मृणाल खुद भी समझती है। और दूसरे, वह निःसहाय भी क्यों होने लगी?

अचलाने जवाब दिया—यह बात हम लोगोंने तो उससे एक बार भी नहीं कही। बल्कि तुमने तो और भी उसे कई तरहसे डरा दिया था कि देशमें वह अकेली रहेगी कैसे?

सुरेशने अत्यन्त अनुतप्त होकर पूछा—तो जानेके पहले मुझे क्या उसे साहस देना उचित नहीं है? उसे किसी बातका डर नहीं, यह बात क्या उसे—

कहते ही कहते अकृत्रिम करुणासे उसका गला रुँध आया।

अचला उसके मुँहकी तरफ देखकर हँस दी। इस पराये दुःखमें दयार्द्र सहृदय युवककी सैकड़ों दयाकी कहानियाँ अचलाको याद आ गईं। उसने गरदन हिलाकर कहा—नहीं, तुम्हें साहस देनेकी भी जरूरत नहीं, और न डरानेकी ही जरूरत है। जब वैसा समय आयेगा, तब चुप नहीं रहूँगी।

सुरेश आत्म-विस्मृत हो आवेगमें आकर अकस्मात् उसका हाथ पकड़कर

जोरसे झकझोरते हुए बोल उठा—यही तो तुम्हारी लायकीकी बात है अचला! यही मैं तुमसे चाहता हूँ। कहकर तुरत ही असीम लज्जाके साथ उसका हाथ छोड़कर वह तेजीसे भाग गया।

उसका जो आवेग-उच्छ्वास एक क्षण पहले परार्थताके निर्मल आनन्दसे पैदा हुआ था वह उसके इस तरह लज्जाके साथ भाग जानेसे दूसरे ही क्षण कलुषित और भद्दा होकर दिखाई दिया। अचलाकी छातीका खून विद्युद्वेगसे प्रवाहित हो उठा, माथेपर पसीनेकी बूँदें चमकने लगीं, और सारा शरीर बार-बार सिहर उठा। वह पासकी एक कुरसीपर निर्जीवकी भाँति बैठ गई। कुछ देर बाद उसका वह भाव तो दूर हो गया, परन्तु बीमार पतिकी शय्याके पास अपने स्थानपर बैठनेमें आज सबेरेसे ही उसे डर-सा लगने लगा।

जाते जाते ही मृणालको दो दिनकी देर हो गई। आज जाते समय महिमसे बिदा लेने गई तो उसने देखा कि वह करवट लिये सो रहा है। जो बिदा लेने आई थी, उसने इस झूठी नींदका कारण निश्चित रूपसे जानते हुए भी चुपकेसे कहा—भइयाको अब जगानेकी जरूरत नहीं भाभी, क्यों?

प्रत्युत्तरमें अचलाके ओठोंके किनारे सिर्फ जरा तिरछी हँसी दिखाई दे गई। मृणाल भीतर ही भीतर समझ गई कि इस छलको उसके सिवा और भी एक नारी समझ गई है। उसके विरुद्ध मृणाल अपने मनमें गुप्त ईर्ष्याका भाव रखती है, इस बातको वह महिमसे किसी दिन आभास तक न मिलनेपर भी जानती थी। यह अत्यन्त औरं व्यर्थका द्वेष उसे काँटेकी तरह चुभा करता था। परन्तु फिर भी उस बीमार आदमीकी पवित्र दुर्बलताको विकृत करके देखेगी, ऐसा उसने नहीं सोचा था। क्षण-भरके लिए उसका मन जल-सा उठा, परन्तु उसी वक्त अपनेको सम्हाल कर उसने अचलासे कानमें कहा—तुम तो सब जानती हो भाभी, मेरी तरफसे तुम इनसे माफी माँग लेना। कहना, अच्छे होकर फिर जब देश लौटेंगे, तब अगर मैं जिन्दा रही तो भेंट होगी।

नीचे केदार बाबू बैठे थे। मृणाल प्रणाम करके खड़ी हुई तो उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। इस थोड़ेसे समयमें और सबोंकी तरह उनको भी इस विधवा लड़कीसे स्नेह हो गया था। अपने कुरतेकी बाँहसे आँसू पोंछते हुए वे बोले—बेटी, तुम्हारे ही कल्याणसे महिमको हम लोगोंने यमके मुँहसे वापस पाया है। जब कभी तुम्हारा मन हो, जब कभी तुम्हारी घूमनेकी तबीयत हो, अपने इस बूढ़े

बच्चेको मत भूलना मा! मेरा घर तुम्हारे लिए दिन-रात खुला रहेगा बेटी!

अचला पास ही चुपचाप खड़ी थी; मृणालने उसकी तरफ इशारा करके हँसते चेहरेसे कहा—यमके बापकी क्या ताकत है बापूजी, जो इनके हाथसे भइयाको ले जाय! जिस दिन इन जीजीके हाथ मैंने उन्हें सौंप दिया, उसी दिन मेरा तो काम खतम हो चुका।

केदार बाबूके चेहरेका भाव जरा कुछ गम्भीर हो गया, फिर उन्होंने कुछ नहीं कहा।

दो जने बूढ़े-से कर्मचारी और एक दासी मृणालको देश पहुँचा देनेके लिए तैयार बैठे थे। सबको लेकर घोड़ा-गाड़ी फाटकसे निकलकर स्टेशनकी तरफ चल दी। केदार बाबूके हृदयसे एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ा। उन्होंने धीरेसे कहा—अद्भुत और अपूर्व लड़की है!

सुरेशका मन भी शायद ऐसे ही भावसे भर रहा था। वह किसी तरफ ध्यान न देकर अनुमोदन करता हुआ आवेगके साथ बोल उठा—ऐसी लड़की मैंने कभी कहीं देखा ही नहीं, केदारबाबू! न ऐसी मीठी बात ही कभी कहीं सुनी, और न ऐसा निपुण काम-धन्धा ही कहीं देखा। कोई भी काम दो, ऐसी अपूर्व दक्षताके साथ कर देती है कि मालूम होगा जैसे इसी काममें जिन्दगी बिताई हो। और आश्चर्य यह कि कभी गाँव से बाहर गई नहीं।

केदार बाबूके इसे सच समझते थे, फिर भी आश्चर्यके साथ बोले—क्या कहते हो?

सुरेशने कहा—बात वास्तवमें ठीक है। उसकी तरफ देख देखके कभी कभी मुझे ऐसा लगता था कि जन्मान्तरके संस्कारोंको जो बात प्रसिद्ध है, शायद सच न हो।—कहकर वह हँसने लगा।

परलोक-सम्बन्धी जिक्र छिड़ जानेसे केदार बाबू चिन्तायुक्त चेहरेसे कुछ देर चुप रहकर सहसा बोल उठे—सो चाहे जो बात हो, इधर कई दिनोंसे उसे देख-देखके मुझे निश्चयसे विश्वास हो गया है कि यह लड़की स्त्रियोंमें अमूल्य रत्न है। इसको जिन्दगी-भर इस तरह जीवन्मृत बनाये रखना सिर्फ पाप नहीं, बल्कि महापाप है। यह मेरी लड़की होती, तो मैं किसी भी हालतमें निश्चेष्ट न रह सकता।

सुरेशने विस्मित होकर पूछा—क्या करते?

वृद्ध उद्दीप्त स्वरमें कहने लगे—फिरसे ब्याह कर देता। एक बूढ़ेके साथ

ब्याह करके इस उन्नीस-बीस सालकी उमरमें जिन्होंने उसे संन्यासिनी सजाया है, वे उसके बन्धु नहीं, शत्रु हैं। शत्रुके कामको मैं किसी भी हालतमें न्याय-संगत स्वीकार नहीं करता।

जरा मौन रहकर फिर कहने लगे—इसके सिवा उसके पतिके व्यवहारको ही एक बार याद कर देखो न सुरेश ! दो दो स्त्रियाँ मर जानेके बाद भी जब वह पचास सालकी उमरमें ऐसी लड़कीसे तीसरा ब्याह करने राजी हुआ, तब क्या उस पाखण्डीने अपने सुख-सुभीतेके सिवा स्त्रीके भविष्यकी ओर भी जरा आँख उठाकर देखा था ? जरा सोचो तो सही !

सुरेशको निरुत्तर देखकर केदार बाबू और भी अधिक उत्तेजित हो उठे। बोले—नहीं सुरेश, मैं विधवा-विवाहकी अच्छाई-बुराईपर बहस नहीं कर रहा। परन्तु इस क्षेत्रमें तुम्हारा साराका सारा हिन्दू-समाज चिल्ला चिल्ला कर मर जाय, तो भी मैं यह नहीं मानूँगा कि यही व्यवस्था उस दुधमुँही बच्चीके लिए चरम और श्रेय है। उसके पास ऐसी एक रत्ती-सी भी चीज नहीं जिसका मुँह देखकर वह एक भी दिन काट सके। सारे जीवनको क्या तुम लोगोंने खेलकी चीज समझ रक्खा है सुरेश, कि 'ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य' कहके चिल्लाते रहनेसे ही सारी दुनिया उसके लिए रात ही रातमें ऋषिका तपोवन हो जायगा ! लड़कीके कपड़ोंकी तरफ देखता हूँ, तो मेरा कलेजा फटने लगता है।

सुरशने जवाब नहीं दिया, और न मुँह उठाकर देखा ही; किन्तु कनखियोंसे उसने देखा कि चौखटके सहारे जहाँ अचला अब तक मूर्तिकी तरह खड़ी थी, वहाँ अब वह नहीं है। कब चुपकेसे भीतर चली गई, कुछ पता ही नहीं।

मृणालके चले जानेके बाद अचला जब कभी सुरेशके मुँहकी तरफ देखती तब उसे मालूम होता कि वह अन्यमनस्क-सा है, और किसी बातके शोकने उसे निरन्तर शुष्क कर दिया है।

दो दिन बाद, एक दिन तीसरे पहर सुरेश नीचेके बरामदेमें एक किनारे घाममें आराम-कुरसीपर पड़ा कोई एक किताब पढ़ रहा था। पैरोंकी आहटसे चौंककर उसने देखा कि उसीके लिए चाय लिए हुए अचला आ रही है। ऐसी घटना पहले कभी नहीं हुई; इससे वह आश्चर्यान्वित होकर सतर होके बैठ गया और बोला—बेहरा कहाँ गया ? आज तुम कैसे ?

अचलाने प्रश्नका उत्तर न देकर एक छोटी तिपाई नजदीक खींच लाकर

उसपर चायका प्याला रख दिया और एक कुरसी खींचकर खुद भी बैठ गई।

इस नये आचरणसे उससे दूसरा प्रश्न करनेका सुरेशको साहस नहीं हुआ। सिर्फ उसने चायका प्याला चुपकेसे उठा लिया।

कुछ देर स्तब्ध भावसे बैठी रहनेके बाद अचलाने मृदु कंठसे पूछा—अच्छा सुरेश बाबू, आप क्या विधवा-विवाहको अच्छा नहीं समझते ?

सुरेशने चायके प्यालेसे मुँह बगैर हटाये ही जवाब दिया—समझता हूँ। इसका कारण, कुसंस्कार आज भी मेरा इतना दूर नहीं पहुँचा है।

अचलाने अपनेको चिन्ता करनेका जरा भी मौका न देते हुए कहा—तब तो मृणाल जैसी लड़कीसे आपको ब्याह करनेमें रंचमात्र भी आपत्ति न करनी चाहिए।

सुरेश चायका प्याला हाथमें लिये कठिन होकर बैठ गया और बोला—इसके मानी ?

अचलाके मुँह या कण्ठ-स्वरसे किसी तरहकी उत्तेजना प्रकट नहीं हुई। अत्यन्त सहज भावसे बोली—आपके समक्ष मैं असंख्य ऋणोंसे ऋणी हूँ। इसके सिवा मैं आपकी हिताकांक्षिणी भी हूँ। आपको मैं स्वस्थ स्वाभाविक गृहस्थके रूपमें देखना चाहती हूँ। एक दिन आप ब्याह करनेको तैयार थे; आज मेरा विशेष अनुरोध है कि आप इसे स्वीकार करें।

एक साँसमें कण्ठस्थ पाठकी तरह इतनी बातें कहकर अचला मानो हाँफने लगी।

सुरेश पत्थरकी मूर्तिकी तरह बहुत देर तक स्थिर बैठा रहकर अन्तमें बोला—इससे तुम क्या सचमुच सुखी होओगी ?

अचलाने कहा—हाँ।

"वह राजी होगी ?"

"मेरा तो ऐसा ही विश्वास है।"

सुरेश जरा म्लान हँसी हँसकर बोला—मेरा विश्वास ऐसा नहीं। किताबोंमें पढ़ा होगा कि सहमरणके जमानेमें कोई कोई सती हँसते हँसते जल मरती थी। मृणाल उसी जातिकी है। इन्हें मुँहकी बातोंसे राजी कराना तो बहुत दूरकी बात है, एक एक करके सब हाथ-पैर काट डालनेपर भी दुबारा ब्याह करनेको राजी नहीं कराया जा सकता। इस असाध्य-साधनकी कोशिश करके मुझे उसकी दृष्टिमें मिट्टी न कर देना अचला। मुझे उसने 'भइया' कहके सम्बोधित किया है; उसकी दृष्टिमें मैं अपने इस सम्मानको कायम रखना चाहता हूँ।

देखते देखते अचलाका सारा चेहरा क्रोधसे काला हो उठा। सुरेशकी बात खतम होते ही वह कठिन मृदु-कण्ठसे कहने लगी—संसारमें सिर्फ मृणाल ही एकमात्र सती नहीं, सुरेश बाबू! ऐसी भी सती मौजूद हैं जो मन ही मन एक बार किसीको स्वामित्वमें वर लेती हैं तो फिर हजारों लाखों प्रलोभन दिखानेपर भी उन्हें डिगाया नहीं जा सकता। इनकी बात आपने छापेकी किताबोंमें न भी पढ़ी हों, तो भी इन्हें जान रखियेगा सुरेश बाबू!—इतना कहकर, स्तम्भित और अभिभूत सुरेशकी तरफ बगैर देखे ही वह गर्विता रमणी दृढ़तासे कदम रखती हुई वहाँसे उठके चली गई।

२५

एककी उच्छ्वसित अकपट प्रशंसामें दूसरेके लिए कितना बड़ा कठोर आघात और अपमान छिपा रह सकता है, इस बातको वक्ता-श्रोता दोनोंमेंसे कोई भी शायद क्षण-भर पहले नहीं जानता था। सुरेश हाथका प्याला हाथमें ही लिए हुए जड़वत बैठा रहा, और अचला अपने कमरेमें घुसकर चुपकेसे दरवाजा बन्द करके तकियेपर मुँह दबाये मर्मान्तक क्रन्दनके दुर्निवार वेगको रोकनेमें लग गई क्योंकि पास ही महिमका कमरा है, कहीं जरासा भी शब्द उसे सुनाई न दे जाय। वास्तवमें अन्तर्यामीके सिवा इस रोनेके इतिहासको और कोई भी न जान सका।

परन्तु, उसने स्वयं अपने इस गंभीर दुःखमें एक नया तत्त्व प्राप्त कर लिया। इस नारी-जीवनमें सतीत्व कितनी बड़ी सम्पत्ति है, इतने दिनों बाद उसकी परिपूर्ण महिमा आज ही उसकी आँखोंके सामने उद्घाटित होकर दिखाई दी। उस दिन सुरेशके संस्पर्श और पिताकी सन्दिग्ध दृष्टिको अन्यायपूर्ण उपद्रव समझकर वह यत्परोनास्ति क्रुद्ध और व्यथित हुई थी, मगर आज अकस्मात् उस धर्महीन परस्त्री-लोलुप सुरेशको भी जब उसने सतीत्वके पादपद्ममें इस तरह सिर टेककर प्रणाम करते देखा, तो अपना वास्तविक स्थान भी उससे छिपा न रहा।

और भी एक बात है। सुस्पष्ट वाक्यमें कितनी विशाल शक्ति है, यह सत्य भी आज उसे पहले-पहल मालूम हुआ। वह शिक्षिता स्त्री है। यह बात उससे अविदित नहीं थी कि पतिके प्रति मन-वचन-कायसे निष्ठा होना ही सतीत्व है। यह भी अच्छी तरह जानती थी कि सिर्फ देह या मन दोनोंमेंसे कोई भी अकेला

सम्पूर्ण नहीं है। फिर भी मन जब कि उसका विचलित हुआ है,—पतिको नहीं चाहता, और जीभने जब कि इस बातको कहनेमें संकोच नहीं किया, तब भी कभी किसी दिन उसने अपने को क्षुद्र नहीं समझा। परन्तु आज, सुरेशने जब उसके मुँहकी स्पष्ट बात सुने बिना ही उसके नामके साथ असती शब्द लगाना चाहा, तभी उसकी सम्पूर्ण अन्तरात्मा मानो एक हृदय-विरादक वेदनाके अतिस्वरमें चीत्कार करके रो उठी।

इसके मानी यह नहीं कि मृणालके प्रति उसकी श्रद्धा बढ़ गई हो; बल्कि वह तो बार बार अपने आप इस बातकी प्रतिज्ञा करने लगी कि इस स्त्रीके प्रसंगसे उसे जो आज चैतन्य हुआ है उसे वह जीवनमें कभी न भूलेगी।

बाहर पिताकी लाठीकी आवाज और उसके पीछे सुरेशके पैरोंकी आहट उसे सुनाई दी। समझ गई कि वे महिमको देखने जा रहे हैं। इसके कुछ ही देर बाद पिताकी बुलाहट सुनकर वह अच्छी तरह आँचल से मुँह और आँखें पोंछकर, दरवाजा खोलके, महिमवाले कमरेमें पहुँच गई।

केदार बाबू उसके मुँहके तरफ देखका व्यस्त-भावसे बोले—आज बात क्य है? दो बजे शोरवा देना चाहिए था, सो चार बज रहे हैं? यह क्या है, आँखें ऐसी भारी क्यों हो रही हैं? सो रही थीं क्या?

अचला कुछ उत्तर न देकर तेजीसे बाहर चली गई। रोगीको शोरबी दिये जानेकी व्यवस्था होनेके बादसे यह काम मृणाल ही किया करती थी। नौकर चूल्हेपर चढ़ा देता था, और वह अन्दाज करके ठीक समयपर उतार लेती थी। उसके चले जानेपर इसका भार अचलापर ही पड़ा था। आज उसे इस बातकी बिलकुल याद ही नहीं रही। वह दौड़ी दौड़ी पहुँची, देखा कि आग बहुत देर हुई बुझ चुकी है और सबका सब जलके खाक हो गया है।

बहुत देर तक वहीं स्तब्ध खड़ी रहकर जब वह वापस आई, तब केदार बाबूने इस बातको सुनकर अचलासे कुछ न कहकर सुरेशको लक्ष्य करके कठोरताके साथ कहा—मैंने तो तुमसे तभी कह दिया था सुरेश, बिना एक अच्छी नर्स रखे महिमको नहीं बचा सकोगे। अपनी लड़कीको जितना मैं जानता हूँ, उससे क्या तुम लोग ज्यादा जानते हो!

सुरेश निरुत्तर बैठा रहा। परन्तु महिम जो इतनी देरसे चुपचाप स्त्रीके लज्जित

म्लान चेहरेकी तरफ देख रहा था, इस बातको किसीने नहीं देखा। अब उसने धीरे धीरे कहा—नर्सके हाथसे मुझसे दवा तक न खाई जायगी सुरेश। बल्कि इन्हें सहायताके लिए कोई आदमी दो। कल-परसों दो दो रात इन्हें जगना है। दिनमें भी थोड़ा-बहुत विश्रामका मौका न मिले तो मशीनके आदमीसे भी काम नहीं हो सकता भाई !

बात अक्षरशः सत्य न होनेपर भी झूठ नहीं थी। सुरेशने खुश होकर सिर उठाया, और केदार बाबू अपने रूढ़ वचनोंसे लज्जित होकर कोई कोमल बात कहना ही चाहते थे कि इतनेमें अचला कमरेसे बाहर चली गई।

रातको उसे बहुत बार इच्छा हुई कि रुग्ण पतिसे अपने अनेक अपराधोंके लिए रोकर क्षमाकी भीख माँगकर एक बार पूछे कि मुझ जैसी पापिष्ठाको तिरस्कारसे बचानेकी उन्हें क्या गरज पड़ी थी? परन्तु जबरदस्त शरमके मारे उसके मुँहसे यह बात निकली ही नहीं।

सुरेश प्रतिदिन बहुत रात बीते एक बार महिमके कमरेमें आकर सब जरूरी कामोंका इन्तजाम करके सोने जाता था। मृणालकी मौजूदगीमें वह करीब करीब रात-भर ही आता-जाता रहता था, और यह आवश्यक भी था; परन्तु इधर कई दिनोंसे देखनेमें आया कि वह सहजमें घरमें नहीं घुसता। जरूरत पड़नेपर दासीको भेजकर खबर मँगा लेता है, सिर्फ शामके पहले थोड़ी देरके लिए एक बार खुद आकर खबर-सुध ले जाता है। उसके इस नये आचरणपर सबसे पहले अचलाकी ही नजर पड़ी थी; परन्तु इस विषयमें कोई साधारण मन्तव्य प्रकट करना भी उसके लिए सम्भव नहीं था, इसीसे वह चुप रहती थी। परन्तु उस दिन महिमने खुद जब इसका जिक्र किया, तब उसे कहना ही पड़ा कि आजकल वे अधिकांश समय घर भी नहीं रहते और इसका कारण क्या है, सो भी उसे नहीं मालूम। महिमने चुपचाप सुन लिया, किसी तरहकी राय नहीं जाहिर की।

दूसरे दिन सबेरे अचला नीचे उतर रही थी और सुरेश भी किसी कामसे सीढ़ीसे ऊपर चढ़ रहा था; मुँह उठाकर अचलाको देखते ही वह हटके खड़ा हो गया। अब अचलाको इसमें कोई सन्देह न रहा कि वह उसीको बचाकर चल रहा है, और, किसी दिन उसने जो बात सम्पूर्ण मनसे चाही थी, आज उसका वही मन सुरेशके आचरणकी वेदनासे पीडित हो उठा।

२६

अचलाके समस्त काम-काज और उठने-बैठनेमें भी हृदयके निभृत कोनेमें जो बात प्रतिक्षण जलन पैदा करने लगी, वह यह कि सुरेशके मनके अन्दर एक जबरदस्त परिवर्तन काम कर रहा है जिसके साथ उसका अपना कोई सम्बन्ध नहीं। जो उद्दाम प्रेम एक दिन उसीके द्वारा पैदा होकर इतना बढ़ गया है, वह आज जीर्ण आश्रयकी तरह उसे छोड़कर अन्यत्र चला गया है। अपने आपको वह हजारों तिरस्कार और हजारों बुरी-भली कहकर लाञ्छित करने लगी; मगर फिर भी इस बिदाईकी वेदनाको आज वह किसी तरह अपने मनसे दूर न कर सकी। यहाँ तक कि कभी-कभी विकट भयसे सर्वाङ्ग रोमांचित होकर यह सन्देह झाँकी देने लगा कि उसने भी अनजानमें सुरेशको गुप्त रूपसे प्रेम किया है या नहीं! हर दफे वह अपनी इस आशंकाको असंगत और अमूलक समझकर हँसीमें उड़ा देने लगी; अपने आपको व्यंग्य करके कहने लगी—इस असम्भवके सम्भव होनेसे पहले ही वह गलेमें फाँसी लगाके मर जायगी; फिर भी छायाकी भाँति यह बात मानो उसके पीछे लगी ही रही, घूमते-फिरते मानो वह इसे आँखोंसे देखने लगी, और शायद इस बिभीषिकासे आत्मरक्षा करनेके लिए ही वह नहाने-खानेके समयके सिवा दिन-रातमें एक क्षण भी पतिके पाससे अलग रहनेका साहस नहीं करती। बगलका जो कमरा अचलाके लिए निर्दिष्ट था, कई दिनसे उसमें घुसनेकी उसे प्रवृत्ति नहीं हुई। इस तरहसे कई दिन बीत गये।

महिम लगभग स्वस्थ हो गया है। शीघ्र ही चेञ्जके लिए जबलपुर जानेकी बात चल रही है। उस दिन सबेरेके वक्त अचला जमीनपर बैठी स्टोव्हपर पतिके लिए दूध गरम कर रही थी, दूध बार बार उफन रहा था, किसी तरफ देखनेकी उसे फुरसत जरा भी नहीं थीं; महिम अब तक उसीकी तरफ एकटक देख रहा था, यह बात उसे नहीं मालूम थी। सहसा पतिका दीर्घ निःश्वास उसके कानमें पड़ते ही उसने मुँह उठाकार एक बार उधर देखा और फिर अपने काममें लग गई।

महिम किसी दिन ज्यादा बात नहीं करता; परन्तु आज वह सहसा गहरी साँस लेकर बोल उठा—वास्तव में अचला, बड़े दुःखके बिना कभी किसी बड़ी चीजको प्राप्त नहीं किया जा सकता। मेरा मकान फिरसे बन जायगा, रोग भी किसी दिन अच्छा हो जायगा; परन्तु, इससे जो मुझे अमूल्य चीज प्राप्त हुई,

सो तुम हो। आजकल मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि तुम्हारे बिना मेरा एक दिन भी नहीं कट सकता।

अचला चुपचाप गरम दूध कटोरेमें डालकर ठंडा करने लगी। कुछ जबाब नहीं दिया। महिम जरा ठहरकर फिर कहने लगा—मृणाल, सुरेश,—इन लोगोंने मेरी सेवा कुछ कम नहीं की, मगर मालूम नहीं क्यों, जब कभी होश आता है तभी न जाने कैसी बेचैनी मालूम होती रहती थी। बार बार यही खयाल आता था कि इन लोगोंको न-जाने कितनी तकलीफ, कितनी अविधा होती होगी,—इनका ऋण मैं इस जीवनमें कैसे चुकाऊँगा? लेकिन, भगवानके हाथका जोड़ा हुआ यह ऐसा सम्बन्ध है कि तुम्हारे विषयमें कभी ऐसा खयाल नहीं होता कि इस सेवाका ऋण भी मुझे किसी दिन चुकाना होगा। मुझे बचा लेना जैसे तुम्हारी ही गरज हो। इतना कह कर महिम जरा हँस दिया।

अचला गरदन झुकाये दूध फेंटती रही, कुछ बोली नहीं।

महिमने कहा—और कितना ठण्डा करोगी, दो न?

फिर भी अचलाने कोई जवाब नहीं दिया। पूर्ववत् सिर झुकाये बैठी रही। पहले महिम जरा विस्मित हुआ, परन्तु दूसरे ही क्षण समझ गया कि उससे आँसू छिपानेके लिए ही वह इस तरह नीचेको मुँह किये स्थिर बैठी है।

सुरेश अब इस कमरेमें ज्यादा क्यों नहीं आता, इसका कारण निश्चित रूपसे न समझनेपर भी महिमने कुछ अनुमान ही न किया हो, सो बात नहीं। इससे, क्षोभ-मिश्रित एक तरहका आनन्दका भाव ही उसके मनमें था। कारण, वह समझता था कि अचला अब सावधान हो गई है, और इस डरसे कि एकान्तमें अचानक कहीं सुरेशसे भेंट न हो जाय, वह उसका कमरा छोड़कर अन्यत्र नहीं जाना चाहती। इसीसे आज दिन-भरसे उसका मन मानो वसन्तकी हवामें उड़ा उड़ा फिर रहा था। उसकी खाटसे कुछ दूरीपर एक आराम-कुरसी पड़ी थी। उस दिन बहुत रात तक अचला उसपर बैठी कोई पुस्तक पढ़ रही थी, और थकावट आ जानेसे शेष रात्रिमें उसीपर सो गई थी। दूसरे दिन सबेरे महिमके बुलानेपर वह भड़भड़ाकर उठ बैठी, और खिड़की खोलकर देखा कि अबेर हो गई है।

महिम किसी कामके लिए कहते कहते सहसा रुक गया, और अचलाका आपाद-मस्तक बार बार देखकर विस्मयके साथ बोला—तुम्हारा अपना दुशाला क्या हुआ?

अचलाने उससे भी ज्यादा विस्मित होकर अपनी तरफ देखा: अभी अभी जागकर वह जल्दीमें जिसे ओढ़कर उठ आई है, वह सुरेशका दुशाला है। पतिके प्रश्नने मानो उसे मार दिया। मारे शरम और व्यथाके उसका चेहरा फक पड़ गया; मगर, यह हुआ कैसे, उसकी कुछ समझहीमें न आया। उसे याद आया कि पिछली रातको सोनेके पहले वह अपने दुशालेको तहियाकर पैरके नीचे डाल सिर्फ साड़ीका आँचल ओढ़े पढ़ने बैठी थी। सोते हुए बीच-बीचमें उसे खूब जाड़ा लग रहा था, यह भी उसे याद पड़ता है; उसके बाद जागनेपर उसे यह दिखाई दिया।

परन्तु स्त्रीके अत्यन्त लज्जित उदास चेहरेकी तरफ देखकर महिम स्नेहके साथ सकौतुक हँस दिया। बोला—इसमें शरमानेकी कौनसी बात है अचला? नौकरने ही शायद उलट-पुलटकर तुम्हारा दुशाला वहाँ और उसका यहाँ रख दिया हो। या, सुरेश खुद ही शायद कल शामको यहाँ भूल गया है,—रातको पहचान न सकनेसे तुमने ओढ़ लिया होगा। नौकर बुलाकर बदल लानेके लिए कह दो।

"कहे देती हूँ।" कहकर अचला दुशाला हाथमें लिए बाहर चली गई और बगलके कमरेमें जाकर जब थकी-माँदीसी बैठ गई, तब उसकी समझमें आनेमें कुछ बाकी न रहा। बहुत रात बीते सुरेश दबे-पाँव उस कमरेमें आया है और जाड़ेमें उसे इस तरह सोते देख, अपना दुशाला उस सोती हुईको स्नेह और जतनके साथ उढ़ाकर चुपकेसे चला गया है, इसमें उसे रंचमात्र भी सन्देह न रहा। वह आँखें मींचकर उस झुकी हुई सतृष्ण दृष्टिको मानो स्पष्ट देखने लगी और रोमांचित हो उठी। उसे मालूम होने लगा कि सिर्फ उसको देखनेके लिए ही, और अच्छी तरह देखनेके लिए, वह इस तरह आया था और शायद हर रातको आता होगा,—किसीको मालूम भी नहीं पड़ पाता।

इस भद्दे आचरणसे उसकी लज्जाकी सीमा न रही; और इसे वह कुत्सित समझकर गर्हित समझकर, अभद्र समझकर हजारों तरहसे अपमानित करने लगी और मन ही मन बारम्बार प्रतिज्ञा करने लगी कि अतिथिके प्रति गृह-स्वामीकी इस चौर्यवृत्तिको वह कभी भी क्षमा न करेगी। मगर फिर भी, यह भी उससे न छिपा रहा कि उसका सम्पूर्ण मन इस आरोपका किसी भी तरह अनुमोदन नहीं कर रहा है। और साथ ही यह भी उसे बिलकुल स्पष्ट दिखाई दिया कि कहीं कोई उसे उठते-बैठतेमें काँटा-सा चुभा रहा है।

केदार बाबूके एक बाल्यबन्धु जबलपुर शहरमें रहते थे। उनके यहाँसे उत्तर आया कि जल-वायु और प्राकृतिक दृश्योंके लिहाजसे यह जगह बहुत अच्छी है। उनका अपना मकान भी काफी बड़ा है; इसलिए, महिमको अगर आना हो, तो, उनके मकानमें आरामसे रहनेकी जगह हो सकती है।

एक दिन सबेरे आकर केदार बाबूने यह समाचार कह सुनाया। और कहा कि माघका महीना जब कि खतम हो चला है और रास्तेकी थोड़ी-बहुत तकलीफ भी महिम सह सकता है, तो अब देर करना ठीक नहीं। युवा-अवस्थामें वे स्वयं एक बार जबलपुर गये थे, तबकी स्मृतियाँ उन्हें याद थीं। वे अत्यन्त उत्साहसे उसका वर्णन करके बोले—जगदीशकी स्त्री अभी तक जीवित हैं, वे माकी तरह महिमकी देख-भाल करेंगीं, और साथ साथ मेरा भी घूमना हो जायगा।

महिम चुपचाप इन बातोंको सुनता रहा परन्तु उसने जरा भी उत्साह नहीं दिखाया। इस आग्रह-शून्यताको सिर्फ अचलाहीने ताड़ा। पिताके चले जानेपर उसने अहिस्तेसे पूछा—क्यों, जबलपूर तो अच्छी जगह है, तुम्हारी जानेकी क्या इच्छा नहीं है?

महिमने कहा—तुम लोग सब कोई मुझे जितना स्वस्थ समझ रहे हो, उतना मैं अभी नहीं हो पाया। किसी दिन हो सकूँगा, इसकी भी मुझे आशा नहीं।

अचलाने कहा—इसीलिए तो डाक्टर तुम्हें हवा बदलने भेज रहे हैं। एक बार घूम आओगे तो सब ठीक हो जायगा।

महिम धीरे धीरे गरदन हिला कर कुछ देर चुप बैठा रहा, फिर बोला—क्या जाने! पर, इस हालतमें तो मुझे अपने या दूसरेके ऊपर निर्भर होकर स्वर्ग जानेके भी हिम्मत नहीं पड़ती। अचला, भीतर ही भीतर मैं बहुत ही कमजोर हूँ, बहुत ही अस्वस्थ हूँ। तुम मेरे पास न रहोगी तो शायद मैं ज्यादा दिन जी भी न सकूँगा।—कहते कहते उसका गला भीग आया।

जो मुँह खोलकर कभी भी कुछ नहीं माँगता, कभी अपने दुःख और अभावकी बात व्यक्त नहीं करता, उसीके मुँहकी इस व्याकुल भिक्षाने ठीक मानो शूलकी तरह चुभकर अचलाके हृदयके सम्पूर्ण स्नेहका, सारी करुणाका, सम्पूर्ण माधुर्यका,—जो अब तक बन्द पड़ा था, एक साथ एक क्षणमें मुँह खोल दिया। वह अपनेको रोक न सकनेके कारण कहीं कुछ असम्भव न कर बैठे, इस डरसे आँखोंके आँसू दबाती हुई कमरेसे बाहर भाग गई। महिम हतबुद्धिकी तरह बहुत

देर तक विस्मय और वेदनासे उस खुले हुए दरवाजेकी तरफ एकटक देखता रहा, और फिर धीरे धीरे सो गया।

फिर जब दोनोंमें मुलाकत हुई, तब पति-पत्नीमेंसे किसीने भी उस विषयमें कोई बात नहीं की। दूसरे दिन अचला एक टेलिग्राम हाथमें लिए हुए आई और हँसकर बोली—जगदीश बाबूने टेलिग्रामका जवाब दिया है, उन्होंने अपने मकानके पास हमारे लिए एक छोटा मकान ठीक कर लिया है।

महिम बातको ठीकसे समझ न सका, बोला—इसके मानी?

अचलाने कहा—बापूजीके मित्र होनेसे वे तुम्हारे लिए अपने मकानमें जगह दे सकते हैं। लेकिन दो जनोंका जाकर उनके ऊपर बोझ डालना तो ठीक नहीं। इसीलिए कल ही एक मकान ठीक करनेके लिए तार देनेको बापूजीने चिट्ठी लिख भेजी थी। यह उसका जवाब है।—कहते हुए उसने पीले लिफाफेमेंसे तार निकालकर महिमके बिस्तरपर फेंक दिया।

महिमने उसे हाथमें लेकर शुरूसे आखिर तक पढ़ा, और कहा—अच्छा।

यह तो वह समझ गया कि अचला अपनी इच्छासे साथ जाना चाहती है। परन्तु कलका आचरण, जो आज भी उसके लिए दुर्बोध्य था, वैसा ही दुर्ज्ञेय रह गया, और उसकी याद करके उसे किसी तरहकी अतिरिक्त चंचलता दिखानेकी प्रवृत्ति नहीं हुई।

परन्तु अचलाकी तरफसे यात्राका उद्योग पूरी मात्रामें चलने लगा। उस दिन दोपहरको वह पिताके घर जाकर अपनी चीज-वस्त सम्हाल रही थी। केदार बाबू दरवाजेके बाहर चुपचाप खड़े खड़े कुछ देरतक देखते रहे; फिर बोले—तुम्हारे न जानेसे न बनेगा क्या बेटी?

अचलाने चौंककर मुँह उठाके पूछा—क्यों बाबूजी?

स्वास्थ्य और चिकित्साकी दृष्टिसे उसका साथ रहना ठीक नहीं, पिता होकर यह बात लड़कीको कहनेमें केदार बाबूको शायद शरम मालूम हुई, इसीसे उन्होंने महिमकी वर्तमान आर्थिक अवस्थाकी ओर इशारा करके कहा—ज्यादा दिनकी बात तो है नहीं। इसके सिवा जगदीशके यहाँ कोई खास असुविधा भी नहीं होती। इन थोड़ेसे दिनोंके लिए फिजूल जादा खर्च करके—

असल बात अचला समझी नहीं। उसने पिताके मुँहकी तरफ देखकर पूछा—उन्होंने कहा होगा शायद?

" नहीं नहीं, महिमने कुछ नहीं कहा, मैं ही सोचता हूँ कि—

" तुम कुछ मत सोचो बापूजी, मैं सब ठीक कर लूँगी। " कहकर अचला फिर अपने कामसे लग गई और दूसरे ही दिन छिपाके अपने दो गहने बेचकर रुपये इकट्ठे कर लिए।

फागुनके बीचोंबीच जानेका इरादा था; पर सुरेशकी बुआने पुरोहितको बुलवा कर पत्रा दिखवाया और महीनेके प्रथम सप्ताहमें ही जानेका दिन तय कर दिया। उसी मतको सबको मान लेना पड़ा।

जानेके दो दिन पहलेहीसे अचलाका सारा हृदय मानो हवामें उड़ने लगा।

इस कलकत्तेको छोड़कर कुछ दिनके लिए सुसरालमें रहनेके सिवा उसे अपने जीवनमें अन्यत्र कहीं जानेका मौका नहीं मिला था,—अब तक उसने कभी पश्चिमका चेहरा भी न देखा था। वहाँ कितने ही प्राचीन स्मारक, कितने वन-जंगल और पहाड़-पर्वत, कितनी नदियाँ और झरने, और भी कितनी ही देखने लायक चीजें हैं,—लोगोंके मुँहसे सुननेके सिवा स्वयं देखनेकी कल्पना तक किसी दिन उसके मनमें उदित नहीं हुई। अब यह स्वयं अपनी आँखोंसे उन चीजोंको देखने जा रही है। इसके सिवा वहाँ जाकर उसके पतिका बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य सुधर जायगा, वहाँ अकेली वही गृहिणी और सब कामोंमें पतिकी सहायिक होगी! वहाँका जल-वायु स्वास्थ्यकर होगा, वहाँ जीवना-यात्राका मार्ग सहज और सुगम होगा, पतिके अच्छे हो जानेपर, हो सकता है कि किसी दिन वहीं वे अपनी गृहस्थी जमा बैठें! और निकट-भविष्यमें जो अपरिचित अतिथि एक एक करके उनकी गृहस्थीको हरी-भरी कर देंगे; उनके कोमल चेहरे अत्यन्त परिचितकी भाँति उसे मानो आँखोंके सामने स्पष्ट दिखाई देने लगे। इसी तरहके इतने सुख-स्वप्न दिन-रात उसके मस्तिष्कमें घूमने-फिरने लगे, जिनका ठीक नहीं। और, इन सभी बातोंमें पतिकी इस बातने मिलकर कि उसे छोड़कर वे स्वर्ग जाना भी पसन्द नहीं करते, उसकी चिन्ता-धाराको एकबारगी मधुमय बना दिया। अब उसे किसीके विरुद्ध कोई क्षोभ या कोई शिकायत नहीं रही,—उसके अन्तःकरणकी सम्पूर्ण ग्लानि धुल-पुछकर साफ हो गई, और उसका हृदय गंगाजलकी तरह निर्मल और पवित्र हो गया। आज उसे बड़ी चाह होने लगी कि जानेके पहले वह मृणालको एक बार देखे और सम्पूर्ण अन्तःकरणसे उसे छातीसे लगाकर अपने ज्ञात-अज्ञात सभी अपराधोंके लिए उससे क्षमा माँगे। आज सुरेशके लिए

भी उसका मन रोने लगा। वह परम मित्र होकर भी लज्जा और संकोचके कारण उनसे भेंट नहीं कर सकता, उसके इस दुर्भाग्यकी गुप्त वेदनाको आज जैसे उसने अनुभव किया, ऐसे शायद पहले कभी नहीं किया। उससे भी सर्वान्तःकरणसे क्षमा माँग कर बिदा लेनी है। परन्तु पता लगानेपर मालूम हुआ कि वह कलसे ही घरमें नहीं है।

जानेके दिन सबेरेसे ही आकाशमें बादल छा रहे थे और बूँदा-बाँदी हो रही थी। चीज वस्त सब बँध चुकी है, कुछ सामान स्टेशनपर भी चला गया है, और टिकट भी खरीदे जा चुके हैं। अचलाके लिए सेकेण्ड क्लास टिकट लेनेकी बात हुई थी; परन्तु उसने जबरदस्त बिरोध करके महिमसे कहा था—व्यर्थ रुपये नष्ट करनेकी इच्छा हो तो खरीद सकते हो। मैं स्वस्थ हूँ, सबल हूँ,—और दूसरे, कितनी ही बड़े घरकी स्त्रियाँ इण्टर क्लासके जनाने डब्बेमें जाया करती हैं, क्या मैं नहीं जा सकती? मैं ड्योढ़ेसे ऊँचे दरजेमें हरगिज न जाऊँगी।

लिहाजा वैसी ही व्यवस्था की गई थी।

पूरे दो दिनसे सुरेशका पता नहीं था। परन्तु आज सबेरे वर्षाकी वजहसे हो या और किसी कारण हो, वह अपने पढ़नेके कमरेमें था। उस आनन्द-हीन कमरेमें अचला ठीक जैसे वसन्तकी हवाकी तरह जा घुसी। उसके कंठसे आनन्दका आधिक्य उछला पड़ रहा था; बोली—सुरेश बाबू, इस जन्ममें आप हम लोगोंका मुँह न देखेंगे क्या? इतना भारी कसूर हमसे क्या बन गया है, बताइये तो?

सुरेश चिट्ठी लिख रहा था, मुँह उठाकर उसने अचलाकी तरफ देखा। अपना घर जल जानेपर अचला उसके आस-पासके पेड़ोंका जैसा चेहरा देख आई थी, सुरेशके आजके चेहरेने उसे उन पेड़ोंकी इस ढँगसे याद करा दी कि वह मन ही मन सिहर उठी। वसन्तकी हवा पलट गई। वह क्या कहने आई थी, सब भूल गई। उसने पास जाकर उद्विग्न कण्ठसे पूछा—आपकी क्या तबीयत खराब है सुरेश बाबू? मुझसे यह बात कही नहीं!

सिर्फ एक क्षणके लिए सुरेशने मुँह उठाया। उसी क्षण उसे झुकाकर उसने कहा—नहीं तो, मेरी तबीयत तो खराब नहीं है, अच्छा ही हूँ।—इतना कहकर किताबके पन्ने उलटते हुए उसने फिर कहा—आज ही तो तुम लोग जा रहे हो न,—सब ठीक हो गया? अब न जाने कबतक भेंट होगी!

एक मिनट तक दूसरे पक्षकी तरफसे कोई उत्तर न पाकर सुरेशने आश्चर्यसे

मुँह उठाकर देखा : अचलाकी दोनों आँखोंसे आँसू बह रहे हैं;—आँखें चार होते ही बड़े बड़े आँसू टप टप झरने लगे।

सुरेशकी धमनीमें गरम रक्त-स्रोत उन्मत्त हो उठा, परन्तु आज उसने सारी शक्तिको एकत्र करके, अपनेको संयत करके दृष्टि नीची कर ली।

अचला आँचलसे आँसू पोंछकर गाढ़े स्वरमें बोल उठी—तुम्हारी हरगिज तबीयत अच्छी नहीं है सुरेश बाबू, तुम भी हमलोगोंके साथ चलो!

सुरेशने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

"नहीं क्यों? तुम्हारे लिए—"

बात खतम नहीं हो पाई थी, इतनेमें दरवाजेके बाहरसे नौकरने कहा—बाबूजी, आपकी चाय,—कहता हुआ वह परदा हटाकर कमरेके भीतर आ गया, और दूसरे ही क्षण अचला दूसरी तरफ मुँह फेरकर बाहर निकल गई।

घंटे-भर बाद वह अपने पतिके कमरेमें पहुँची। महिमने पूछा, "सुरेश कई दिनसे कहाँ गया है, जानती हो? बुआजीसे भी कुछ नहीं कह गया। वह आज भी मुझसे नहीं मिलेगा क्या?

अचलाने आहिस्तेसे कहा—आज तो वे घरहीमें हैं।

महिमने कहा—नहीं तो। अभी अभी महरी मुझसे कहके गई है कि बाबू सबेरे ही कहीं चले गये हैं!

अचला चुप हो रही। क्षण-भर पहले ही उससे उसकी भेंट हुई है, वह अत्यन्त अस्वस्थ है, उसने बचपनकी तरह इस बार भी तुम्हारा जीवन बचाया है,—और नहीं तो इतनी कृतज्ञताके लिए भी उसे एक बार अपने यहाँ बुलाना चाहिए, अब उससे कोई खतरा नहीं, इस लज्जिताको संशयकी दृष्टिसे देखकर अब और लज्जित न करो;—अपने हृदयकी इन सब बातोंमें एक भी बात वह जीभसे न कह सकी; चुपचाप रहकर हाथके किसी एक काममें अपनेको लगाये रही।

क्रमशः स्टेशन जानेका समय नज़दीक आने लगा। नीचे केदार बाबूकी पुकार सुनाई देने लगी और बुआजी भरा घड़ा आदिके काममें व्यस्त हो उठीं। नौकरोंने सामान वगैरह गाड़ीकी छतपर लाद दिया। सिर्फ, जो गृहस्वामी थे, उन्हींका कहीं पता नहीं! और मजा यह कि इस विषयमें प्रकटरूपसे बातचीत करनेका भी किसीको साहस नहीं हुआ,—इस घटनाने भीतर ही भीतर ऐसा ही सबको कुण्ठित कर दिया था।

केदार बाबूने लड़कीको जरा निरालेमें पाकर, उसके माथेपर हाथ फेरकर स्नेहार्द्र कंठसे कहा—सती-लक्ष्मी होओ बिटिया, माके समान होओ। बुढ़ापेमें बिना समझे बहुतसी बुरी-भली बात कह डाली हैं बिटिया, गुस्सा मत होना। इतना कहकर वे झटपट अलग हो गये।

महिमने गाड़ीपर सवार होते वक्त अचलासे अत्यन्त क्षुण्ण स्वरमें चुपकेसे कहा—उसने सचमुच ही हम लोगोंसे भेंट नहीं की! उससे एक बात कहनेके लिए मैं दो दिनसे उसकी बाट देख रहा था।

पिताकी बातोंसे उसकी आँखोंमें आँसू गिर रहे थे, उसने सिर्फ गरदन हिलाकर बताया नहीं।

दरवाजेकी ओटमें बुआजी खड़ी थीं। अचलाके गाढ़ी भक्तिके साथ उनके पाँव छूते ही उन्होंने गद्‌गद-कण्ठसे असंख्य आशीर्वाद देते हुए कहा—माथेका सिन्दूर-सुहाग अक्षय हो बेटी, पतिको निरोग करके जल्दी ही घर लौटा लाना, यही मेरी भगवानसे प्रार्थना है!

"यही मेरे लिए आशीर्वाद है बुआजी!" कहकर आँचलसे आँखें पोंछती हुई अचला गाड़ीपर जा बैठी। बात केदार बाबूके भी कानमें पड़ी; और वे अपनी अक्षम्य लज्जासे आप ही गड़ गड़ गये।

२७

हवड़ा स्टेशनसे पछाँहकी गाड़ी छूटनेमें दसेक मिनटकी देर है। बाहर मेघाच्छन्न आकाश है, बूँद बूँद वर्षा रुकना ही नहीं चाहती। लोगोंके चलने-फिरनेसे पाँवोंकी कीचड़ और पानीसे सारा प्लेटफारम भर गया है। मुसाफिर लोग फिसलनसे बचकर, भीड़के भीतरसे जबरदस्ती निकलकर, किसी तरह सामान लिये जगह ढूँढ़ रहे थे। इतनेमें अचलाने देखा कि एक भारी सूटकेस लिये हुए सुरेश आ रहा है।

आश्चर्य और दुश्चिन्तासे केदार बाबूके चेहरेपर अँधेरा छा गया; उसके पास पहुँचते न पहुँचते उन्होंने चिल्लाकर पूछा—क्या बात है सुरेश? तुम कहाँ जा रहे हो?

सुरेशने जवाब अचलाको दिया। उसके चेहरेकी तरफ सूखी हँसी हँसता हुआ बोला—नः, मैंने देखा, कि तुम्हारे उपदेश और निमन्त्रणकी किसी भी तरह उपेक्षा नहीं की जा सकती। आज सबेरे तुम इस तरह आँखोंमें उँगली डालकर न

दिखा देतीं तो मुझे मालूम ही नहीं पड़ता कि मेरी तन्दुरुस्ती कितनी खराब हो गई है ! चलो, तुम लोगोंका अतिथि बनकर कुछ दिन देखा जाय, अच्छा होता हूँ या नहीं ! सच कहता हूँ मैं—

महिम बीचहीमें बोल उठा—अच्छा ही तो है सुरेश ! नई जगहमें हम लोगोंको भी काफी सहायता मिलेगी।—इतना कहकर उसने क्षण-भरके लिए अचलाकी तरफ देखा और उस एक ही क्षणकी नीरव व्यथित दृष्टिने मानो सभीसे ऊँचे स्वरमें कहा—मुझसे कहा क्यों नहीं अचला ? जिसके स्वास्थ्यके विषयमें मन ही मन इतनी दुश्चिन्ता कर रही हो, आज सबेरे तक जिस बातकी दोनोंमें चर्चा हुई है, उसे मुझे रंचमात्र भी जानने क्यों नहीं दिया ? इस दुबकाचोरीकी क्या जरूरत थी अचला ?

परन्तु अचला दूसरी तरफ मुँह फेरे रही; और सुरेश क्षण-भर विमूढ़की भाँति रहकर, अकस्मात् भीतरकी उत्तेजनाको बाहर धकेलकर, अकारण व्यस्तताके साथ बोल उठा—लेकिन अब गाड़ी छूटनेमें देर नहीं है। चढ़ो चढ़ो, पहले गाड़ीपर बैठो पीछे बातचीत करना। आइये केदार बाबू !—कहता हुआ वह सिर्फ सामनेकी ओर दृष्टि रखकर, एक तरहसे सबको हटाता हुआ आगे बढ़ गया।

केदार बाबू बहुत देरतक कुछ बोले नहीं। महिमको जगहपर बिठाकर अचलाको उन्होंने जनाने डब्बेमें बिठा दिया। सिर्फ गाड़ी छूटते समय सुरेश जब झुककर उन्हें प्रणाम करके महिमके पास जा बैठा, तब उन्होंने कहा—तुम साथ हो ही, उम्मीद है अब रास्तेमें कोई तकलीफ न होगी। जनाना डब्बा जरा दूर पड़ गया है, बीच बीचमें खबर लेते रहना सुरेश !—और महिमको फिर एक बार सावधान कर दिया—पहुँचते ही खबर दे देना, भूलना नहीं ! मैं अत्यन्त चिन्तित रहूँगा। —कहकर आँखोंके आँसू पोंछते हुए वे चल दिये। उनका विषण्ण और मलिन मुख और स्नेहार्द्र कण्ठस्वर बहुत देरतक दोनों मित्रोंके कानोंमें गूँजता रहा।

गाड़ी छूटनेपर ठण्ड लगनेके डरसे महिम कम्बल ओढ़कर लेट गया और जल्दी ही सो गया। परन्तु सुरेश अपनी जगहपर उसी तरह बैठा रहा। उसके मुँहकी तरफ आँख उठाकर देखनेवाला भी कोई नहीं था; होता तो कोई भी उसका चेहरा देखकर कह सकता था कि उसकी आँखोंकी दृष्टि आज स्वाभाविक नहीं है,—भीतर अत्यन्त भीषण अग्निकाण्ड हुए बगैर आदमीकी आँखोंसे किसी भी तरह ऐसा कठिन प्रकाश नहीं निकल सकता।

स्लो पैसेञ्जर छोटी-बड़ी सभी स्टेशनोंपर ठहरती हुई धीमी चालसे जा रही थी, और बाहर बूँद बूँद वर्षा हो रही थी। एक बड़ी स्टेशनपर गाड़ी ठहरनेको हुई तो महिम अपना ओढ़ना हटाकर मुँह निकालके बोला—भीड़ नहीं थी, जरा सो क्यों नहीं लिये सुरेश ? ऐसी सहूलियत बराबर मिलती ही रहेगी, ऐसी आशा नहीं।

सुरेश चौंककर बोला—हाँ हाँ, अभी सोता हूँ।

उसका यह चौंकना इतना असंगत और बिना-कारण ऐसा कुण्ठित दिखाई दिया कि महिम आश्चर्यसे दंग रह गया। मानो वह अगोचरमें कोई अपराध कर रहा हो, और पकड़े जानेके भयसे ही इस तरह त्रस्त हो पड़ा हो ! इस भावको महिम बहुत देरतक अपने मनसे दूर न कर सका।

गाड़ी स्टेशनपर आकर ठहर गई।

सुरेशने अपनी हालतको महसूस करके जरा हँसीके आभाससे चेहरेको सरस बनाकर कहा—मैं समझता था कि तुम सो रहे हो, इसीसे चौंक पड़ा—

महिम सिर्फ ' हूँ ' कहके रह गया, सुरेशकी यह अनावश्यक कैफियत उसे अच्छी नहीं लगी।

सुरेशने कहा—उन्हें कुछ जरूरत तो नहीं, एक बार पूछ आता—

महिमने कहा—लेकिन पानी जो पड़ रहा है ?

" सो कुछ नहीं, मैं चटसे देखे आता हूँ। " कहकर सुरेश दरवाजा खोलकर बाहर पहुँच गया। उसने जनाने डब्बेके सामने जाकर देखा, अचलाको वहाँ एक हमउम्र साथिन मिल गई है, और उसके साथ वह गप लगा रही है। उसने पहले सुरेशको देख लिया, और अचलाकी देह मसककर मुँह फेरके बैठ गई। अचलाके सुरेशकी तरफ देखते ही उसने पूछा—कुछ चाहिए क्या ?

अचलाने गरदन हिलाकर कहा—नहीं। तुम्हें पानीमें भीगनेकी जरूरत नहीं, जाओ। कहती हुई वह खिड़कीके पास आ गई और मृदुकण्ठसे बोली—मेरे लिए तुम्हें चिन्ता नहीं करनी होगी; बल्कि जिनके लिए चिन्ता करना है, उनकी तरफ ध्यान रखना।

सुरेशने कहा—सो है; मगर तुम्हें कुछ खाने या पीनेके लिए पानी तो—

अचला हँसती हुई बोली—नहीं जी नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए। आखिर तुम क्या पानीमें भीगकर बीमार पड़ना चाहते हो ?

सुरेशने क्षण-भरके लिए अचलाके मुँहकी तरफ देखकर आँखें नीची कर लीं;

बोला—चाह तो बहुत दिनोंसे रहा हूँ, पर अभागेके पास बीमारी भी नहीं फटकना चाहती !

बात सुनकर अचलाकी कनपटीं तक सुर्ख हो उठीं; परन्तु, सुरेश कहीं मुँह उठाते ही देख न ले, इस आशंकासे उसने किसी कदर बातको मज़ाकमें उड़ानेके लिए जबरदस्ती हँसते हुए कहा—अच्छा, पहले चलो तो सही ! वहाँ ऐसी मेहनत कराऊँगी कि—

पर, बातको वह खतम न कर सकी । उसकी अदृश्य लज्जाने इस छद्म परिहासके बाह्य प्रकाशको मानो अधबीचमें ही धिक्कार देकर रोक दिया ।

गाड़ी छोड़नेकी घंटी बज गई, सुरेश कुछ कहनेके लिए मुँह उठाकर अन्तमें बिना कुछ कहे ही लौट रहा था कि अचानक बाधा पाकर पीछेको मुड़कर देखा, तो उसके दुशालाका एक छोर अचलाकी मुट्ठीमें था । वह फुसफुस करके अकस्मात् डाँटने-सी लगी—तुम्हें मैंने साथ चलनेको कहा है, यह बात तुमने सबके सामने क्यों कही ? क्यों मुझे सबके सामने इस तरह शरमिन्दा किया ?

ठीक इसी बातको सुरेश तबसे हजार बार दुहरा दुहराकर अनुशोचनासे दग्ध हो रहा था, इसीलिए प्रत्युत्तरमें उसने सिर्फ करुण-कण्ठसे इतना भर कहा—मैंने बिना समझे अपराध कर डाला है अचला !

अचला लेशमात्र शान्त न होकर वैसे ही उत्तप्त स्वरमें बोली—हाँ, बिना समझे किया है !—नहीं, सबके सामने सिर्फ मेरा सिर नीचा करनेके लिए ही तुमने जान-बूझकर कहा है !

गाड़ी चलना शुरू हो गई थी; सुरेशको आगे बात करनेका मौका नहीं मिला; अचलाके उसका दुशाला छोड़ देते ही वह बिना कुछ उत्तर दिये ही धड़कती हुई छाती लिए जल्दीसे चला गया । वह किसी तरफ बगैर देखे दौड़ रहा था, परन्तु उस दृष्टिका अनुसरण करते हुए अचलाने देखा कि और एक जनेके हृदयकी धड़कन लगभग बन्द होना चाहती है । अचलाकी सीधी नजर पड़ गई : एक दूसरी खिड़कीसे मुँह निकालकर महिम उन्हीं लोगोंकी तरफ देख रहा है । जब वह अपनी जगहपर जाकर बैठ गई, तो उस स्त्रीने पूछा—ये ही आपके बाबू होंगे ?

अन्यमनस्क अचला सिर्फ 'हूँ' कहकर दूसरी खिड़कीमेंसे पेड़-पौधे और मैदानकी तरफ शून्य दृष्टिसे देखने लगी । जिस किस्सेको अधूरा छोड़कर अचला सुरेशसे बात करने उठी थी, वापस आकर उसे पूरा करनेकी उसकी प्रवृत्ति नहीं हुई ।

गाड़ी फिर गाँवके बाद गाँव, शहरके बाद शहर पार करती हुई चलने लगी, फिर उसके मनका क्षोभ दूर होकर चेहरा निर्मल और प्रशान्त हो उठा, फिर वह अपनी साथिनके साथ स्वच्छन्द चित्तसे बातचीत करने लगी। जिस लज्जाने कुछ घंटे पहले उसे इस तरह पीड़ित कर डाला था, उसकी अब उसे याद भी न रही।

एक बड़े स्टेशनपर सुरेश एक खानसामाके हाथ चाय और अन्यान्य खानेकी चीजें लेकर आ पहुँचा। अचलाने उन्हें लेकर स्नेहके साथ उलहनेके स्वरमें कहा—इतना झंझट उठानेके लिए तुमसे कहा किसने, बताओ तो? तुम्हारे मित्रने कहा होगा शायद?

इस विषयमें सुरेश किसीके कहने-सुननेकी परवाह नहीं रखता, अचला इस बातको अच्छी तरह जानती थी; फिर भी इस बिनचाही खातिरदारीके लिए वह इतनी स्निग्ध छेड़खानी किये बगैर न रह सकी।

सुरेश मुसकराकर चला जा रहा था, अचलाने उसे बुला लिया। उसके ओठोंपर अब भी उस मुसकानका आभास मौजूद था; उसकी तरफ देखते ही अचला सहसा मुसकरा दी और मारे शरम और संकोचके सुर्ख हो उठी। और उस आरक्त आभाको सुरेशने अपनी आँखोंसे गले तक पिकके पी लिया।

अचलाने पतिकी खबर लेनेके लिए सुरेशको बुलाया था। उन्हें किसी तरहकी तकलीफ या असुविधा तो नहीं है, कुछ जरूरत है या नहीं, एक बार आ सकते है या नहीं,—इन सब बातोंको वह एक एक करके जान लेना चाहती थी; परन्तु इसके बाद इस विषयमें एक भी बात पूछनेकी उसमें शक्ति नहीं रही। उसने असगत गम्भीरताके साथ सिर्फ इतना पूछा—हम लोगोंको इलाहाबाद गाड़ी बदलनी पड़ेगी न? कितनी रातको पहुँचेगी वहाँ, मालूम है? देखकर एक बार मुझे बता जा सकेंगे?

"अच्छा।" कहकर सुरेश जरा-कुछ आश्चर्य-चकित-सा होकर चला गया।

अचलाने मुँड़कर देखा कि वह स्त्री अपनी जगह छोड़कर दूर जा बैठी थी। अचला अपने मनकी नाराज़गी पूरी छिपा न सकनेके कारण बोली—आपके घरमें शायद चाय-रोटी कोई नहीं खाता होगा?

उस स्त्रीने विनयके साथ कहा—हाय हाय, इस उपद्रवसे क्या कोई घर बचा है, आप जानती हैं? यह तो सभी कोई खाते हैं।

अचलाने कहा—तो फिर मारे घृणाके हटकर क्यों बैठ गई?

उससे लज्जित स्वरमें कहा—नहीं बहन, घृणासे नहीं, मर्द तो सभी कुछ खाते हैं; पर हाँ, मेरे ससुर यह सब पसन्द नहीं करते,—और हम औरतोंको तो —

एक दिन इसी तरह खाने-छूनेके बारेमें मृणालके साथ उसका विच्छेद हो गया था। उस दिन भी वह जिस कारणसे अपनेको संयत न रख सकी थी, आज भी वैसे ही आन्तरिक जलनसे वह अपनेको न सम्हाल सकी। और उस स्त्रीकी बात खतम होनेके पहले ही रूखे स्वरमें कह उठी—आपको परेशान मैं नहीं करना चाहती आप अपनी जगहपर आकर बैठ जायँ। कहकर उसने उसी क्षण चाय और रोटी वगैरह उठाकर बाहर फेंक दी। वह स्त्री बहुत देर तक चुपचाप अचलाकी तरफ देखती हुई पत्थरकी तरह स्थिर बैठी रही, उसके बाद बिलकुल मुँह फेरकर बैठ गई और आँचलसे आँखें पोंछने लगी। शायद उसने यही सोचा कि इतनी देरकी मुलाकात,—इतनी बातचीतकी उसने जरा भी इज्जत न रखी; ऐसा न हो कि आँसू देखकर वह और कुछ कर बैठे।

कुछ देरके लिए वर्षा रुक जानेपर भी आकाशमें मेघ जमा हो रहे थे। तीसरे पहर फिर जोरसे पानी पड़ने लगा। ऐसे पानीमें उसे आरामें उतरना है, और उसकी वह तैयारी करने लगी।

अचलासे रहा न गया, वह चटसे उसके बगलमें जाकर बैठ गई। उसका हाथ अपने हाथमें लेकर स्निग्ध कण्ठसे बोली—अपने व्यवहारके लिए मैं अत्यन्त लज्जित हूँ। मुझे माफ करो बहन।

युवती हँस दी, परन्तु उत्तर न दे सकी। अचलाने फिर कहा—मेरा मन खराब रहता है तो मैं क्या कर बैठती हूँ, कोई ठीक नहीं। मेरे पति बीमार हैं, उन्हें लेकर आब-हवा बदलने जा रही हूँ,—अच्छे हो गये तो ठीक ही है, नहीं तो उस परदेशमें मेरा क्या होगा, भगवान ही जानते हैं। कहते कहते उसका गला रुँध गया।

युवतीने आश्चर्यके साथ कहा—मगर आपके पतिको देखनेसे तो ऐसा नहीं मालूम होता कि इतने बीमार हैं!

अचलाने कहा —मेरे पति इसी गाड़ीमें हैं, आपने उन्हें अभी देखा नहीं। ये तो उनके मित्र हैं।

युवती और भी ज्यादा आश्चर्यान्वित होकर चुप हो रही।

इन मित्रके विषयमें यह पूछनेपर कि ये उसके पति हैं क्या, उसने 'हूँ' कह

दिया था, इस बातका अचलाको खयाल ही नहीं रहा। मगर वह इसे भूली नहीं थी। लेकिन अचलाने उसके आश्चर्यको बिलकुल दूसरी ही तरहसे समझा: सुरेशके साथ अपने आचरण और बातचीतको अपनी आन्तरिक लज्जासे विकृत करके साधारण हिन्दू नारीकी दृष्टिमें वह कैसी ऊटपटाँग लगी होगी, इस बातकी कल्पना करके वह मारे शरमके गड़ गड़ गई और जवाबमें अत्यन्त निरर्थक और भद्दी बात कह बैठी—हम लोग हिन्दू नहीं हैं, ब्राह्मसमाजी हैं।

युवतीको फिर भी मौन रहते देख अचलाने संकोचके साथ उसका हाथ छोड़ दिया, और कहा—हम लोगोंका रहन-सहन आप समझती नहीं, इसीसे आपको अजीब-सा मालूम पड़ता है।

युवती फिर हँस दी, बोली—हम लोग ऐसा नहीं समझतीं, बल्कि आप ही लोग, चाहे किसी भी कारणसे हो, हम लोगोंसे दूर दूर रहना चाहती हैं। कैसे जाना बताऊँ? हमारे दो-एक रिश्तेदार हैं, जो आपहीके समाजके हैं। उन्हींसे मालूम हुआ है।—कहकर वह हँसने लगी।

अचलाने पूछा—वह कारण कौन-सा है?

उसने कहा—सो आप जरूर जानती हैं। न जानती हों तो अपने समाजके किसीसे पूछ लीजियेगा।—कहकर हँस दी और इस प्रसंगको यहीं दबाकर बोली —अच्छा, इतनी दूर न जाकर अपने पतिको आप हमारे यहीं क्यों न ले चलिये?

"कहाँ, आरामें?"

"मइया री, वहाँ क्या कोई आदमी रहते हैं! उनका ठेकेदारीका काम है न, इसीसे कभी कभी मुझे भी आरा जाकर रहना पड़ता है। मैं डेहरीकी बात कह रही हूँ। सोन नदीके पास ही अपना छोटा-सा मकान है, वहाँ दो-चार दिन रहनेसे ही आपके पति अच्छे हो जायँगे। आयेंगी वहाँ?" कहते कहते अचलाके दोनों हाथ अपने हाथमें लेकर वह उत्तरकी आशासे उसके मुँहकी तरफ देखती रही।

इस अपरिचिताकी उत्सुकता और हार्दिक आग्रहको देखकर अचला मुग्ध हो गई। बोली—लेकिन आपके पतिकी भी तो राय होनी चाहिए? उनके बगैर कहे तो जाया नहीं जा सकता।

युवतीने सिर हिलाते हुए कहा—अहा-हा। हम सब सेवाके काममें दासी हैं तो क्या सभी काममें दासी हैं? ऐसा खयाल भी न कीजियेगा। हुकम देनेमें तो हम ही लोग मालिकिन हैं। वह जगह पसन्द न आवे तो सीधे डेहरी चली आइयेगा,

—जरा भी चिन्ता न कीजियेगा,—आपसे कह दिया है। आज्ञा लेनी होगी, सो मैं ले लूँगी, आपको इसकी क्या गरज है?—कहते कहते उस पति-सौभाग्यवती युवतीने अपने आनन्दके आधिक्यसे मानो अचलाको आच्छन्न कर दिया।

आरा स्टेशन आ रहा है, यह बात गाड़ीकी धीमी चालसे मालूम हो गई! उसने अचलाके दोनों हाथ फिरसे अपनी तरफ खींचते हुए आवेगके साथ कहा—मेरा स्टेशन आ गया, अब तो मैं उतर रही हूँ,—लेकिन आप सोचमें पड़कर फिजूल मन खराब न कर पायेंगी, कहे देती हूँ। आपको कोई डर नहीं, पति आपके बहुत जल्दी अच्छे हो जायँगे। पर आप मुझे वचन दीजिये, लौटते समय एक बार मेरे यहाँ जरूर पधारेंगीं?

अचलाने आँखोंके आँसू दबाते हुए कहा—ऐसा दिन अगर आये, तो जरूर आपसे मिलके जाऊँगी।

युवतीने कहा—आयेगा क्यों नहीं, जरूर आयेगा। आपको मैंने पहचान लिया है। मैं कहे जाती हूँ, आपकी इतनी बड़ी भक्ति और प्रेमकी भगवान उपेक्षा नहीं कर सकते,—ऐसा हो ही नहीं सकता!

अचलासे जवाब न दिया गया; उसने मुँह फेर कर किसी कदर अपने दीर्घ-निश्वासको दबा लिया।

बरसतेमें ही गाड़ी प्लेटफारमपर खड़ी हुई। उस युवतीका छोटा देवर दूसरे डब्बेमें बैठा था, उसने आकर दरवाजा खोल दिया। अचलाने उसके कानके पास मुँह ले जाकर चुपकेसे कहा—पतिका नाम तो आप अपने मुँहसे कहेंगी नहीं, मुझे मालूम है; पर आप अपना नाम तो बताइये, क्या है? अगर कभी लौटना हुआ, तो कैसे आपका पता लगेगा?

युवतीने मुसकराते हुए कहा—मेरा नाम है राक्षसी। डेहरीमें पहुँचकर किसी भी बंगालीकी लड़कीसे पूछोगी तो वह मेरा पता बता देगी। मगर, दोनों जने एक बार आना जरूर बहन। मेरे सरकी कसम रही, मैं बाट देखती रहूँगी। सोन-नदीके किनारे ही मेरा घर है।—इतना कहकर उसने हाथ जोड़कर सहसा नमस्कार किया और पानीमें भीगती हुई उतर गई।

गाड़ी फिर धीरे धीरे चल दी। दिन छुपे अभी बहुत देर नहीं हुई; परन्तु लगातार पानी पड़नेके साथ साथ जोरकी हवा जो चल रही थी, उससे रात मानो सौगुनी भीषण हो उठी। खिड़कीके काँचमेंसे बाहरकी तरफ देखकर उसकी दृष्टि

पीड़ित हो उठी,—उसे बार बार ऐसा मालूम होने लगा मानो इस गाढ़े अंन्धकारने उसके आदि-अन्तको पूर्णरूपसे निगल लिया हो । प्रकाशका चेहरा,—आनन्दका मुँह अब वह कभी देखेगी ही नहीं, इससे इस जीवनमें अब उसे मुक्ति मिलेगी ही नहीं ! बगैर किसी साथिनके सूने डब्बेमें वह एक कोनेमें जा चादर ओढ़ आँख मीचके पड़ रही, और अब उसकी आँखोंसे झरझर आँसू गिरने लगे । क्यों ये आँसू गिर रहे हैं, कौनसा उसे ऐसा दुःख हो रहा है,—यह भी वह सोच न सकी और न रुलाईपर ही किसी तरह काबू कर सकी । बल्कि वह अदम्य तरंगोंकी तरह गरज गरज कर उसके हृदयको चकनाचूर कर देने लगा । उसे अपने पिताकी याद आई, फिर बचपनकी सखी सहेलियोंकी याद आई, बुआजीकी याद आई, मृणालकी याद आई, और अभी अभी जो युवती 'राक्षसी'के नामसे अपना परिचय दे गई, उसकी याद आई,—यदु नौकर तक मानो उसकी आँखोंके सामने बार बार जाने-आने लगा । उसके हृदयमें ऐसी एक वेदना घुमड़ने लगी जैसे वह सबसे जनम-भरके लिए विदा होकर कहीं निरुद्देश-यात्रा कर रही हो ।

इस तरह निरन्तर आँसू बहाते रहनेके बाद गाड़ी जब अगले स्टेशनपर आकर खड़ी हुई, तब उसका वेदनातुर हृदय बहुत-कुछ शान्त हो चुका था । वह उठके बैठ गई और व्याकुल दृष्टिसे इधर उधर देखने लगी कि शायद कोई जनानी सवारी इस आँधी-मेहकी रातमें भी उसके डब्बेमें दैववश आ जाय । भीजते-भीजते कोई कोई तो उतर गये और कोई कोई चढ़े भी, पर उसके डब्बेके पास कोई फटका तक नहीं ।

गाड़ी छूटनेपर सिर्फ एक गहरी साँस लेकर वह अपनी जगहपर लौट आई और पहलेकी तरह ओढ़कर पड़ रही । अबकी लेटते ही किसी अचिन्तनीय कारणसे उसका दुःखार्त चित्त अकस्मात् सुखकी कल्पनासे भर उठा । परन्तु यह कोई नई बात नहीं; जिस दिन आब-हवा बदलने जानेकी बात पहले पहल उठी थी, उस दिन भी उसने ऐसा ही स्वप्न देखा था । आज भी वह उसी तरह रुग्ण पतिकी याद करके, उनके स्वास्थ्य और दीर्घायुकी कामना करके एक अपरिचित स्थानमें आनन्द और सुख-शान्तिका जाल बुनते बुनते उसीमें मग्न हो गई ।

कब उसे नींद आ गई और वह कितनी देर तक सोती रही, उसे याद नहीं ।

सहसा अपने नामकी बुलाहट सुनकर वह भड़भड़ाकर उठके बैठ गई, देखा, दरवाजेके पास सुरेश खड़ा है और खुले हुए दरवाजेसे जोरकी हवा और बौछार भीतर घुसकर सारा डब्बा भिगोये दे रही है।

सुरेशने चिल्लाकर कहा—जल्दी उतर आओ, प्लाटफार्मपर गाड़ी खड़ी है! तुम्हारा अपना सूटकेस कहाँ है?

अचलाकी आँखोंमें अब तक नींद भरी हुई थी; लेकिन उसे याद आ गया: इलाहाबादमें जबलपुरके लिए गाड़ी बदलनी है। वह अपना सूटकेस दिखाकर व्यस्तताके साथ उतर पड़ी, और बोली—लेकिन ऐसे आँधी-मेहमें उन्हें कैसे उतारोगे? यहाँ पालकी-वालकी कुछ नहीं मिलती? ऐसेमें तो तबीयत और भी ज्यादा खराब हो जायगी सुरेश बाबू!

सुरेशने क्या जवाब दिया, वर्षाकी आवाज़में साफ सुनाई नहीं दिया। वह एक हाथमें सूटकेस और दूसरे हाथसे अचलाका हाथ दृढ़तासे पकड़कर उधरके प्लाट-फार्मकी तरफ जल्दी जल्दी चलने लगा। दूसरी गाड़ी छूटनेके लिए तैयार हुई खड़ी थी। उसीके एक सूने फर्स्ट क्लास डब्बेमें अचलाको चढ़ाकर सुरेशने जल्दीसे कहा—तुम ठीकसे बैठ जाओ, मैं महिमको उतार लाऊँ।

"तो मेरा यह मोटा मलीदा लेते जाओ, खूब अच्छी तरहसे उढ़ाकर लाना।" कहकर अचलाने हाथ बढ़ाकर अपना मलीदा सुरेशके ऊपर डाल दिया और सुरेश जल्दीसे चला गया।

अँधेरेमें जितनी दूर दृष्टि जा सकती थी, अचला सामनेकी तरफ देखने लगी: लैम्प पोस्टोंपर दूर दूर स्टेशनकी बत्तियाँ जल रहीं थीं; ऐसे जोरके आँधी-मेहमें उनका उजाला इतना अस्पष्ट और मामूली था कि उससे लगभग कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। पानीमें भीगते हुए यात्री लोग दौड़-धूप कर रहे थे, कुली लोग सामान लिए दौड़ रहे थे और रेल्वे कर्मचारी अपने कामके झंझटमें फँसे हुए थे,—सब-कुछ धुँधला छाया जैसा दिखाई दे रहा था। क्रमशः वह भी घट गया, स्टेशनका घंटा जोरसे बज उठा और जिस गाड़ीसे अचला अभी अभी उतर आई थी वह गाड़ी भीषण अजगरकी तरह फुसकारती और आकाशको कँपाती हुई प्लटफार्म छोड़कर चली गई; और इसके बाद सामने एक अखण्ड अन्धकारके सिवा और कोई व्यवधान ही न रहा।

फिर घण्टा बजा। यह इसी गाड़ीके लिए था, अचला समझ गई; परन्तु वे

चढ़ चुके या नहीं, कहाँ चढ़े, चीज-वस्त सब आ गई या नहीं,—कुछ भी मालूम न होनेसे वह चिन्तित हो उठी।

एक खलासी कम्बलमें लिपटा हुआ हरी. लालटेन हाथमें लिए जल्दी जल्दी चल रहा था; उसके सामनेसे निकलते ही अचलाने उसे बुलाकर पूछा—पैसेञ्जर सब चढ़ चुके हैं? फर्स्ट क्लासका डब्बा देखकर वह ठिठककर खड़ा हो गया और बोला—जी हाँ, मेमसाहब।

अचलाने सुस्थिर होकर पूछा—बजे कितने है?

उसने कहा—नौ बजके—

"नौ बजके!" अचला चौंक उठी। इलाहाबाद तो आखिरी रातमें पहुँचना चाहिए। व्याकुल होकर उसने पूछा—इलाहाबाद—

मगर खलासी ज्यादा खड़ा नहीं रह सकता था। ऊपर छत नहीं थी, उसपर वर्षाके अलावा गाड़ीकी छतसे पानी छिटक छिटक कर उसकी आँखोंमें सूईकी तरह चुभ रहा था। वह हाथकी बत्ती जोरसे हिलाता हुआ 'मुगलसराय। मुगलसराय!' चिल्लाता हुआ जल्दीसे आगे बढ़ गया।

सीटी बजी और गाड़ी छूट गई। ठीक इसी समय सुरेश दौड़ा दौड़ा आया और 'डरनेकी कोई बात नहीं, मैं बगलहीके डब्बेमें हूँ' कहकर दौड़ता हुआ सामनेसे निकल गया।

२८

सुरेश बगलके डब्बेमें चढ़ गया, ठीक है, मगर वे?—अब तक तो वह आँखें फाड़ फाड़ कर निरन्तर बाहरकी ओर देखती रही है,—उनका चेहरा, फिर चाहे वह कितना ही अस्पष्ट क्यों न हो, क्या एक बार भी उसकी निगाहमें न पड़ता? और इलाहाबादके बदले इस नये स्टेशनपर गाड़ी क्यों बदली गई? पानीकी बौछारसे उसके माथेके बाल, उसके बदनके कपड़े-लत्ते,—सब भीगने लगे; फिर भी वह खुली हुई खिड़कीमेंसे मुँह निकालकर एक बार सामने और एक बार पीछेकी तरफ अँधेरेमें क्या देखनेकी कोशिश करने लगी, सो वही जाने; लेकिन यह बात उसका मन किसी भी तरह माननेको तैयार नहीं हुआ कि इस गाड़ीमें उसके पति नहीं हैं। वह एकबारगी अनन्यनिर्भर होकर सुरेशके साथ अकेली किसी दिशाहीन निरुद्देश-यात्राके मार्गपर चली जा रही है, ऐसा हो ही नहीं

सकता ! इसी गाड़ीमें वें कहीं होंगे ही होगे ।

सुरेश कैसा भी हो, और वह चाहे वह कुछ भी करे, पर वह एक निरपराध रमणीको उसके समाजसे, धर्मसे,—नारीके सम्पूर्ण गौरवसे फुसलाकर निकाल लायगा और उसे ऐसी अनिवार्य मौतके मुँहमें धकेल देगा,—इतना बड़ा उन्मादी वह नहीं हो सकता। खासकर, इससे उसे लाभ क्या है ? अचलाके जिस शरीरपर उसका इतना लोभ है, उस शरीरको एक गणिकाकी देहमें परिणत करनेके लिए अचला जीवित नहीं रहेगी,—इस सीधी-सी बातको अगर वह न समझा हो, तो प्रेमकी बात अपनी जबानपर लाया किस मुँहसे था ? नहीं, नहीं, ऐसा हरगिज नहीं हो सकता।—इंजनकी तरफ कहीं वे जल्दीसे चढ़ गये होंगे, उसे दिखाई नहीं दिये ।

सहसा पानीका एक जोरका झोंका उसके मुँहपर आ पड़ते ही वह संकुचित होकर कोनेकी तरफ हट गई, और अब जब कि अपनी तरफ गौर करके देखा तो मालूम हुआ कि सारे बदनपर सूखा कपड़ा कहीं भी नहीं बचा, सब भीग गया है। वर्षाके पानीमें वह इतनी भीगी है कि उसके आँचल और चोलीकी बाहोंसे टप-टप पानी टपक रहा है। ऐसी जाड़ेकी रातमें उसने बगैर जाने इतना सहा है, यह मालूम होनेके बाद फिर वह न सह सकी, और कपड़े बदलनेके लिए काँपते हुए हाथोंसे सूटकेस खींच कर जब उसका ताला खोलने लगी, तब गाड़ीकी चाल धीमी पड़ गई और थोड़ी देर बाद ही गाड़ी स्टेशनपर खड़ी हो गई । पानी ज्योंका त्यों पड़ रहा था,—कौन स्टेशन है यह जाननेका कोई चारा नहीं था; फिर भी वह सूटकेस खुला छोड़कर भीतरके अदम्य उद्वेगसे उठकर दरवाजा खोलके प्लाटफ़ार्मपर उतर पड़ी और अँधेरेमें अन्दाजा लगाती हुई भीगती भीगती जल्दी जल्दी सुरेशके डब्बेके सामने पहुँच गई ।

चिल्लाकर पुकारा—सुरेश बाबू !

उस डब्बेमें दो भारतीय और एक अँग्रेज सज्जन बैठे थे। सुरेश एक कोनेमें सिमटकर दीवारके सहारे आँखें मीचे बैठा था। अचलाको शायद आशंका थी कि शायद उसके गलेसे सहजमें आवाज नहीं निकलेगी। इसीसे उसका प्रबल उद्यमसे निकाला हुआ कण्ठ स्वर ठीक मानो आहत पशुके तीव्र आर्तनाद-सा सुनाई दिया और उसने सिर्फ सुरेशको ही नहीं, बल्कि उपस्थित सभीको एकाएक चौंका दिया। अभिभूत सुरेशने आँख खोलकर देखा : दरवाजेपर अचला खड़ी है। उसके उघड़े हुए चेहरेपर, एक ही साथ, बेशुमार जलधारा और गाड़ीका

उज्ज्वल प्रकाश इस ढंगसे पड़ रहा था कि सामने एक रूपका इन्द्रजाल-सा छा गया जिससे सबकी मुग्ध दृष्टि विस्मयसे एकबारगी निर्वाक हो गई! सुरेशके लपककर पास पहुँचते ही अचलाने पूछा—उन्हें नहीं देख रही हूँ,—कहाँ हैं वे? किस डब्बेमें उन्हें बिठाया है?

"चलो, बताता हूँ।" कहकर सुरेश पानी बरसतेमें ही उतर पड़ा, और जिस तरफसे अचला आई थी, उसी तरफ उसे हाथ पकड़कर खींच ले गया।

भारतीय दोनों एक दूसरेके मुँहकी तरफ देखकर हँसने लगे, अंग्रेज कुछ समझा नहीं, परन्तु नारी-कण्ठके आकुल प्रश्नने उसके हृदयको स्पर्श किया। उसने नीचे पड़े हुए कम्बलको उठाकर पैरोंपर डालते हुए सिर्फ एक गहरी साँस ली और स्तब्ध चेहरेसे बाहरके अँधेरेकी तरफ देखने लगा।

अचलाके डब्बेके सामने पहुँच कर सुरेश ठिठककर खड़ा हो गया, भीतरकी तरफ देखकर डरते हुए उसने पूछा—तुम्हारा सूटकेस खुला कैसे पड़ा है? और उत्तरके लिए एक क्षण भी प्रतीक्षा न करके, जोरसे दरवाजा ढकेलकर, अचलाको बल-पूर्वक भीतर खींच ले गया और दरवाजा बन्द कर दिया।

सुरेशने उँगलीसे सूटकेस दिखाते हुए कहा—इसे खोला किसने?

अचलाने कहा—मैंने। पर इसे छोड़ो,—वे कहाँ हैं, मुझे दिखा दो चलकर,—नहीं तो बता दो सिर्फ कि किस तरफ हैं, मैं खुद ढूँढ लूँगी।—कहते कहते उसने दरवाजेकी तरफ कदम बढ़ाया ही था कि सुरेशने चटसे उसका हाथ पकड़ कर कहा—इतनी जल्दी क्यों? गाड़ी छूट गई है, देख रही हो?

अचला बाहर अन्धकारकी तरफ देखकर समझ गई कि बात ठीक है। गाड़ी चालू हो गई है। उसकी दोनों आँखोंमें निराशा मानो मूर्ति बनकर दिखाई देने लगी। वह मुड़कर खड़ी हो गई और उसी दृष्टिसे उसने सिर्फ क्षण-भरके लिए सुरेशके अत्यन्त पाण्डुर और श्रीहीन चेहरेकी तरफ देखा, और दूसरेही क्षण जड़से उखड़े पेड़की तरह धड़ामसे जमीनपर लोटकर दोनों हाथोंसे सुरेशके पाँव जकड़कर रो उठी—कहाँ हैं वे? उन्हें क्या तुमने सोती हालतमें गाड़ीसे ढकेल दिया है? रोगी आदमीकी हत्या करके तुम—

इतने बड़े भीषण आरोपको वह अन्त तक कह नहीं सकी। अकस्मात् उसके हृदय-विदारक रोनेसे मानो वह सौ धाराओंमें फूटकर, सुरेशको एकदम पत्थर बनाकर, चारों तरफ इसीके समान भयंकर उन्मत्त रात्रिमें जाकर विलीन हो गया,

और वहींपर; उस गद्दीदार बेञ्चपर बैठा हुआ सुरेश सिर्फ स्तब्ध होकर देखता रह गया। उसके पैरोंके पास क्या हो रहा था, उसे कुछ मालूम नहीं हुआ। बहुत देर बाद उसने पाँवोंको उठानेकी कोशिश करते हुए धीरे धीरे कहा—ऐसा काम मैं कर सकता हूँ, तुम्हें विश्वास होता है?

अचलाने उसी तरह रोते हुए कहा—तुम सब-कुछ कर सकते हो। हमारे घरमें आग लगाकर तुमने उन्हें जला मारना चाहा था। तुमने कहाँ क्या किया है, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे बता दो।—कहते हुए उसने फिरसे एक बार सुरेशके पाँव जकड़ लिए और उनपर अपना सिर धुनने लगी। परन्तु पाँव जिसके थे वह एकदम जड़ अचेतन-सा होकर चुपचाप आँखें फाड़-फाड़कर देखता रह गया।

बाहर मत्त रात्रि उसी तरह ऊधम मचाती रही, आकाशमें बिजली उसी तरह बार बार अन्धकारको चीरती-फाड़ती रही, उच्छृंखल आँधी-मेह उसी तरह सम्पूर्ण प्रकृतिको तहस-नहस करते रहे, परन्तु इन दोनों अभिशप्त नर-नारियोंके अन्ध हृदयोंमें जो प्रलय गरजने लगा, उसके आगे यह सब बाहरका ऊधम बिलकुल तुच्छ नाचीज़ होकर बाहर ही पड़ा रहा।

सहसा अचलाके जमीन छोड़कर तीरकी तरह उठ खड़े होते ही सुरेशका मानो स्वप्न टूट गया। उसने देखा, अगला स्टेशन नजदीक आ जानेके सबब गाड़ीकी चाल धीमी होती जा रही है। और अचला क्यों इस तरह खड़ी हो गई है, सो समझनेमें उसे देर नहीं लगी। अत्यन्त कोशिश करके अपनेको सम्हालते हुए सुरेशने दाहना हाथ बढ़ाकर उसे रोकते हुए कहा—बैठो! महिम इस गाड़ीमें नहीं है।

"नहीं हैं! तो कहाँ हैं वे?" कहती हुई अचला सामनेकी बेञ्चपर धप-से बैठ गई।

सुरेशने गौर किया, अचलाके चेहरेपरसे खूनका अन्तिम चिह्नतक लुप्त हो गया है। शायद, इतनी देर रोने-गिड़गिड़ाते और इतने सिर धुनते समय भी उसके हृदयमें सम्पूर्ण प्रतिकूल युक्तियोंके विरुद्ध भी एक प्रकारकी अव्यक्त अन्तर्निहित आशा थी कि शायद यह प्रचण्ड दुःस्वप्नकी दुस्सह वेदना नींद टूटते सिर्फ एक दीर्घनिःश्वासमें ही खतम हो जायगी और क्षणमें समस्त चराचर रंगीन हो उठेगा। यह आशा,—या ऐसी ही कोई अचिन्तनीय वस्तु, शायद अब तक उसके सम्पूर्ण हृदयको खाली करके बिदा नहीं हुई थी। क्योंकि अभी अभी तो उसमें दुनियाकी कामनाएँ सबकी सब मौजूद थीं! और अब एक रात भी न बीत पाई थी कि

उनमेंसे एक भी नहीं रही !—बिलकुल नहीं रही ! आँखके पलक पड़ते न पड़ते उसका जीवन एकदमसे दुर्भाग्यकी अन्तिम सीमा लाँघ गया ! इतनी बड़ी परिणाम-हीन विपत्तिमें अपने जीवित रहनेका शायद उसे किसी भी तरह विश्वास नहीं हो रहा था।

दोनोंके दोनों स्थिर बैठे रहे। गाड़ी जाकर एक अजान स्टेशनपर ठहरी और थोड़ी देर बाद चल भी दी।

सुरेशने एक बार कुछ कहनेकी कोशिश की, फिर कुछ देर तक चुप रहकर उठके खड़ा हो गया। फिर खिड़कीका काँच बन्द करके कई बार टहलकर सहसा अचलाके सामने खड़ा हो गया और बोला—महिम सही-सलामत है। अब तक शायद इलाहाबाद पहुँच गया होगा। फिर जरा ठहरकर बोला—वहाँसे जबलपुर भी जा सकता है, कलकत्ता भी लौट सकता है।

अचलाने धीरेसे मुँह उठाकर पूछा—हमलोग कहाँ जा रहे हैं ?

उस अश्रु-कलंकित चेहरेपर दुःख और निराशाकी चरम छाया फिर एक बार सुरेशके नजर पड़ी। उससे कितनी बड़ी गलती हो गई है, यह बात उससे छिपी नहीं रही, और इसके लिए वह आत्म-हत्या करनेको भी तैयार हो गया। परन्तु, जिसकी हजारों छलनाएँ उसकी सत्य-दृष्टिको इस तरह ढककर इस गलतीमें भी बार बार इशारा करती रही हैं, उस छलनामयीके विरुद्ध भी उसका सारा अन्तःकरण विषाक्त हो उठा। इसीसे वह अचलाके प्रश्नके उत्तरमें सहसा तीखे स्वरमें बोल उठा—शायद हम लोग सशरीर नरक ही जा रहे हैं; पर जिस अधः पतनका रास्ता दिखाकर तुम मुझे इतनी दूर तक खींच लाई हो उसमें बीचमें खड़ा नहीं हुआ जा सकता ! अब अन्त तक जाना ही पड़ेगा।

बात सुनकर अचलाका आपाद-मस्तक एक बार काँप उठा, पर वह निरुत्तर होकर सिर झुकाये रही। जो मिथ्याचारी कापुरुष पर-स्त्रीको इस तरह धोखेसे कुमार्गमें फुसला लाया है और बिना किसी संकोचके इतना बड़ा निर्लज्ज दोषारोप अपने मुँहसे कर सकता है, उससे कहने लायक किसीके पास क्या हो सकता है।

सुरेश फिर टहलने लगा। शायद इस पाषाण-प्रतिमाके सामने खड़े होकर बात करनेकी उसमें शक्ति नहीं थी। कहने लगा—तुम ऐसा भाव दिखा रही हो जैसे सिर्फ एक तुम्हारा ही सर्वनाश हुआ हो ! मगर सर्वनाशका जो सचमुच असर होता है वह मेरे लिए कहाँ तक पहुँच चुका है, जानती हो ? मैं तुम लोगोंकी

तरह ब्रह्मज्ञानी नहीं हूँ, मैं नास्तिक हूँ। मैं पाप-पुण्यकी खोखली आवाज नहीं करता, मैं ठोस सचमुचके सर्वनाशकी ही बात सोच रहा हूँ। तुम्हारे पास रूप है, आँखोंमें आँसू हैं,—औरतोंके पास जो कुछ अस्त्र-शस्त्र होते हैं वे सब तुम्हारे तूणीरमें जरूरतसे ज्यादा भरे पड़े हैं। उनके द्वारा तुम्हारे रास्तेमें किसी भी तरहकी रुकावट नहीं आयेगी। लेकिन मेरे पारिणामकी कल्पना कर सकती हो? मैं पुरुष हूँ, इसलिए मुझे जेलका रास्ता बन्द करनेके लिए अपने हाथसे अपनी छातीपर गोली चलानी पड़ेगी!—कहते-कहते सुरेश ठिठक कर खड़ा हो गया और हाथसे अपनी छाती दिखाने लगा।

अचलाने कुछ कहनेके लिए मुँह उठाया भी, पर फिर चुपचाप मुँह फेर लिया। उसकी आँखोंसे घृणा निकली पड़ रही थी, उसे देखकर सुरेश मारे क्रोधके जल-भुनकर खाक हो गया और बोला—मोरके पंख लगाकर कौआ कभी सुन्दर नहीं होता अचला! इस चितवनको मैं पहचानता हूँ, लेकिन यह तुम्हें शोभा नहीं देती। जिसे शोभा दे सकती है वह मृणाल है, तुम नहीं। तुम असूर्यम्पश्या हिन्दू-घरकी कुल-वधू नहीं हो, इतनेसे तुम्हारी जात नहीं मारी जायगी। तुम, जहाँ जी चाहे, उतरकर चली जाओ। मैं चिट्ठी लिखे देता हूँ, महिमको दिखा देना, वह तुम्हें अंगीकार कर लेगा। रुपये देता हूँ, अपने बापको दे देना।—उनका मुँह बन्द हो जायगा। तुम्हें चिन्ता किस बातकी है, यह ऐसा कौनसा अपराध है?

सुरेश फिर टहलने लगा, एक बार आँख उठाकर उसने देखा तक नहीं कि उसके जलते हुए शूलने कहाँ क्या काम किया? खाद्य-पदार्थके लोभसे जालमें फँस जानेके बाद जंगली पशु जैसे अन्ध-क्रोधमें जो कुछ पाता है, उसीको निष्ठुरतासे काट-काटकर फाड़ता-चीरता रहता है, ठीक उसी तरह सुरेशने भी अचलाको एकदम चीर-फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहा। सहसा बीचमें खड़े होकर बोल उठा—यह ऐसा कौनसा भयंकर अपराध है? पतिके घरमें खड़ी होकर उसके मुँहपर ही तुमने कहा था, किसी पर-पुरुषसे प्रेम करती हो,—सो क्या भूल गईं? जिस आदमीने घरमें आग लगाकर तुम्हारे पतिको मार डालना चाहा था, जैसा कि तुम्हारा विश्वास है, उसीके साथ वहाँसे चली आनेको तैयार हो गईं और चली भी आईं; याद आता है? उसीके घरमें, उसीके आश्रयमें रहकर छिप-छिप कर रोते हुए उसीके साथ चलनेके लिए अनुरोध किया,—याद है?

उससे भी क्या यह ज्यादा अपराध है? और भी न जाने कितनी लेन-देनकी बातें हैं! इसीसे तो आज मेरा इतना साहस हुआ! असलमें तुम एक गणिका हो, इसीसे तुम्हें फुसलाकर ले आया हूँ! सोचा था, पहले जरा चौंक उठोगी, बस! इससे ज्यादा तुमसे आशा नहीं की। तुमसे बार बार कहता हूँ अचला, तुम सती-सावित्री नहीं हो। वह तेज, वह दर्प तुम्हें शोभा नहीं देता, जॅंच नहीं देता। यह तुम्हारे लिए बिलकुल ही अनधिकार-चेष्टा है।

इतना कहकर सुरेश साँस रोककर निर्जीवकी भाँति ज्यों ही चुप हुआ, त्यों ही अचला मुँह उठाकर भग्नकण्ठसे चीत्कार कर उठी—आप रुकिये मत सुरेश बाबू, और भी कहते जाइये। मुझे कोंच-कोंच कर, दुनियामें जितनी भी कड़वी बातें हैं, जितने भी कुत्सित व्यंग हैं, जितना भी अपमान है,—सब करिये। कहकर वह जमीनपर औंधी पड़ रही और अवरुद्ध रोदनके विदीर्ण स्वरमें कहने लगी—यही मैं चाहती हूँ, इसीकी मुझे जरूरत है! यही हम लोगोंका सचमुचका सम्बन्ध है। संसारसे, भगवानसे, आपसे,—यही मेरी एकमात्र पानेकी चीज है।

सुरेश दीवारके सहारे पत्थर-सा खड़ा होकर देखने लगा। अचलाका सुदीर्घ केश-भार तितर-बितर होकर जमीनपर लोटने लगा, उसके पानीमें भीगे हुए कपड़े धूल-मिट्टीसे मैले और गंदे हो उठे, परन्तु उसकी तरफ सुरेश कदम न बढ़ा सका। नया शिकारी जैसे अपनी पहली मारी हुई चिड़ियाकी मृत्यु-यन्त्रणाको अवाक् होकर देखता रहता है, उसी तरह वह अपनी आँखोंकी निर्निमेष दृष्टिसे मानो किसी एक मरणाहत नारीके अन्तिम क्षणोंका साक्षी बनकर खड़ा रहा।

फिर गाड़ीकी चाल धीमी पड़ी और धीरे धीरे वह स्टेशनपर खड़ी हो गई। सुरेशने सीधे खड़े होकर शान्त स्वाभाविक स्वरमें कहा—लोग तुम्हें इस हालतमें देखेंगे तो ताज्जुब करेंगे। तुम उठके बैठ जाओ, मैं अपने डब्बेमें जाता हूँ। सबेरा होनेपर तुम जहाँ उतरना चाहोगी, मैं उतार दूँगा; जहाँ जाना चाहोगी, मैं भेज दूँगा। इस बीचमें कोई भयंकर बात करनेकी कोशिश न करना, उसेस कोई लाभ नहीं होगा। इतना कहकर सुरेश दरवाजा खोलकर उतर गया और सावधानीसे दरवाजा बन्द करके, न-जाने क्या सोचकर कुछ देर तक चुपचाप बाहर खड़ा रहा। उसके बाद भीतर झाँककर बोला—तुम मेरी बात समझोगी नहीं, परन्तु इतना सुन रखो कि इस समस्याके हल करनेका भार मैं ही लेता हूँ। अब तुम्हारा कोई अमंगल नहीं होगा,—यह सारा ऋण मैं कौड़ी

कौड़ी चुका जाऊँगा। और धीरे धीरे वह अपने डब्बेकी तरफ चला गया।

गाड़ीके लगातार और एकरस शब्दके ठहरनेके साथ साथ हर बार सुरेशकी तन्द्रा तो टूट जाती थी; पर आँखोंके पलक खोलकर देखनेकी शक्ति अब उसमें नहीं रही थी। भीगे कपड़ोंमें उसे बहुत जाड़ा मालूम हो रहा था। वास्तवमें वह बीमार पड़ सकता है और मौजूदा हालतमें वह किस भयंकर परिस्थितिमें है, यह भी भीतर ही भीतर समझ रहा था; परन्तु कपड़े बदलनेकी कोशिश असाध्य अभिलाषा-सी मालूम दे रही थी। ठीक इसी समय उसके कानमें एक सुपरिचित पुकार पहुँची—कुली!—उसने अधजगे तौरपर आँख खोलके देखा: गाड़ी किसी स्टेशनपर खड़ी है, और रातका अँधेरा दूर होकर थमी हुई वर्षाके बादलोंमें एक तरहका धुँधला प्रकाश फैला हुआ है। देखा, कितने ही लोग उतर रहे हैं और कितने ही चढ़ रहे हैं,—और उन्हींके बीचमें खड़ी एक शोकाच्छन्न रमणी मूर्ति न जाने किसके लिए साग्रह प्रतीक्षा कर रही है। यह अचला है। एक कुलीके माथेपर अपने चमड़ेका बड़ा सूटकेस लादकर गाड़ीसे उतरते ही उसने उससे कोई बात पूछी और धीरे धीरे गेटकी तरफ जाने लगी।

सुरेश निश्चेष्ट-भावसे सिर्फ देख ही रहा था। शायद, उसकी आँखोंकी दृष्टिका भीतर घुसनेकी राह नहीं मिल रही थी। परन्तु गाड़ी छूटनेकी घण्टीके शब्दने प्लाटफार्मके एक छोरसे दूसरे छोर तक सहसा ध्वनित होकर बिजलीके स्पर्शकी तरह उसके शरीर और मनको एक क्षणमें एक साथ हिलाकर उसकी सारी जड़ताको दूर कर दिया, और लहमे-भरमें वह अपना सूटकेस उठाकर दरवाजा खोलके बाहर आ खड़ा हुआ।

टिकटकी बात अचलाको याद ही नहीं थी। गेटके पास टिकट-बाबूको देखते ही वह ठिठककर खड़ी हो गई, इतनेमें सुरेशने पीछेसे स्निग्ध कण्ठसे कहा—खड़ी मत होओ, चलो, मैं टिकट देता हूँ।

सुरेशके आनेका अचलाको पता नहीं था। क्षण-भर संकोच और भयसे उसके पाँव नहीं उठे, परन्तु उस संकोचपर दूसरे किसीकी नज़र पड़नेके पहले ही वह धीरे धीरे बाहर चली गई।

बाहर पहुँचकर दोनोंमें निम्नलिखित बातचीत होने लगी:

सुरेशने कहा—मैंने सोचा था कि तुम सीधी कलकत्ते लौट जाना चाहोगी, अचानक डेहरीमें क्यों उतर पड़ीं? यहाँ कोई परिचित है क्या?

अचला दूसरी तरफ देख रही थी, उधर ही देखते हुए उसने कहा—कलकत्ते में किसके पास जाती ?

"मगर, यहाँ ?"

अचला चुप रही। सुरेश खुद भी कुछ देर मौन रहकर बोला—मेरी किसी बातपर शायद अब तुम विश्वास न कर सकोगी, और इसके लिए मेरी तरफसे कोई नालिश भी नहीं, मैं सिर्फ तुमसे अन्त समयमें कुछ भीख चाहता हूँ।

अचला पूर्ववत् चुप रहकर स्थिर खड़ी रही।

सुरेशने कहा—मेरी बात किसीको समझानेकी जरूरत नहीं, और न मैं समझाना ही चाहता हूँ। मेरी चीज मेरे ही साथ रहे। जहाँ जानेसे यहाँकी आग मुझे फिर जला न सके, आज मैं उसी देशकी राह लेता हूँ; लेकिन मेरी अन्तिम पूँजी तुम मुझे दे दो, मैं हाथ जोड़कर तुमसे प्रार्थना करता हूँ।

फिर भी अचलाके मुँहसे एक बात भी नहीं निकली। सुरेश कहने लगा—मैंने तुम्हें बहुत-सी कड़ुई बातें कही हैं, बहुत कष्ट दिया है; परन्तु मेरे बाद कोई अपने सदाचरणका दम्भ कर ऊपर बैठकर तुम्हारे माथेपर कलंककी स्याही छिड़ककर काला कर दे, यह मुझसे मर जानेपर भी न सहा जायगा। मेरे लिए तुम्हें आगे दुःख न सहना पड़े, बिदा होनेके पहले मुझे तुम इतनेसे मौकेकी भीख दे जाओ, अचला !

उसके स्वरमें क्या था, सो अन्तर्यामी ही जानें; अकस्मात् गरम आँसुओंसे अचलाकी आँखें भर गईं। मगर फिर भी उसने अपने कण्ठको जी जानसे अविकृत रखते हुए मृदु स्वरमें कहा—मुझे क्या करना होगा, बताइये ?

सुरेशने जेबमेंसे टाइम-टेबिल निकालकर गाड़ीका वक्त देखकर कहा—तुम्हें कुछ भी न करना होगा। मगर शामके पहले जब कि किसी भी तरफ जानेका कोई चारा नहीं है, तब इतनेसे समयके लिए तुम मुझपर अविश्वास न करो, मैं सिर्फ इतना ही चाहता हूँ। मुझसे अब तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं होगा, यह बात तुम्हारे नामपर सौगन्द खाकर मैं कहता हूँ।

उत्तरमें अचलाने कुछ भी नहीं कहा; परन्तु इतना मालूम हो गया कि इसमें उसकी सम्मति है।

लोगोंकी दृष्टि और कुतुहल आकर्षित होनेकी आशंकासे स्टेशन लौटकर छोटेसे वेटिंग-रूममें बैठनेकी दोनोंमेंसे किसीकी भी प्रवृत्ति नहीं हुई। पता

लगानेपर मालूम हुआ कि बड़ी सड़कपर ही बादशाह शेरशाहके नामपर एक सराय अब भी मौजूद है। शहरके एक किनारे उसीमें ठहरनेकी गरजसे दोनों, क्षण-भरके लिए अपना मर्मान्तक दुःख भूलकर, एक बैलगाड़ीपर सवार होकर चल दिये।

रास्तेमें किसीने किसीसे कोई बात नहीं की, किसीने किसीके मुँहकी तरफ भी नहीं देखा। सिर्फ, बैलगाड़ी जाकर जब सरायके आँगनमें खड़ी हुई, तब गाड़ीसे उतरते वक्त क्षण-भरके लिए सुरेशके चेहरेपर दृष्टि पड़ते ही अचला मन ही मन सिर्फ विस्मित ही नहीं हुई, उद्विग्न हो उठी। उसकी आँखें लाल-सुर्ख हो रही थीं, और मुँहपर मानो किसीने स्याही पोत दी थी। दुनियाकी बहुतसी आफत-बिपतमें उसने उसे देखा है; पर उसकी ऐसी मूर्ति भी उसने पहले कभी देखी है, उसे खयाल नहीं आया।

गाड़ीवानको किराया चुकाकर बिदा क देनेके बाद सुरेशने अपना मनीबेग वहीं रखकर कहा—यह फिलहाल तुम्हारे ही पास रहा, अगर कुछ जरूरत पड़े, तो शरमाना मत।

अचलाके मनमें आई कि पूछे, इसके मानी क्या हैं? मगर वह पूछ न सकी। सुरेशने कहा—यह सामनेकी कोठरी ही शायद कुछ अच्छी है, तुम जरा आराम करो; मैं बगलकी किसी कोठरीमें जाकर कपड़े बदल आऊँ। मालूम नहीं, शायद इन्हींकी वजहसे ऐसा भद्दा दीख रहा हूँ।—कहकर वह अचलाकी सुविधा-असुविधाका जरा भी खयाल न करके, अपना सूटकेस उठाकर, ठीक शराबीकी तरह लड़खड़ाता हुआ बरामदा पार होकर कोनेकी कोठरीमें घुस गया।

उसके चले जानेपर अचला रास्तेके किनारे अकेली खड़ी न रह सकी। इसी लिए उसने बड़ी मुश्किलोंसे अपना भारी सूटकेस खींचकर सामनेकी कोठरीमें ला पटका। उसपर बैठकर वह स्तब्ध भावसे रास्तेके लोगोंका आना-जाना देखने लगी।

२९

उस कोठरीके सामने बकसपर बैठे बैठे आशा और आश्वासनके स्वप्नमें कैसे घंटा-भर बीत गया, इसका अचलाको कुछ पता ही नहीं चला। सूर्योदय हुए कुछ ही देर हुई है। शीतऋतुके धूलि-धूसरित पेड़-पौधे कलके आँधी-मेहमें नहाकर निर्मल हो चुके हैं और इसलिए आज प्रभातकी सूर्यकिरणोंके पड़नेसे झलमला रहे हैं। भीगे

हुए स्निग्ध राजपथपर विगत-क्लेश प्रफुल्लचित्त पथिकोंका जाना-आना शुरू हो गया है; कभी कभी दो-एक इक्के छोटे छोटे घंटोंके शब्दसे चारों दिशाएँ मुखरित करते हुए दौड़ जाते हैं; और बीच बीचमें अहीरोंके लड़के गाय-भैसोंका झुंड लिये अद्भुत और असम्भव रिश्तोंकी उच्च कण्ठसे घोषणा करते हुए खेतोंकी तरफ चले जाते हैं। पासकी किसी झोंपड़ीसे चक्कीके शब्दके साथ गृहस्थ-वधूका अपरिचित गीतका स्वर बहा चला आ रहा है। कुल मिलाकर यह जो एक नये दिनका कर्मस्रोत अपनी चेतनासे धीरे धीरे गतिशील हो रहा है, उसके विचित्र प्रवाहमें अचलाका दुःख, उसका दुर्भाग्य, उसकी दुश्चिन्ता,—कुछ देरके लिए मानो और ही कहीं बही जा रही थी। ठीक किस लिए और क्यों वह इस तरह बैठी है, इस बातका उसे कुछ भी खयाल न था। अकस्मात् उसे खयाल आया दो गाँवके लड़कोंकी विस्मित दृष्टि देखकर। वे आँगनके एक किनारे खड़े आँखें फाड़ फाड़ कर आश्चर्यसे चुपचाप उसे देख रहे थे। इस खंडहर-मलिन पान्थशालाके प्राचीन समयके गौरवका इतिहास उन लड़कोंको मालूम नहीं था; परन्तु उनकी नीरव विस्मित चितवनने यह बात अचलाको स्पष्ट जता दी कि जबसे उन लोगोंने होश सम्हाला है, ऐसे विशिष्ट अतिथिका समागम इस सरायमें कभी नहीं हुआ। जागनेके बाद वे अपना नित्य-नियमित खेल खेलने आये थे, सहसा आज उनकी इस आश्चर्य-घटनापर दृष्टि पड़ गई।

अचला चौंककर उठ खड़ी हुई और शायद उनसे कुछ पूछना चाहती थी, पर लड़के दोनों पलक मारते ही गायब हो गये। इसी समय उसे याद आया, करीब दो घंटे हुए होंगे, सुरेश कपड़े बदलनेका नाम लेकर कोठरीमें घुसा, सो फिर लौटा ही नहीं। इतनी देरसे वह अकेला क्या कर रहा है, यह जाननेके लिए वह धीरे धीरे आगे बढ़कर उस कोठरीके सामने पहुँच गई। बंद दरवाजेके भीतरसे कुछ आहट न पाकर मिनट-भर चुपचाप खड़ी रही, फिर धीरेसे दरवाजा खोलकर जो देखा उससे एक ही साथ मुक्तिके तीव्र आवेग और विकट भयसे क्षण-भरके लिए उसका सारा शरीर और मन पत्थर हो गया। अँधेरी कोठरी थी, सिर्फ एक टूटी खिड़कीमेंसे थोड़ा-सा उजाला आकर जमीनपर पड़ा था। वहींपर, उस अँधेरे उजालेमें, धूल-रेतपर सुरेश चित पड़ा सो रहा है। उसके बदनपर वही कपड़े थे जो पहले पहने हुए था; सिर्फ खुले हुए सूटकेसकी कुछ चीजें इधर उधर बिखर रही थीं।

लहमे-भरमें उसके अन्तिम शब्द अचलाको याद आये। यह भी खयाल आया कि वह डाक्टर है, उसने सिर्फ आदमीकी ज़िन्दगी बचाना ही नहीं सीखा होगा, बल्कि उसे धीरेसे बाहर निकालनेकी तरकीब भी उसे मालूम होगी। फिर याद आई अपनी इस भयंकर भूलके लिए उसकी उत्कट आत्मग्लानि, याद आया उसका वह बिदाई चाहना और आश्वासन देना; और सबसे बढ़कर उसका वह बार बार प्रायश्चित्त करनेका निष्ठुर इशारा;—इन सबने मिलकर एक साथ एक साँसमें मानो उस जमीनपर पड़ी देहके एकमात्र परिणामकी बात उसके कानमें धीरेसे कह दी। वहींपर दरवाजा पकड़ कर वह धीरे धीरे बैठ गई,—उसे इतना साहस न हुआ कि वह कोठरीके भीतर घुसे।

अब तो, उस अचेतन देहकी तरफ देखकर उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। जो उसीके लिए इतनी बड़ी बदनामीका बोझ सिरपर लादे हताश होकर इस तरह संसारसे हमेशाके लिए बिदा हो गया, फिर उसका अपराध कितना ही बड़ा क्यों न हो, उसे क्षमा न कर सके, ऐसे कठोर-हृदय संसारमें कम ही होंगे। और आज ही पहले-पहल उसे अपना अपराध भी स्पष्ट होकर दिखाई दिया।

सुरेशके साथ उस प्रथम दिनके परिचयसे लेकर अब तक जो-कुछ भी कामना-वासना, भूल-भ्रांति, मोह, छल, आग्रह-आवेग दोनोंमें प्रवाहित होता रहा है, सब एक एक करके दिखाई देने लगा। उसका अपना आचरण, अपने पिताका आचरण,—अकस्मात् उसका सारा शरीर सिहर उठा और उसे ख्याल आया—सिर्फ अपना ही नहीं, बहुतोंके बहुत पातकोंका भारी बोझ ढोता हुआ ही आज सुरेश जिस न्यायकर्ताके चरणोंमें पहुँचा है, वहाँ वह चुपचाप मुँह बंद करके सम्पूर्ण दण्ड स्वीकार कर लेगा, अथवा एक एक करके सब दुःख और अभियोग व्यक्त करके उनसे क्षमाकी भीख माँगेगा।

इस आदमीके पास संसारमें उपभोग करने-योग्य बहुत साज-सरंजाम और उपकरण संचित थे, फिर भी वह जो चुपचाप, लेशमात्र आडम्बर बगैर किये सब-कुछ त्यागकर चला गया,—इसकी गभीर वेदना अचलाको रह रह कर चुभने लगी। वह उसे वास्तवमें हृदयसे चाहता था,—इस बातको आज इस मृत्युके सामने खड़ी होकर पूछने या अविश्वास करनेका जरा भी मौका न रहा!

फिर उसके दोनों कपोलोंसे टप टप आँसू टपकने लगे। पिछली रातको गाड़ीमें उन दोनोंमें बहुतसी कड़ुई बातें और धर्म-अधर्म न्याय-अन्यायकी बहस हो चुकी

है। परन्तु वह उसका कितना बड़ा अर्थहीन प्रलाप था! अचलाको तब इसका क्या भेद मालूम था! प्रेमकी तो कोई जाति नहीं, कोई धर्म नहीं,—विचार-विवेक और भलाई-बुराईका उसे कुछ ज्ञान नहीं। जो इस तरह मर सकता है वह तो समाजके हाथके बनाये इन सब कायदे-कानूनोंके बहुत ऊपर है; ये सब विधिनिषेध उसे स्पर्श भी नहीं कर सकते;—इस मृत्युके सामने खड़ी होकर आज वह इस बातको कैसे अस्वीकार कर सकती है?

अचला आँचलसे आँखें पोंछ रही थी; सहसा उसकी छाती धक्से हो उठी; उसे मालूम हुआ कि लाश जैसे जरा हिल उठी हो, और दूसरे ही क्षण अस्फुट आर्तस्वरके साथ सुरेशने करवट बदला। तो वह मरा नहीं, जीवित है! एक प्रचण्ड आग्रहके वेगसे अचला दौड़कर उसके पाँवोंपर जा पड़ी, बोली—सुरेश बाबू!

बुलाहट सुनकर सुरेशने अपनी लाल सुर्ख आँखें खोलकर देखा, पर कुछ बोला नहीं।

अचलासे भी फिर कुछ बोला नहीं गया; सिर्फ अदम्य वाष्पोच्छ्वास उसके कण्ठको रोककर आँसुओंके रूपमें निरन्तर झरने लगा। परन्तु क्षण-भर पहलेके आँसुओंके साथ इन आँसुओंमें कितना भेद है!

और, सारी चिन्ताओंसे जादा जो चिन्ता भीतर ही भीतर अत्यन्त गुप्त रूपसे उसे पीड़ित कर रही थी वह थी इसकी वास्तविक दिशा। इस अनजान अपरिचित स्थानमें सुरेशकी लाशका वह कैसे क्या करती, किसे बुलाती, किससे कहती? ऐसा भी हो सकता था कि बहुतसी अप्रिय आलोचना और कुत्सित प्रश्न उठते। उनका वह क्या जवाब देती? सम्भव था कि पुलिस खींच-तानकर सब बातोंका पता लगा लेती। इस सब उघड़ी हुई नग्न प्रकटताकी लज्जासे उसका सारा शरीर और मन भीतर ही भीतर कैसा पीड़ित और क्लिष्ट हो उठा था, इसकी पूरी अनुभूति शायद उसे खुद भी नहीं हुई थी। अब उस विपत्तिकी असीम लांछनासे अकस्मात् छुटकारा पाकर उसका रोना रोके न रुका; और वह मरा नहीं है, सिर्फ इसी एक बातसे सुरेशके प्रति उसका सम्पूर्ण हृदय ऊपरतक कृतज्ञतासे भर गया।

कुछ देर इसी तरह बीत जानेपर सुरेशने धीरेसे पूछा—रोती क्यों हो अचला?

अचला रुँधे हुए कंठसे कहने लगी—क्यों तुम इस तरह पड़ रहे? आये क्यों

नहीं ? क्यों मुझे इतना डरा दिया ?

उसके स्वरमें जो स्नेह उमड़ पड़ा था, वह इतना करुण और इतना मधुर था कि उसने सिर्फ सुरेशके अन्दर ही, न बल्कि स्वयं उसके अन्दर भी न जान कैसा एक तरहका मोह संचारित कर दिया। उसने फिर कहा—तुम्हें अगर ऐसी जोरकी नींद आ रही थी तो मुझसे कहा क्यों नहीं ? मैं उधरकी बड़ी कोठरी झाड़-बुहारकर उसमें कुछ बिछाकर तुम्हारे लिए बिस्तर कर देती। गाड़ीमें तो अभी बहुत देर थी।

सुरेशने कुछ जवाब नहीं दिया, सिर्फ विगलित स्नेहसे उसके मुँहकी तरफ देखकर धीरेसे हाथ बढाया और उसका दाहिना हाथ उठाकर अपने गरम माथेपर रखकर एक गहरी साँस ली।

अचलाने चौंककर कहा—अरे, यह तो बहुत गरम है ! तुम्हें बुखार आ गया क्या ?

सुरेशने कहा—हूँ, और यह बुखार आसानीसे छूटेगा, ऐसा नहीं मालूम होता। शायद—

अचलाने अपना हाथ धीरे धीरे खींच लिया, और प्रत्युत्तरमें उसके मुँहसे भी अबकी बार सिर्फ एक दीर्घ निःश्वास निकल गया। उसका उमड़ता हुआ स्नेह-मोह एक क्षणमें मानो जमकर पत्थर हो गया। सहनेकी,—धैर्य रखनेकी उसमें जो कुछ भी शक्ति थी, सबकी सब इकट्ठी करके उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि वह स्थिर होकर आजका दिन, गाड़ीके समय तक, किसी कदर बिता देगी; परन्तु इस अचिन्तनीय और अपूर्व-कल्पित विपत्तिके बादलोंसे उसकी आशाकी क्षीण रेखा भी जब पलक मारते ही अन्तर्हित हो गई, तब मृत्युके सिवा संसारमें और किसी दूसरी चीजकी उसे चाह नहीं रही।

सुरेशको इस तरह यहाँ अकेला छोड़कर जानेकी बात वह सोच ही न सकी; परन्तु जिसकी बीमारीका सारा दायित्व,—सारा बोझ उसके माथेपर आ पड़ा है, उसे लेकर इस अपरिचित स्थानमें वह क्या करेगी, कहाँ किसके पास जाकर सहायताकी भीख माँगेगी, किस परिचयसे मनुष्यकी सहानुभूति अपनी तरफ खींचेगी, दिन-रात कैसा भयानक अभिनय करना पड़ेगा,—ये सब चिन्ताएँ बिजलीकी तरह उसके दिमागमें दौड़ने लगीं। उसकी कुछ समझमें नहीं आ रहा था कि वह इस समय क्या करे ?—कहीं भाग खड़ी हो, दहाड़ मारकर रोये, या जोर जोरसे सिर धुनकर इस अभिशप्त जीवनका अभिनय हाथों हाथ खतम करके निश्चिन्त हो जाय!

३०

उस दिन स्टेशनसे लौटते समय रास्तेमें कुछ कुछ पानीमें भीग जानेसे केदार बाबू सात-आठ दिन तक गठियाके दर्द और सरदीके बुखारमें पड़े रहे। लड़की दामादका कुशल-संवाद न आनेसे वे अत्यन्त चिन्तित रहे, पर जबलपुरके अपने मित्रको एक पोस्टकार्ड लिखनेके सिवा और विशेष-कुछ कर न सके। आज उसका जवाब आया है: वहाँ कोई नहीं पहुँचा और उन्हें किसीका भी पता नहीं,—सिर्फ इतनी खबर दी है। इन पंक्तियोंको बार बार पढ़कर सफेद-फक चेहरे और शून्य दृष्टिसे बाहरकी तरफ देखते हुए वे बार बार चश्मेका काँच पोछने लगे। उनका क्या हुआ, कहाँ गये, उनकी खबरके लिए वे किसे बुलावें, कहाँ चिट्ठी लिखें, किससे पूछें,—कुछ भी उनकी समझमें न आया। उनकी सभी आफत-बिपतमें जो व्यक्ति तन-मन-धनसे सहायता करता था वह सुरेश भी नहीं हैं। वह भी साथ गया है।

ठीक इसी समय नौकरने आकर एक चिट्ठी उसके सामने रख दी। केदार बाबूने किसी कदर नाकपर चश्मा चढ़ाकर व्यग्रताके साथ उसे हाथमें उठाकर देखा, चिट्ठी उनकी कन्या अचलाके नाम है। स्त्रियों-जैसी साफ लिखावट है। किसने चिट्ठी लिखी, कहाँसे आई,—यह जाननेके आग्रहसे दूसरेकी चिट्ठी खोलने न खोलनेका प्रश्न ही उनके मनमें न उठा; चटसे उन्होंने लिफाफा फाड़ कर चिट्ठी खोल डाली और सबसे पहले लिखनेवालीका नाम देखा, लिखा है, 'तुम्हारी मृणाल'। उसके बाद उन्होंने इस चिट्ठीको बार-बार पढ़ा, और फिर बाहरकी ओर शून्य दृष्टिसे देखते हुए चश्मा पोंछनेमें लग गये। उनके मनमें क्या क्या होने लगा, सो परमात्माहीने जाना। बहुत देर बाद चश्मा पोंछनेका काम स्थगित करके और उसे यथास्थान रखकर एक बार आद्योपान्त चिट्ठी पढ़नेमें लग गये। मृणालने स्त्रीकी सहिष्णुता, क्षमा, धैर्य आदिके विषयमें तीव्र मधुर अनेक प्रकारके उपदेश देकर अन्तमें लिखा है—

"यद्यपि भइया तुम्हारे विषयमें कुछ भी नहीं कहते, और पूछनेपर बहुत ज्यादा गम्भीर हो जाते हैं, तो भी मैं तो स्त्री हूँ,—मैं तो सब समझ सकती हूँ! अच्छा बहन, लड़ाई-झगड़ा किसके नहीं होता, बताओ? मगर इससे क्या इतना रूठना चाहिए? तुम्हारे पति अपने शरीर और मनकी मौजूदा हालतमें

बिना समझे गुस्सा भी हो सकते हैं, अधीर होकर चले भी जा सकते हैं; लेकिन तुम तो अभी पागल नहीं हुई हो जो उनके यह कहते ही कि ‘जाऊँगा’, तुमने चटसे हाँ में हाँ मिलाकर कह दिया कि हाँ जाओ, वनवासको। यही तो मैं बराबर सोच रही हूँ बहन, कि कैसे तुमने कलेजा थामकर अपने ऐसे अधमरे पतिको इतनी आसानीसे इस जंगलमें डाल दिया और डालकर चुपचाप होकर, सात-आठ दिन कहूँ या सात-आठ साल निश्चिन्त मनसे मायकेमें बैठी हो! सच कहती हूँ, उस दिन जब वे सामान लेकर घरमें घुसे, सहसा मैं पहचान नहीं सकी! तुम लोगोंमें झगड़ा क्यों हुआ, कब हुआ, किस लिए जबलपुर जानेके बदले वे देश लौट आये,—ये सब बातें मुझे कतई मालूम नहीं और न जानना ही चाहती हूँ। पर, तुम्हें मेरे सरकी कसम है, तुम चिट्ठी पाते ही चली आना। तुम तो जानती ही हो बहन, सासको छोड़कर मेरा कहीं जाना नहीं होता। फिर भी शायद मैं जाकर तुम्हारे पाँव पकड़कर खींच लाती अगर भइयाकी इतनी ज्यादा तबीयत खराब न होती। एक बार आओ, एक बार अपनी आँखोंसे इन्हें देखो, तब समझोगी कि इस तरह असमयमें रूठकर तुमने कितना बड़ा अन्याय किया है। यह घर भी तुम्हारा है, मैं भी तुम्हारी ही हूँ; इसलिए इस घरमें आनेमें जरा भी दुविधा न करना। तुम्हारी राह देखती रहूँगी।” तुम्हारे श्रीचरणोंमें कोटि कोटि प्रणाम। एक बात और है। मेरी इस चिट्ठीकी बात भइयाको न मालूम पड़े, मैंने उनसे छुपाकर लिखी है। समझीं! तुम्हारी–मृणाल।

चिट्ठी खतम करके मृणालने ‘पुनश्च’ लिखकर एक कैफियत दी है कि मैं समझती हूँ, पतिकी अनुपस्थितिमें तुम सुरेशके घर न रहोगी, इसलिए तुम्हारे मायकेके पतेपर चिट्ठी दे रही हूँ। आशा है, यह पत्र तुम्हारे पास पहुँचनेमें देर न लगेगी।

केदार बाबूके हाथसे चिट्ठी छूटकर नीचे गिर गई, वे फिर एक बार शून्यकी तरफ देखते हुए चश्मा पोंछनेके काममें लग गये। उन्हें इतना समझमें आ गया कि महिम जबलपुरके बदले उसके गाँवमें है, और अचला वहाँ नहीं है। वह कहाँ है, उसका क्या हुआ,—ये सब बातें या तो महिमको मालूम नहीं, या फिर जान-बूझकर वह प्रकट करना नहीं चाहता।

सहसा खयाल आया, आखिर सुरेश कहाँ है? वह तो उनका अतिथि होनेके लिए साथ गया था! वह घर तो लौटा ही नहीं है, नहीं तो एक बार मिलता

जरूर। इसके बाद पिताकी छातीमें एक आशंका अकस्मात् शूलकी तरह आ चुभी, उसकी चोटसे फिर उनसे सीधे बैठे न रहा गया, उसी आराम कुरसीपर लेट गये और आँखें मूँद लीं।

दोपहरको दासी सुरेशके घरसे समाचार लेकर आई कि उनकी बुआजीको कुछ भीं नहीं मालूम। कोई चिट्ठी-पत्री न मिलनेसे वे भी अत्यन्त चिन्तित हैं।

रातको एकान्त शयनगृहमें केदार बाबू बत्तीके उजालेमें फिर एक बार मृणालकी चिट्ठी लेकर बैठ गये। उसके प्रत्येक अक्षरकी छान-बीनके साथ आलोचना करने लगे, शायद खड़े होने लायक कोई जगह मिल जाय। नहीं तो वे कहाँ जाकर कैसे अपना मुँह छिपायेंगे,—उनकी समझमें नहीं आ रहा था। हमेशा वंश-परम्परासे वे कलकत्ते रह रहे हैं; कलकत्तेके बाहर कहीं कोई शरीफ आदमी जिन्दा भी रह सकता है, इस बातको वे सोच भी नहीं सकते थे। इस आजन्म-परिचित स्थान, समाज और हमेशाके बन्धु-बान्धव,—सबोंसे अलग होकर कहीं कभी अज्ञात वासमें अगर उन्हें अन्तिम जीवन बिताना पड़ा, तो वे दुःसह दुर्भर दिन कैसे बीतेंगे,—यह उनकी चिन्ताके बाहरकी बात थी; और लड़की होकर जिस अभागिनीने ऐसे कठोर दण्डका बोझ अपने रुग्ण वृद्ध पिताके अशक्त सिरपर लाद दिया, उसे क्या कहकर अभिशाप दिया जाय, यह भी उनकी चिन्ताके बाहरकी बात हो गई।

सारी रातमें एक बार भी वे पलक बन्द न कर सके और सबेरेके करीब उन्हें अम्लपित्तकी शिकायत हो गई। परन्तु आज अपना कहनेको दुनियामें जब उन्हें कोई भी दिखाई न दिया, तो निर्जीवकी तरह खाटपर पड़े रहनेमें भी उन्हें घृणा मालूम हुई। इतनी बड़ी वेदनाको आज उन्होंने शान्त मुखसे अपनी छातीके अन्दर छिपा लिया और अन्य दिनकी भाँति बाहर आये; और स्टेशनके लिए गाड़ी लानेको आदमी भेजकर बेहरासे झटपट कपड़ेलत्ते सम्हाल लेनेके लिए कह दिया।

३१

शीतका सूर्य शामको अस्त होनेकी तैयारी कर रहा था, और उसकी कम गरम किरणोंसे सोन-नदीके किनारेका बालुकामय मैदान धाँय धाँय कर रहा था। इसी समय एक बंगलेके बरामदेपर रेलिंगके सहारे खड़ी अचला चुपचाप उस तरफ देख रही थी। उसके अपने जीवनके साथ उस दग्ध मरु-खण्डका कोई सम्बन्ध

था या नहीं, यह दूसरी बात है; पर उसकी अपलक दृष्टिकी तरफ एक क्षण देखते ही समझा जा सकता था कि इस तरह ताकते रहनेसे कुछ दिखाई नहीं देता, बल्कि सारा संसार एक विचित्र और विराट छाया-बाजीकी तरह प्रतीत होता है।

"जीजी?"

अचलाने चौंककर पीछेकी ओर देखा। जो युवती एक दिन 'राक्षसी'के नामसे अपना परिचय देकर आरा स्टेशनपर उतर गई थी, यह वही है। पास पास आकर अचलाके उद्भ्रान्त और अत्यन्त श्रीहीन चेहरेकी तरफ क्षण-भर देखकर उसने अभिमानके स्वरमें कहा—अच्छा जीजी, सभी देख रहे हैं कि सुरेश बाबू अच्छे हो गये हैं, और डाक्टर कहते हैं कि कुछ भी डर नहीं; फिर भी दिन-रात तुम्हारी चिन्ता दूर नहीं होती! मुँहसे हँसी निकलती ही नहीं! यह क्या तुम्हारी ज्यादती नहीं है? हमारे भी आखिर मालिक हैं, लेकिन कसम खाके कहती हूँ बहन, तुम्हारे साथ उनकी तुलना ही नहीं होती।

अचलाने मुँह फेरकर सिर्फ एक गहरी साँस ली, कुछ जवाब नहीं दिया।

राक्षसीने गुस्सा होकर कहा—ओफ्-हो! फूसकार कर गहरी साँस क्यों ले रही हो?—इसके बाद, जब अचलासे जवाब नहीं मिला तब उसका हाथ अपनी मुट्ठीमें लेकर कुछ देर तक चुप रहकर, अत्यन्त करुण स्वरमें कहा—अच्छा सुरमा जीजी, सच सच बताओ बहन, हमारे मकानमें तुम लोगोंका जरा भी मन नहीं लगता, न? शायद बहुत ही दिक्कत और तकलीफ हो रही है, सच है न?

अचला नदीकी तरफ जैसी देख रही थी वैसी ही देखती रही; मगर इस बार जवाब दिया; बोली—तुम्हारे ससुर साहबने मेरा जो उपकार किया है, उसे क्या इस जन्ममें मैं भूल सकती हूँ बहन!

राक्षसी हँस दी; बोली—भूलनेके लिए ही जैसे मैं खुशामद करती फिरती हूँ! और दूसरे ही क्षण कृत्रिम उलहनेके स्वरमें कहने लगी—और इसीलिए शायद बाबूजीके इतने बुलानेपर भी उत्तर नहीं दिया? तुमने सोचा होगा कि बुड्ढा जब है तब—

अचला अत्यन्य आश्चर्यके साथ सामने मुँह फेरकर कह उठी—नहीं, ऐसा हरगिज नहीं हो सकता—

राक्षसीने जवाब दिया—नहीं, सो थोड़े ही हो सकता है! मान भी लेती, अगर मैं गवाह न होती। ठाकुरद्वारेमें मेरे कानों तक आवाज पहुच गइ—

सुरमा! ओ सुरमा बेटी!—चार-पाँच बार सुना, बाबूजी बुला रहे हैं तुम्हें। पूजाकी तैयारी कर रही थी, सब एक तरफ रखकर दौड़ी आई; देखा तो: वे सीढ़ीसे नीचे उतरे जा रहे हैं।—सच कहती हूँ जीजी, मजाक नहीं करती।

अचला मन ही मन समझ गई, क्यों वृद्धकी 'सुरमा' की बुलाहटको उसके अनमने चित्तका दरवाजा ढूँढ़े नहीं मिला। फिर भी वह मारे शरम और पछतावेके चंचल हो उठी। बोली—शायद बहन, मैं घरके भीतर—

राक्षसीने कहा—कहाँ घरके भीतर! जिनके लिए घर है, वे तो तब बाहर घूमने गये थे। आँगनसे साफ दिखाई दीं, ठीक इसी तरह रेलिंग पकड़े खड़ी थीं।—कहते कहते जरा रुककर हँसती हुई बोली—मगर तुम तो उस वक्त अपनेमें थीं नहीं बहन, जो बूढ़े-बूढ़ेकी पुकार सुनतीं। जो बात सोच रही थीं, वह अगर कह दूँ तो—

अचला चुपचाप फिर नदीके उस पार देखने लगी, इन सब व्यंगोक्तियोंका जवाब देनेकी कोशिश तक नहीं की।

यहाँ इतना कह देना जरूरी है कि 'राक्षसी' नामके साथ नामधारिणीका जरा भी सादृश्य नहीं था। और नाम भी उसका राक्षसी नहीं, वीणापाणि है। जनमते ही मा मर गई थी, इसलिए दादीने गुस्सेमें यह नाम रख दिया था; जिसे वह अड़ोसी-पड़ोसी और सास-ससुरसे भी छिपा न सकी।

अचलाको अचानक मुँह फेर कर चुप रहते देखकर मन ही मन वह शरमिन्दा हो गई; अनुतापके स्वरमें बोली—अच्छा, सुरमा-जीजी, तुमसे क्या एक-आध हँसीकी बात भी नहीं कह सकती बहन? मैं क्या जानती नहीं, बाबूजीकी तुम कितनी भक्ति-श्रद्धा करती हो? उनसे हम लोगोंने सब कुछ सुना है। वे सबेरे टहलकर आ रहे थे, तुम इस अनजान जगहमें रोती हुई डाक्टर ढूँढ़ने दौड़ी जा रही थीं। इसके बाद वे तुम्हारे साथ सराय गये और तुम्हारे पतिको घर ले आये। यह सब भगवानका काम है बहन, नहीं तो इस घरमें तुम्हारे पाँवकी धूल पड़ेगी, उस दिन गाड़ीमें यह बात किसने सोची थी!—मगर मेरी बातका तो तुमने जवाब ही नहीं दिया। मैं पूछ रही थी, हमारे यहाँ तुम्हें बिलकुल अच्छा नहीं लगता, सो मैं समझ गई हूँ। मगर क्यों? क्या तकलीफ है, क्या दिक्कत यहाँ तुम्हें हो रही है बहन, बस इतना मैं जानना चाहती हूँ।—कहकर पहलेकी तरह फिर वह कुछ देर चुप रही, और सहसा उसे मालूम हुआ कि किसी भी कारणसे हो, वह उत्तरके

लिए व्यर्थ ही प्रतीक्षा कर रही है। तब फिर, जिसे उसके ससुरने सम्मानके साथ अपने घरमें आश्रय दिया है और उसने खुद भी जिसे 'सुरमा-जीजी' कहकर मनसे चाहा है, उसका मुँह जबरदस्ती अपनी ओर खींचकर देखा कि उसकी आँखोंसे नीरव आँसुओंकी धारा बह रही है! वीणापाणि स्तब्ध होकर खड़ी रही, और अचलाने आँचलसे आँसू पोंछकर अपनी शून्य दृष्टि दूसरी ओर फेर ली।

दूसरे दिन लगभग तीसरे पहर वीणापाणि हाल ही आये हुए एक मासिक पत्रसे कोई कहानी अचलाको पढ़कर सुना रही थी। एक बेंतकी कुरसीपर अधलेटी हालतमें बैठी हुई अचला कुछ तो सुन रही थी और कुछ उसके कानों तक पहुँच ही नहीं रहा था। इतनेमें वीणाके ससुर रामचरण लाहिड़ी महाशय 'बेटी राक्षसी!' कहते हुए सीढ़ीपर आ पहुँचे; दोनों चटसे उठकर खड़ी हो गईं। वीणाने एक कुरसी उनके सामने रखते हुए उत्सुक होकर पूछा—क्यों बाबूजी?

यह वृद्ध महाशय अत्यन्त निष्ठावान् हिन्दू है। उन्होंने धीरे-सुस्ते बैठकर अचलाके मुँहकी तरफ सस्नेह प्रशान्त दृष्टिसे देखते हुए कहा—एक बात है बेटी, पुरोहितजी अभी अभी आये थे, वे तुम दोनोंका पति-पत्नीके नामसे संकल्प करके जो रोज़ नारायणको तुलसी दे रहे थे, सो कल समाप्त होगा। सो, कल तुम्हें बेटी, तकलीफ करके जरा अबेर तक बिना खाये रहना पड़ेगा। वे यहीं घरपर नारायण लाकर काम समाप्त कर जायेंगे, और तुम्हें कहीं नहीं जाना पड़ेगा।

उनकी बात सुनकर अचलाका चेहरा एकदम स्याह पड़ गया। धुँधले प्रकाशमें वृद्धकी उसपर नजर नहीं पड़ी, लेकिन वीणाकी पड़ गई। वह हिन्दू-घरकी लड़की है, जन्मसे ही इन्हीं संस्कारोंमें पली है, और बीमार पतिके कल्याणके लिए यह कितने बड़े उत्साह और आनन्दकी बात है, इसे वह संस्कारकी तरह ही समझती है; परन्तु अचलाके चेहरेके इस उत्कट परिवर्तनसे उसके आश्चर्यकी सीमा न रही। फिर भी सहेलीकी तरफसे उसने पूछा—अच्छा बाबूजी, नारायणको तुलसी तो चढ़वाई है तुमने सुरश बाबूके लिए, तो फिर जब वे उपास न करेंगे, तो जीजीको ही क्यों करना पड़ेगा?

वृद्ध महाशयने हँसते हुए कहा—वे और तुम्हारी जीजी क्या अलग अलग हैं बेटी? सुरेश बाबू तो ऐसी हालतमें उपवास कर नहीं सकते। इसलिए सुरमा-जीजीको ही करना होगा। शास्त्रमें विधि है बेटी, कोई चिन्ताकी बात नहीं।

अचलाने इसके भी उत्तरमें जब 'हाँ' 'ना' कुछ भी नहीं कहा, तब उसकी

इस निरुद्यम नीरवतापर अकस्मात् इस शुभाकांक्षी वृद्धका भी ध्यान आकर्षित हुआ। उन्होंने सीधे अचलाके मुँहकी तरफ देखकर कहा—इसमें क्या तुम्हें कोई आपत्ति है सुरमा? कहकर वे प्रतिवादकी प्रत्याशामें एकटक तरफ देखते रहे।

अचला सहसा इसका भी कुछ जवाब न दे सकी। कुछ देर चुप रहकर धीरे धीरे मृदु कण्ठसे बोली—उनसे कहा जाय तो शायद वे कर लेंगे।

इसके बाद सब चुप रहे। बात कैसी बेढंगी, कैसी कड़ुई और निष्ठुर सुनाई दी, इस बातको उससे बढ़कर शायद किसीने अनुभव नहीं किया जिसने कि कही थी। परन्तु एक अन्तर्यामीके सिवा और कोई इस बातको जान न सका।

वृद्ध उठकर खड़े हो गये और बोले—अच्छा, ऐसा ही होगा।—कहकर धीरे धीरे नीचे उतर गये। नौकर बत्ती रख गया; परन्तु वे दोनों उसी तरह चुपचाप बैठी रहीं। मासिक-पत्रकी उस अत्यन्त उत्तेजक और शक्तिशाली कहानीका बाकीका हिस्सा खतम करने लायक जोर भी किसीमें न रहा।

बाहर अँधेरा गाढ़ा होने लगा और उसे भेदकर उस पारकी धूसर बालू-भूमि एक छोरसे दूसरे छोर तक इन दोनों क्षुब्ध मौन लज्जित नारियोंकी आँखोंके आगे स्वप्नकी तरह प्रतिभासित होने लगी।

इसी तरह शायद और भी कुछ देर हो जाती, परन्तु न जाने क्या सोचकर वीणापाणि सहसा अपनी कुरसी अचलाके पास खींच लाई और अपना दाहना हाथ धीरेसे सहेलीकी गोदपर रखकर चुपकेसे बोली—उस पारके उस मैदानकी तरफ देखते देखते मुझे क्या खयाल हो रहा था, जानती हो जीजी?—मालूम हो रहा था, जैसे वहाँ तुम ही हो! मानो ऐसे ही अँधेरेमें घिरी हुई जरा-सी,—यह क्या, ऐसी सिहर क्यों उठीं बहन?

अचला क्षण-भर चुप रहकर अस्फुट स्वरमें बोली—अचानक जाड़ा-सा मालूम हुआ था बहन।

वीणाने चटसे उठके भीतरसे एक दुशाला लाकर अचलाको उढ़ा दिया और फिर अपने स्थानपर बैठ गई। बोली—तुमसे एक बात पूछनेकी बड़ी इच्छा होती है, लेकिन शरम लगती है। अगर तुम गुस्सा न हो तो—

अज्ञात आशंकासे अचलाकी छातीके भीतर कम्पन उपस्थित हो गया। वह, इस डरसे कि ज्यादा बात करनेमें स्वर न काँप उठे, सिर्फ 'नहीं' कहकर चुप हो गई।

वीणा लाड़ करके उसके हाथको जरा दबाते हुए कहने लगी—अब तो तुम मेरी जीजी हो न, मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ। मगर उस दिन गाड़ीमें तो मैं तुम्हारी कोई भी नहीं थी,—फिर भी क्यों तुम मुझसे इस तरह अपना परिचय छिपा रही थीं ? जो पति हैं उन्हें बताया कि कोई नहीं,—कहा कि वे बीमार हैं, दूसरे डब्बेमें हैं, उन्हें लेकर जबलपुर जा रही हो;—लेकिन मुझे धोखा नहीं दे सकीं ! मैं ठीक पहचान गई थी कि वे कौन हैं। और, तुमने कहा था कि तुम ब्राह्मसमाजी हो।—कहकर जरा वह मुसकरा दी, बोली—मगर अब देखती हूँ कि तुम्हारे उनका जनेऊ देखकर तो विष्णुपुरके पुरोहित भी शरमिन्दा हो सकते हैं। अच्छा बहन, इतना झूठ क्यों बोली थीं बताओ तो ?

अचलाने जबरदस्ती जरा सूखी हँसी हँसकर कहा—अगर न बताऊँ ?

वीणाने कहा—तो मैं ही कह दूँगी। लेकिन पहले यह बताओ कि ठीक ठीक कह दूँ तो मुझे क्या दोगी ?

अचलाकी छातीके भीतर खूनका चलना मानो बंद होना चाहता था। उसके चेहरेपर जो मौतकी-सी पिलाई छाती जा रही थी, उसपर वीणाकी नजर पड़ी या नहीं, कहना मुश्किल है। वह फिर जरा मुसकराकर बोली—अच्छा, कुछ दो या न दो, अगर मैं सच बात बता सकी, तो मुझे क्या खिलाओगी सो बताओ अचला-जीजी ?

अचलाका अपना ही नाम उसके कानोंमें आगकी लौकी तरह घुसा और उसके दूसरे ही क्षणसे वह अर्द्ध-चेतन और अर्द्ध-अचेतन अवस्थामें कठोर होकर बैठी रही।

वीणापाणि कहने लगी—हम दोनों बहनोंका उतना दोष नहीं बहन, जितना कि हमारे उन लोगोंका है। एकने बुखारकी गरमीमें तुम्हारा सच्चा नाम प्रकट कर दिया, और दूसरे उसीमेंसे तुम्हारा सच्चा परिचय ढूँढ़कर ले आये।

अचलाने जी-जानसे कोशिश करके अपने विक्षुब्ध हृदयको सम्हालते हुए कहा—सच्चा परिचय क्या है, सुनूँ भी तो ?

वीणाने कहा—सच हो या न हो बहन, लेकिन उनमें बुद्धि है, यह बात तो तुम्हें मानना ही पड़ेगी। उन्होंने एक दिन रातको अचानक आकर कहा, तुम्हारी अचला-जीजीका यह क्या हाल है जी ? घरसे वे नाराज होकर भाग आई हैं। मैंने नाराज होकर कहा, 'चलो रहने दो, ज्यादा उस्तादी न छाँटो। यह बात कहीं

जीजीने सुन ली तो वे इस जन्ममें तुम्हारा मुँह भी न देखेंगी ’।

अचला कुरसीका हत्था जोरसे मुट्ठीमें दबाकर कठोर हो बैठी रही।

वीणा कहने लगी—उन्होंने कहा, मुँह मेरा वे देखें या न देखें, बात सच है, यह मैं कसम खाकर कह सकता हूँ। चाहे देवरानी-जिठानी या ननदसे झगड़ा हुआ हो और चाहे सास-ससुरसे,—पतिको लेकर वे विरागी होकर घरसे निकल आई हैं। सुरेश बाबूके रंग-ढँगसे तो मालूम होता है कि तुम्हारी जीजी अगर उन्हें समुद्रमें डूबनेका हुक्म दें तो उनमें ‘ नहीं ’ कहनेकी ताकत नहीं। अब, जहाँ जी चाहे, दोनों छद्म नाम रखकर तब तक अज्ञातवास करते रहेंगे जब तक कि बूढ़े मा-बाप दुनिया छानकर मना-मनूकर अपने बहू-बेटेको घर नहीं बुला लेते। यही अगर न असली घटना हुई, तो तुम मुझे—”

“ मैंने कहा, ‘अच्छा, माना कि यही ठीक है, लेकिन गाड़ीमें मुझ जैसी एक अजान मूर्ख औरतसे झूठ बोलनेकी ऐसी क्या गरज पड़ी थी ? ’ इसपर उन्होंने हँसकर जवाब दिया, ‘ तुम्हारी जीजी भी अगर तुम्हीं जैसी बुद्धिमती होतीं, तो सचमुच कोई गरज न होती। लेकिन वे तो ऐसी हैं नहीं। जैसे ही उन्होंने सुना कि तुम्हारा घर डेहरीमें हैं, तुम दो-चार दिन बाद डेहरी ही पहुँचोगी, वैसे ही चटसे वे अचलाके बदले सुरमा, हिन्दूके बदले ब्राह्मसमाजी और डेहरीके बदले जबलपुर जानेवाली बन गईं। इतनी-सी बात तुम्हारे दिमाग नहीं आई राक्षसी, जो जबलपुरका टिकट लेकर वहाँके लिए रवाना हुए हैं, वे अचानक गाड़ी बदलकर यहाँ क्यों उतरेंगे, और बीमार पतिको लेकर किसी बंगालीके घर न उतरकर इतनी दूर आके देहातमें, और सो भी टूटी-फूटी सरायमें क्यों ठहरेंगे ?’ ”

कहते कहते वीणा अकस्मात् बगलसे झुककर अचलाके गलेसे चिपट गई और स्नेह-प्रेमसे विगलित होकर उसके कानके पास मुँह ले जाकर अस्फुट कण्ठसे बोली—बताओ न जीजी, क्या हुआ था ? मैं कभी किसीसे भी नहीं कहूँगी, तुम्हें छूकर मैं सौंगद खाती हूँ !

वीणापाणिके मुँहसे अपने सम्बन्धमें इस सत्यकी खोजका झूठा इतिहास सुनकर अचलाका सारा शरीर एक अचेतन पदार्थकी तरह सहेलीके आलिंगनमें लुढ़क-सा पड़ा। इस जीवनकी चरम लज्जा मूर्ति धारण करके, एक एक कदम करके, कहाँ बढ़ती चली आ रही है,—इसे वह देख रही थी; परन्तु जब वह अत्यन्त अकस्मात् अचिन्तनीय रूपसे मुँह फेरकर किसी और ही रास्तेसे निकल गई, उसे

छुआ तक नहीं, तब फिर उस विपुल सौभाग्यको वहन कहनेकी क्षमता उसमें नहीं रही। सिर्फ दोनों आँखोंसे लगातार आँसुओंकी धारा गिरनेके सिवा बहुत देर तक उसमें और कोई जीवनका लक्षण नहीं मालूम हुआ।

इस तरह कुछ समय बीत गया। वीणाने अपने आँचलसे बार बार अचलाके आँसू पोंछते हुए स्नेहपूर्ण करुण कण्ठसे कहा—सुरमा जीजी, तुम उमरमें बड़ी हो, फिर भी, इस छोटी बहनकी बात मानो बहन, अब घर लौट जाओ। मैं कहती हूँ, यह यात्रा तुम लोगोंकी सुयात्रा नहीं है। बड़ी मुसीबतोंसे माथेका सुहाग बचा है जीजी, अब रूठकर बड़े-बूढ़ोंको दुःख न दो,—अब उन्हें सोच-फिकरमें न रहने दो। सिर झुकाकर ससुरके घर जानेमें शरम किस बातकी है? इसमें कोई बेइज्जतीकी बात नहीं बहन।

क्षण-भर मौन रहकर वह फिर बोली—चुप हो रहीं जो बहन, नहीं जाओगी? मा-बापसे गुस्सा होकर घर छोड़नेके बादसे तो सुरेश बाबू अच्छे हैं नहीं। तुम्हारे मुँहसे यह बात सुनकर वे खुश ही होंगे, यह मैं तुम्हें निश्चयसे कहती हूँ।

अचला आँखें पोंछकर अब सीधी होके बैठ गई। आँख उठाकर देखा, वीणा वैसे ही उत्सुक मुखसे उसकी तरफ देख रही है। पहले तो उत्तर देनेमें उसे अत्यन्त लज्जा मालूम होने लगी; पर सिर्फ चुप रह जानेसे भी इस स्त्रीसे छुटकारा नहीं मिल सकता, इसमें जब कोई सन्देह न रहा तो उसने सम्पूर्ण संकोचको जबरदस्ती त्यागकर धीरे धीरे कहा—हमारे लिए घर लौटनेका कोई रास्ता नहीं वीणा!

वीणाको विश्वास न हुआ। बोली—क्यों नहीं रास्ता? हालाँ कि तुम्हें मैं बहुत दिनोंसे नहीं जानती, मगर जितना जानती हूँ उससे सारी दुनियाके सामने खड़ी होकर कह सकती हूँ कि तुम ऐसा काम कभी कर ही नहीं सकतीं बहन, जिसके लिए कोई तुम्हारा किसी तरफका रास्ता बन्द कर सके। अच्छा, तुम अपनी सुसरालका पता बता दो मुझे,—हम लोग परसों सबेरेकी गाड़ीसे घर जा ही रहे हैं,—बाबूजीको साथ लेकर मैं खुद तुम्हारी सुसराल पहुँचूँगी,—देखूँ, बुढ़िया-बुढ़ऊ मुझे क्या जवाब देते हैं। तुम्हारे जो सास-ससुर हैं, वे मेरे भी तो हैं,—उनके सामने जानेमें शरम किस बातकी?

अचला चौंककर बोली—तुम लोग परसों देश जा रहे हो, मैंने तो कुछ सुना नहीं? यहाँ कौन कौन रहेंगे?

वीणापाणिने कहा—कोई नहीं, सिर्फ नौकर और दरबान मकानकी हिफाजत

करेंगे। मेरी जेठी सास बहुत दिनोंसे खटिया से रही हैं, उनके जीनेकी कोई आशा नहीं, वे सबको एक बार देखना चाहती हैं।

अचलाने पूछा—तुम्हारी सुसराल कहाँ है?

वीणाने कहा—कलकत्तेहीमें है पटलडाँगामें।

पटलडाँगाका नाम सुनकर अचलाका मुँह सूख गया। कुछ देर चुप रहकर अहिस्तेसे बोली—वीणा, तब तो हम लोगोंको यह मकान छोड़कर कल ही और कहीं चला जाना चाहिए। यहाँ तो अब रहना नहीं हो सकता।

वीणा हँस दी। बोली—इसीसे शायद मैं तुम्हारे घर लौट जानेके लिए इतनी खुशामद कर रही हूँ? इतनी देर पीछे मेरी बातका तुमने यही अर्थ लगाया क्या? नहीं बहन, मुझसे कसूर हो गया, तुमसे कभी कहीं भी जानेको नहीं कहूँगी। जब तक जी चाहे, इस कुटियामें तुम लोग रहो, हम लोगोंको जरा भी ऐतराज नहीं।

परन्तु इस सदय निमन्त्रणका अचलासे कुछ भी उत्तर देते न बना। क्षण-भर मौन रहकर उसने पूछा—तुम लोगोंका जाना क्या सचमुच तय हो चुका है?

वीणाने कहा—तय तो है ही। आज हम लोगोंकी गाड़ी तक रिज़र्व हो चुकी है। बाबूजीके कमरेमें झाँककर देखो न जाकर, लगभग पन्द्रह आने चीज-वस्त बँध चुकी है।

नौकरानीने दरवाजेके पास आकर कहा—बहूजी, माजी तुम्हें रसोईमें बुला रही हैं।

"अभी आई।" कहकर वीणा सहसा हँस दी और फिर एक बार दोनों बाँहें अचलाके गलेमें चुपकेसे डालकर कानमें बोली—इतने दिनोंसे लोगोंकी भीड़में बड़ी परेशानीसे तुम लोगोंके दिन कट रहे थे। अब खाली मकान है, कहीं कोई रहेगा नहीं,—अब कुछ समझमें आया कि नहीं, मेरी प्यारी जीजीरानी!—इतना कहकर दो उँगलियोंसे सहेलीके गाल भींचकर जल्दीसे वहाँसे भाग गई।

आनन्दका एक टुकड़ा थोड़ी-सी दक्खिनी हवाकी तरह इस सौभाग्यवती तरुणीके लघु-ललित-पद क्षेपके साथ ही साथ दृष्टिसे ओझल हो गया; परन्तु कानमें कहे हुए उसके अन्तिम शब्दोंको कानमें ही लिए हुए अचला जहाँकी तहाँ पाषाण-मूर्तिकी भाँति स्तब्ध बैठी रही। आजकी रात और कलका दिन सिर्फ बाकी है। उसके बाद फिर कोई बाधा नहीं, कोई विघ्न नहीं,—इस निर्जन नीरव पुरीमें पास और दूर जहाँ तक उसकी दृष्टि पहुँच सकती है, भविष्यकी तरफ

आँख उठाकर उसने देखा,—वह अकेली है, और सिर्फ एक सुरेशके सिवा और कहीं भी कोई दिखाई नहीं दिया।

३२

इस जनशून्य पुरीमें अकेले एक सुरेशको लेकर जिन्दगी बितानी पड़ेगी, और वे दिन हर क्षण नजदीक आते जाते हैं। कोई बाधा नहीं, व्यवधान नहीं, लज्जा नहीं,— आज नहीं, कल' कहकर कोई बहाना बनानेका भी मौका नहीं मिलेगा।

वीणापाणि कह रही थी, 'ससुरका घर अपना घर है, वहाँ झुककर जानेमें कोई शरम नहीं, कोई लज्जा नहीं।"

हाय रे हाय! उसके कौन हैं और कौन नहीं, इस जमा-खर्चका हिसाब तो सिवा एक अन्तर्यामीके दूसरा कोई जानता नहीं। फिर, आज भी उसके पति मौजूद हैं, और अपना कहनेको उसका वह जला हुआ मकान अब भी धरतीसे मिट नहीं गया है। आज भी, एक क्षणके लिए ही सही, उसके भीतर जाकर वह खड़ी हो सकती है।

बँधे हुए पशुकी आँखके आगे जब तक कि बाहरका मैदान बिलकुल ढक नहीं जाता तब तक जैसे वह एक ही स्थानपर बार बार सिर धुनता रहता है, ठीक उसी तरह अचलाके आबद्ध मनकी प्रचण्ड कामना उसके हृदयमें हाहाकार करके बाहरके लिए मार्ग ढूँढ़ती हुई भटकने लगी। बहुत दिनोंसे इस पलंगपर उसके बगलमें वीणा सोती रही है, परन्तु आज उसके पति आ गये हैं, वह अपने कमरेमें सोने गई है,—और, इस डरसे कि कहीं इस दुश्चिन्ताके सिलसिलेमें उनका बन्द कमरेमें पलंगपर सोना याद न आ जाय, और इससे उसका अपना विक्षिप्त और पीड़ित चित्त ईर्ष्या, अपमान और लज्जाके अणु-परमाणुओंसे विदीर्ण न होने लगे वह मानो अपने आपको प्रचण्ड शक्तिसे उधरसे खींचने लगी, परन्तु साथ ही साथ उसका सारा शरीर इस भाँति थर थर काँपने लगा जैसे बिजलीसे छू गया हो।

बगलके किसी एक घरकी घड़ीमें दो बजे। दुशाला उतारकर उठके बैठते ही उसे मालूम हुआ कि ऐसी जाड़ेकी रातमें भी उसके माथेपर बूँद बूँद पसीना आ रहा है। तब पलंग छोड़कर माथेकी तरफकी खिड़की खोलते ही उसने देखा कि कृष्णपक्षकी अष्टमीका खण्ड-चन्द्र ठीक सामने ही दिखाई दे रहा है, और उसकी

स्निग्ध मृदु किरणोंसे सोन नदीका नीला पानी बहुत दूर तक चमक रहा है। गभीर रात्रिकी ठण्डी हवाने उसके उत्तप्त ललाटपर स्नेहका हाथ फेर दिया, और वहीं उस खिड़कीके पास वह अपने भाग्यकी अन्तिम समस्यापर विचार करने बैठ गई।

यह बात अचला निश्चयसे समझ गई कि उसके इस अभिशप्त और भाग्यहीन जीवनका जो कुछ भी सत्य है वह साराका सारा दुनियाके लोगोंको सिर्फ एक अद्भुत उपन्यास-सा मालूम होगा। और जिस दिनसे कहानीका प्रथम सूत्रपात हुआ है उस दिनसे जितना भी असत्य इस जीवनमें सत्यका नकाब पहनकर दिखाई दे गया है, एक एक करके उस सबकी याद करके, क्रोध क्षोभ और अभिमानसे उसकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। वह सोचने लगी कि जिस भाग्य-विधाताने उसके यौवनके प्रथम आनन्दको असत्यसे इस तरह विकृत करके और उसे इस तरह उपहासकी वस्तु बनाकर दुनियाके सामने उद्घाटित करनेमें रञ्चमात्र भी ममता नहीं की उस निर्मम निष्ठुरको ही उसने बचपनसे भगवानके रूपमें जानने-सोचनेकी जो शिक्षा पाई है वह शिक्षा बिलकुल ही व्यर्थ,—बिलकुल ही निरर्थक हुई है। वह अपनी आँखें पोंछती हुई बार बार कहने लगी—हे ईश्वर! तुम्हारे इतने बड़े विश्वब्रह्माण्डमें इस अभागिनीके जीवनके सिवा कौतुक करनेके लिए और कोई चीज ही नहीं थी क्या?

मन ही मन कहने लगी, कहाँ थी मैं और कहाँ रहा सुरेश! ब्राह्मसमाजियोंकी छाया तक छूनेमें जिसकी घृणा और विद्वेषका अन्त न था, भाग्यके परिहाससे आज उसी आदमीकी आसक्तिका आदि-अन्त न रहा! और जिससे उसने कभी भी प्रेम नहीं किया वही उसका प्राणोंसे प्यारा है,—क्या इसी असत्यको सब सत्य समझ रखेंगे? और जो सत्य है, उसे क्या कहीं भी किसीके पास शरण नहीं मिलेगी? और उस असत्यका क्या उसके अपने मुँहसे ही प्रचार होना जरूरी था? भाग्यकी इतनी बड़ी बिडम्बना क्या और किसीके भाग्यमें भी हुई होगी? पतिको उसने बड़े बड़े दुःखोंसे पाया था, मगर भाग्यको वह सहन नहीं हुआ,—उसकी चरम दुर्दशाका बोझ लादे अकस्मात् एक दिन सुरेश जाकर अभिसम्पातकी तरह उनके देशके मकानमें जा पहुँचा: उसका सुखका बसेरा जलकर खाक हो गया और उसके साथ साथ उसका भाग्य भी जलकर भस्म हो गया!—जब कि वह इतना सब समझ गई थी, तो फिर क्यों उसने अपने बीमार पतिको ले जाकर उसीकी गोदमें डाल दिया? जिसे वह लगभग खो ही बैठी थी, उसे सेवाके भीतरसे

फिर सम्पूर्ण रूपसे लौटा देनेकी ही अगर विधाताकी इच्छा थी, तो फिर आज क्यों उसे अपनी दुःख, दुर्दशा, लाँछना और अपमानका किनारा ढूँढ़े नहीं मिलता ?

अचला दोनों हाथ जोड़कर रुँधे हुए कण्ठसे कहने लगी—जगदीश्वर ! जब कि एक दिन अपने रोग-मुक्त पतिके स्नेहाशीर्वादसे समस्त अपराधोंका प्रायश्चित्त हो जानेका तुमने मुझे विश्वास दिलाया था, तब इस अभागिनीको इतनी बड़ी दुर्गतिमें फिर क्यों धकेल दिया ? संसारमें मेरे इस अपराधका, कि मैंने संकोच नहीं किया और इतनी बात हो जानेपर भी सुरेशको अपने साथ चलनेके लिए निमन्त्रण दिया, क्षालन नहीं हो सकता ?—कलंकका यह दाग अब मिट नहीं सकता ? मगर, हे अन्तर्यामी, मेरे दुर्भाग्यसे तुम भी समझनेमें गलती कर गये। इस हृदयके अन्दर हमेशासे क्या हो रहा है, सो क्या तुम्हारी दृष्टिमें भी नहीं पड़ा !

पिताकी चिन्ता और पतिकी चिन्ताको वह जी-जानसे कोशिश करके ही दूर रख सकती थी; आज भी उन चिन्ताओंको वह पास नहीं फटकने देती; परन्तु उसे मृणालकी बात आ गई, और खयाल आया बुआजीका। आते समय स्नेहार्द्र करुण कण्ठसे उन्होंने सती-साध्वी कहकर जितने भी आशीर्वाद दिये थे, सब याद आने लगे। अपने सम्बन्धमें आज उनके मनके भावोंकी कल्पना करते हुए अकस्मात् मर्मान्तक आघातसे कुछ देरके लिए उसकी सम्पूर्ण ज्ञान-शक्ति आच्छादित-सी हो गई और देह-मनकी उस अशक्त और अभिभूत अवस्थामें ही खिड़कीपर माथा रखे शायद अनजानमें उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। इतनेमें पीछेसे दबे पाँव किसीके आनेकी आहट सुनकर वह चौंक पड़ी और मुँह फेरकर देखा कि उघड़े बदन नंगे-पाँव सुरेश खड़ा है। क्षणिक उत्तेजनामें शायद वह कुछ कहना चाहती थी, परन्तु उमड़ते हुए आँसुओंने उसका कण्ठ रोक दिया। उन्हें दमन करके बात करनेकी शायद उसे प्रवृत्ति नहीं हुई, इसीसे दूसरे ही क्षण उसने मुँह फेरकर पूर्ववत् खिड़कीके सींखचोंपर माथा टेक दिया; और, जो आँसू अब तक उसकी आँखोंसे बूँद बूँद टपक रहे थे, वे अब मानो अकस्मात् बाँध टूट जानेसे उन्मत्त धाराकी तरह बह निकले।

कहीं कोई आवाज नहीं थी, रातकी गभीर नीरवता घरके भीतर-बाहर सर्वत्र व्याप रही थी। पीछे सुरेश पाषाण-मूर्तिकी तरह स्तब्ध खड़ा था। सहसा उसका सारा शरीर बाँसके पत्तेकी तरह काँपने लगा और लहमे-भरमें उसने हाथ बढ़ाकर

अचलाके माथेको खींचकर अपनी छातीसे लगा लिया।

अचलाने अपनेको छुड़ाकर आँचलसे आँखें पोंछीं, मगर बड़े भारी आश्चर्यकी बात यह है कि जो आदमी उसके इतने बड़े दुःखका मूल कारण है, उसके इस व्यवहारसे आज अचलाको उत्कट घृणा नहीं मालूम हुई; बल्कि वह मृदुकण्ठसे बोली—तुम इस कमरेमें क्यों आये ?

सुरेश चुप रहा। शायद कण्ठस्वरके अभावसे ही वह जवाब न दे सका।

अचलाने धीरे-से खिड़की बन्द कर दी, और कहा—जाड़ेसे तुम्हारे हाथ काँप रहे हैं, जाओ, उघड़े बदन अब खड़े मत रहो,—अपने कमरेमें जाकर सो रहो।

सुरेशकी आँखें जल उठीं और गला काँपने लगा। अचलाका हाथ अपने हाथमें लेकर अस्फुट स्वरमें बोला—तो तुम भी मेरे कमरेमें आओ।

अचला क्षण-भर नीरव विस्मयसे उसके मुँहकी तरफ देखती रही, फिर बोली —नहीं, आज नहीं।—और धीरेसे उसने अपना हाथ छुड़ा लिया।

इस शान्त संयत प्रत्याख्यानका ठीक क्या भाव था, उसे निश्चित रूपसे न समझ सकनेके कारण सुरेश चुपचाप खड़ा रहा। अचलाने उसकी तरफ बगैर देखे ही कहा—मैं जाग रही हू, यह जानकर ही क्या तुम इस कमरेमें आये थे ?

सुरेश आहत होकर बोला—नहीं, तो क्या तुम यह आशा करती हो कि तुम्हें सोती हुई जानकर आया हूँ ?

आशा ?—अचला मुँह फेरकर जरा हँसी। यह तीक्ष्ण कठोर हँसी, बत्तीके अत्यन्त क्षीण प्रकाशमें भी, सुरेशकी नजरोंसे न छिप सकी। उस हँसीने मानो साफ तौरसे कह दिया : अरे कापुरुष ! निद्रित रमणीके कमरेमें चोरकी तरह घुसना नहीं चाहिए, पुरुषके इस महत्त्वका तुम अब भी दावा करते हो ? परन्तु मुँहसे उसने कोई बात नहीं कही। क्षण-भर बाद जंगला छोड़कर वह उठके खड़ी हो गई और धीरे से बोली—तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं, अब जगो मत, जाओ, सोओ जाकर।—कहकर वह धीरे धीरे अपने बिस्तरपर जाकर ऊपरसे नीचे तक कम्बल ओढ़के सो गई।

कुछ देर तक सुरेश वहीं जड़वत् खड़ा रहा फिर चुपकेसे दबे-पाँव अपने कमरेमें चला गया।

३३

दो-एक नौकर-नौकरानीके सिवा पाँच-दिन हुए घरके सब कोई कलकत्ते चले गये हैं, सिर्फ जाना नहीं हुआ एक रामचरण बाबूका। न मालूम कौनसे एक जरूरी कामसे आखिरमें उन्हें रह ही जाना पड़ा। इधर कई दिनसे वे अपने कामहीमें व्यस्त थे, घरमें वे कम दिखाई पड़ते थे। आज सहसा वे भोरहीमें उठकर ऊपर अचलाके बरामदेमें आकर ‘ सुरमा, सुरमा ’ पुकारने लगे। जाड़ेके दिन और सबेरेका वक्त, तब तक कोई बिछौना छोड़कर उठा नहीं था। आवाज़ सुनकर अचला भड़भड़ा कर उठ बैठी और जल्दीसे दरवाजा खोलकर बाहर आ खड़ी हुई; और इसके कुछ ही देर बाद सुरेश भी दूसरा दरवाजा खोलकर आँखें मलता हुआ आ पहुँचा। इस हाल ही जगे हुए दम्पतिको विभिन्न कमरोंमेंसे निकलते देख इस वृद्धकी प्रसन्न दृष्टि सहसा विस्मयसे सन्दिग्ध हो उठी, इस बातको सुरेश न देख सका मगर अचलाकी नजरोंसे छिपी न रही।

राम बाबूने सुरेशकी तरफ देखकर जरा कुछ अनुतापके साथ कहा—बड़ा बुरा किया मैंने, सुरेश बाबू, बेवक्त शोर मचाकर आपकी नींद खराब कर दी, बड़ी गलती हो गई।

सुरेशने हँसते हुए कहा—गलती कुछ नहीं हुई, क्यों कि मैं जाग ही रहा था; नहीं तो, बाहरसे पुकारकर जगाना तो दूर रहा, सरपर ढोल बजाकर भी आप हमारे घरकी शान्ति-भंग नहीं कर सकते थे। मगर इतने तड़के ही कहाँ जा रहे हो ?

वृद्धने अचलाको लक्ष्य करके कहा—आज मुझे जरा सुरमा-बेटीपर उपद्रव करनेकी जरूरत आ पड़ी है,—और अचलाकी तरफ मुड़कर हँसते हुए कहने लगे—मेरी पालकी तैयार खड़ी है, अभी जाना है मुझे, शायद दो-तीन बजेसे पहले न लौट सकूँगा,—सो तुम इस बूढ़ेके लिए थोड़ासा दाल-भात बना रखना बेटी, जिससे उतनी अबेरमें आकर मुझे चूल्हा न फूँकना पड़े।

ये परम निष्ठावान् निरामिष-भोजी ब्राह्मण अपनी स्त्री और पुत्रवधूके हाथके सिवा और किसीके हाथका नहीं खाते। उनका रसोईघर भी बिलकुल अलग है। यहाँ तक कि हरएकको उस घरमें जानेका भी अधिकार नहीं था, और बीच-बीचमें अपने हाथसे बनानेका उन्हें अभ्यास था, इसलिए स्त्रियाँ घर छोड़कर देश

जा सकी थीं। इधर कई दिनोंसे उनका यही सिलसिला चल रहा था, परन्तु आज अकस्मात् इस अज्ञात अपरिचित लड़कीपर भोजनका भार सौंपनेके प्रस्तावसे अचला विस्मय, वेदना, और सबसे बढ़कर भयसे विह्वल हो उठी।

राम बाबूने उसके म्लान मुँहकी तरफ देखकर स्नेहके साथ कहा—तुम सोच रही हो, बेटी, यह बुड्ढा आज कहता क्या है! बनाने-खानेके विषयमें जिसको इतना परहेज है, इतना बखेड़ा है, उसे आज हो क्या गया? सो होने दो। राक्षसीके हाथका खानेमें जब कोई आपत्ति नहीं हुई, तो, तुम ही जरा दाल-भात बना दोगी तो अप्रवृत्ति क्यों होने लगी? और, अच्छा हो या बुरा, बेटी, उतनी अबेरमें लौटकर चूल्हा फूँकते मुझसे न बनेगा।—इसके बाद अचलाके निरुत्तर चेहरेकी तरफ कुछ देर देखते रहे और फिर हँसकर बोले—तुम जरूर मन ही मन कहती होगी कि इस बुड्ढेके अचानक इतनी जबरदस्त उदारता पैदा हो गई है तो मुझे न तकलीफ देकर महाराजजीसे बनवा लेता। सो नहीं हो सकता, बिटिया, सो नहीं हो सकता। अभी तक बुड्ढेमें वही कट्टरता है, वैसे ही संस्कार हैं,—मर जानेपर भी उस संध्या-गायित्री न करनेवाले 'महाराज' के हाथका अन्न मेरे गलेसे नहीं उतर सकता। और, अपनी राक्षसी बेटीको और तुमको इतनेहीमें बिलकुल एक ही समझने लगा होऊँ, सो भी सच नहीं; मगर हाँ, जैसे जैसे देख रहा हूँ वैसे वैसे मालूम हो रहा है कि मेरी यह मा भी अगर एक दिन राँध दे तो वह भी अन्नपूर्णाका अन्न ही होगा। लेकिन अब देर नहीं कर सकता बिटिया, बाकी जो कुछ कहना होगा, सो खाते खाते ही कहूँगा। और वही कहना सबसे बढ़कर सच कहना होगा।—इतना कहकर राम बाबू जाने लगे तो अचला व्यस्त हो उठी। क्या कहे, कुछ स्थिर न कर सकनेके सबब सबसे पहले जो जबानपर आया वही कह दिया, बोली—लेकिन मुझे ठीक बनाना जो नहीं आता। मेरी रसोई आपको पसन्द नहीं आयेगी।

वृद्ध राम बाबू मुड़कर जरा हँस दिये। बोले—इस बातपर तुम मुझे विश्वास करनेको कहती हो बेटी?

अचलाने कहा—बनाना क्या सभी जानती हैं?

वृद्धने कहा—क्या मैं यह कह रहा हूँ कि सभी जानती हैं?

अचला इस बातका सहसा कुछ उत्तर न दे सकी और रह गई। परन्तु सुरेशके लिए वहाँ खड़ा रहना एक तरहसे असम्भव हो गया। अचलाके सफेद

फक चेहरेकी तरफ कनखियोंसे देखकर वह उसकी वेदनाको समझ गया। इस वृद्धके संस्कार,—उसके हिन्दू-आचार अच्छे हों या बुरे, सत्य हों या असत्य, उसे रसोई बनाकर खिलानेमें जो बुरी प्रतारणा छिपी हुई है, उसे अचला जानती है; और ऐसी हालतमें इस भद्र नारीके हृदयका विवेक किसी भी तरह इस छिपानेकी गम्भीर दुष्कृतिसे छुटकारा नहीं पा रहा है, इस बातकी उसके श्रीहीन पाण्डुर मुखपर स्पष्ट झलक देखकर सुरेश मुँह-हाथ धोनेके बहाने जल्दीसे नीचे उतर गया।

"अच्छा, तो मैं अब चला।" कहकर राम बाबू भी सुरेशके पीछे पीछे उतर गये। क्षण-भरके लिए अचला हतबुद्धि होकर खड़ी रही, फिर तुरंत ही अपनेको जबरदस्ती सचेतन करके बोली—एक बार सुनिये—

वृद्धने मुड़कर देखा, सुरमा कुछ कहनेके लिए तैयार होकर भी चुपचाप नीचेको निगाह किये खड़ी है। तब वे कुछ आगे बढ़ आये, और बोले—और एक बात तुमसे कहनी है बेटी! तुम्हारा संकोच जब कि दूर ही नहीं हो रहा है, तो,—तुम जानती हो सुरमा, बचपनमें मैं अपने मुहल्लेका 'दादा' था। तुम्हारे बापसे शायद मैं उमरमें छोटा भी न होऊँगा। तो फिर मुझे 'ताऊजी' क्यों नहीं कहा करतीं बिटिया!

यह वृद्ध उसपर अत्यन्त स्नेह करता है, इस बातको अचला जानती थी। स्नेहकी इस प्रकटतासे उसकी आँखोंमें आँसू आ गये। इससे उसने सिर्फ चुपकेसे गरदन हिलाकर सम्मति दे दी।

राम बाबूने पूछा—और कुछ कहना है?

अचला उसी तरह नीरव रहकर क्षण-भर जमीनकी तरफ देखती रही, और फिर, अबकी बार शायद अपनी सारी शक्तिको इकट्ठी करके अस्फुट स्वरमें बोली—मगर मेरे पिताजी तो ब्राह्मसमाजी थे?

रामचरण बाबू सहसा चौंक पड़े। बोले—सचमुचके या दस-पाँच जने कलकत्तेमें जाकर शौकसे जैसे हो जाया करते हैं वैसे? वे ब्राह्मसमाजियोंमें बैठकर हिन्दुओंको कसके गाली दिया करते हैं जैसी कि सच्चे ब्राह्मसमाजी कभी मुँहसे निकाल भी नहीं सकते। और फिर घर लौटकर ब्राह्मसमाजिओंको ऐसी गालियाँ देते हैं कि वैसे मधुर वचन हिन्दुओंके पूर्वज मुँहसे कभी उच्चारण भी नहीं कर सकते थे। मैं पूछता हूँ, ऐसे तो नहीं थे? ऐसी बात हो तो मुझे जरा भी आपत्ति नहीं।

अचलाका चेहरा मारे शरमके सुर्ख हो उठा। उसने सिर्फ कहा—नहीं, वे सच्चे ब्राह्मसमाजी हैं।

जवाब सुनकर राम बाबू कुछ दुबिधामें पड़ गये। मगर थोड़ी देर बाद ही प्रसन्न चेहरेसे बोले—सो होने दो उन्हें ब्राह्मसमाजी, लड़की तो उनकी प्रजा नहीं जो उसे डरना होगा। बल्कि, जिनके साथ तुमने धर्म बाँट लिया है, बेटी, वे जब हिन्दू हैं, उनके गलेमें जब कि यज्ञोपवीत शोभा दे रहा है और वे उसका अपमान नहीं कर रहे हैं, तब बापका कर्म तो तुम्हें छू भी नहीं सकता। लेकिन तुम चाहे जितनी भी बहानेबाजी क्यों न करो सुरमा, इस बूढ़े ताऊजीको आज चकमा नहीं दे सकतीं। आज तुम्हें रसोई बनाकर खिलानी ही पड़ेगी। इसीसे,—बापकी शिक्षाके गुणसे ही तो उस दिन तुम उपवास नहीं करना चाहती थीं, क्यों न ? आज उसका ब्याज तक वसूल करके छोड़ूँगा।—यह कहकर उनको जाते देख अचलाने इतनी देर बाद अपने अभिभूत भावको एक क्षणमें त्याग दिया, और कण्ठसे बोली—अच्छा ताऊजी, अगर मैं ब्राह्मसमाजी होऊँ, तब तो आप मेरे हाथका नहीं खायँगे ?

राम बाबूने कहा—नहीं। लेकिन सो तो है नहीं, और सो तुम हो ही नहीं सकतीं।

अचलाने कहा—लेकिन अगर ऐसा होता, तो क्या सिर्फ मेरा धार्मिक मत अलग होनेके सबब ही मैं आपके लिए अस्पृश्य हो जाती ?

राम बाबूने कहा—अस्पृश्य क्यों होने लगी बिटिया, अस्पृश्य नहीं। मगर तुम्हारे हाथका खा नहीं सकता था।

इस विषयमें आज उसे बहुतसी बातें जाननेकी जरूरत थी, इसलिए वह चुप न रह सकी, बोली—क्यों नहीं खा सकते थे ? क्या घृणासे ?

वृद्धसे सहसा कुछ उत्तर देते न बना, सिर्फ वे एक दृष्टिसे इस लड़कीके मुँहकी तरफ देखते रहे।

अचलाने सारा संकोच छोड़ दिया था, उसने कहा—ताऊजी, आपमें माया-दया कितनी ज्यादा है, उसकी बहुतसी गवाहियाँ संसारमें होंगीं सो मैं जानती हूँ, लेकिन हमसे बड़ी गवाही और कोई नहीं होगी। तब फिर आप जैसे आदमीका मन कैसे ऐसा अनुदार हो सकता है, मेरी कुछ समझमें नहीं आता ? आप आदमीसे कैसे ऐसी घृणा कर सकते हैं ?

वृद्ध राम बाबू अकस्मात् व्याकुल हो उठे, बोले—मैं घृणा करता हूँ ? किससे, बिटिया ? कब की ?

अचलाने कहा—जिसके हाथका छुआ आपके लिए अस्पृश्य है, वही आपका घृणाका पात्र है। उसीसे आप मन ही मन घृणा करते हैं। और घृणा करते हैं, इस बातको भी लम्बे अभ्यासके कारण भूल गये हैं। अपने नौकरकी बात छोड़ दीजिये, रसोइया-महाराजकी रसोई भी तो किसी कदर आपके गलेके नीचे नहीं उतरेगी, यह तो आपने खुद ही मंजूर किया है। इससे देशकी कितनी हानि,—कितनी अवनति हो रही है, सो तो—

राम बाबू चुपचाप सुन रहे थे, और अचलाकी उत्तेजनाको भी देख रहे थे। उसकी बात सहसा खतम जो जानेपर जरा हँसकर बोले—बेटी, घृणा हम किसी भी आदमीसे नहीं करते। जैसी शिकायत तुमने की है, वैसी शिकायत साहब लोग करते हैं। उन्हींसे तुम्हारे बापने सीखा है और उनसे तुमने सीख लिया है। नहीं तो आदमी भगवान्‌के समान है, यह ज्ञान सिर्फ उन्हींमें नहीं, हम लोगोंमें भी था और अब भी है।

इसी समय नीचेसे एक अस्पष्ट कोलाहल सुनाई देने लगा। राम बाबूने क्षण-भर उस तरफ कान लगाकर कहा—सुरमा, खाना-पीना जिन लोगोंमें बड़ी भारी चीज है, जबरदस्त ठाठ-बाटकी बात है, उन लोगोंके साथ हम लोगोंका मेल नहीं हो सकता। हमारे यहाँ दाल-भात खाना एक मामूली-सी बात है, उसीका आज जरा इन्तजाम कर रखना। तभी, खाते समय इस विषयमें अलोचना की जायगी कि हम घृणा किससे करते हैं और उससे देशकी अवनति कितनी हो रही है;—उधर हल्ला मचाये हुए हैं; अब नहीं ठहर सकता, चल दिया।—कहते हुए राम बाबू जल्दीसे उतर कर चल दिये।

३४

लगभग तीसरे पहर भोजन समाप्त करके राम बाबू जब तृप्ति और अधिकता-व्यंजक ध्वनि करते हुए उठने लगे, तब अचलाने मुश्किलसे जरा हँसकर कहा—मगर ताऊजी, एक बात मैं अभीसे कहे रखती हूँ, जिस दिन आपको मालूम हो जायगा कि आपकी जाति नष्ट हो चुकी है, उस दिन आप नाराज नहीं हो सकेंगे।

वृद्धने स्नेहसे मुसकराकर गरदन हिलाते हुए कहा—अच्छा बेटी, ऐसा ही

सही ।—कहकर वे बाहर हाथ-मुँह धोने चले गये । उनकी खड़ाऊँकी खटखट आवाज जब तक सुनाई दी, तब तक अचला अपनी सारी दृष्टिसे मानो उस आवाजका ही अनुसरण करती रही; उसके बाद कब आवाज बिला गई और कब बाहरकी दुनियाने उसकी चेतनासे अलग होकर उसे पत्थर कर दिया, उसे मालूम ही न पड़ा ।

बहुत दिनोंकी पुरानी पुरबिन दासीने बंगला भाषाके साथ साथ बंगालियोंके आचार-विचार और कायदे-कानून भी कुछ कुछ सीख लिये थे । दासी किसी कामसे इधरसे निकली और बहूजीके बैठनेका ढंग देखकर दंग रह गई । उसने, उमरमें बड़ी होनेके अधिकारसे जरा-कुछ बिगड़ते हुए, अबेरकी तरफ अचलाका ध्यान आकर्षित करके कहा—आज खाने-पीनेकी कोई जरूरत नहीं क्या, जो इस तरह चुपचाप बैठी हो बहूजी ?

अचला चौंक पड़ी, आँख उठाकर देखा कि अब दिन ज्यादा नहीं रहा है, जाड़ेकी शाम देखते देखते आ जायगी । एक तरहकी दीप्तिहीन निष्प्रभता सारे आकाशमें श्रान्तिकी भाँति छा गई है । वह शरमा कर उठके खड़ी हो गई, और हँसकर बोली—मैं शामके बाद खाऊँगी लालूकी मा ! आज भूख बिलकुल ही नहीं है ।

लालूकी माने विस्मित होकर कहा—अभी तो तुम कह रही थीं बहूजी, बड़े बाबूके खा लेनेपर तुम खाओगी ?

"नहीं, रातहीको खाऊँगी ।" कहकर और ज्यादा बहसका मौका न देकर अचला जल्दीसे ऊपर चली गई ।

जरा-सा समय मिलते ही अचला ऊपरके बरामदेकी रेलिंगके पास कुर्सी रखकर बैठ जाती और चुपचाप नदीकी तरफ देखती रहती । आज रातको भी वह उसी तरह बैठी हुई थी । सहसा राम बाबूकी चप्पलोंकी आवाज सुनकर अचलाने मुड़कर देखा कि वे एकदम बीचमें आ खड़े हुए हैं, और उसके कुछ कहनेके पहले ही वे हाथका हुक्का दीवारके सहारे एक कोनेमें रखकर कुरसी खींचकर बैठ गये हैं । जरा हँसकर बोले—उस बातका फैसला करने आया हूँ सुरमा, तुम्हारे ब्रह्मज्ञानी बापूजी ठीक हैं या इस बूढ़े ताऊजीकी बात ठीक है,—तर्कका आज जो भी हो फैसला किये बगैर अब मैं नीचे नहीं जानेका ।

अचलाने समझा कि यह वही जाति-भेदका प्रश्न है; उसने श्रान्त स्वरमें कहा

—मैं तर्क क्या जानूँ ताऊजी ?

राम बाबूने सिर हिलाते हुए कहा—अरे बापरे ! तुम क्या सीधे आदमीकी बेटी हो सुरमा ! मगर हाँ, बात बिलकुल झूठ है इसीसे बच गया; नहीं तो उस छाक तो मैं हार ही गया था समझो !

अचलाके मनकी हालत किसी भी विषयमें अलोचना करने लायक नहीं थी। उसने इस तर्क-युद्धमें आत्मरक्षाकी जरा-सी संध दिखाई देते ही कहा—तो फिर तर्क क्यों करते हैं ताऊजी ! आपकी तो जीत हो ही चुकी।—फिर जरा ठहरकर बोली—जो हार चुकी है, उसे दुबारा हरानेसे आपको क्या फायदा ?

राम बाबूने कुछ जवाब नहीं दिया। उनकी उमर काफी हो चुकी है, दुनियामें उन्होंने बहुत-कुछ देखा-भाला है; इसलिए यह थका हुआ कण्ठस्वर भी उनसे छिपा न रहा। वे समझ गये कि यह लड़की सुखी नहीं है, इसके मनमें कोई एक भयानक वेदना भट्टेकी आगकी तरह दिन-रात जल रही है; और इसकी छाप उन्हें अचलाके थके हुए पाण्डुर मुखपर स्पष्ट दिखाई दे गई। क्षण-भर मौन रहकर सहसा हँसनेकी कोशिश करके अत्यन्त स्नेहके साथ कहा—नः, बहाना नहीं कर बिटिया ! बूढ़ा आदमी हूँ, बकना अच्छा लगता है, शामके वक्त अकेले बैठे बैठे मन हाँफने लगता है, इसीसे सोचा कि चलो झूठ-मूठकी बातें लगाकर बिटियाको जरा गुस्सा कर दूँ तो कुछ वक्त गप-शपमें बीत जायगा, लेकिन छल पकड़ा गया।—कहते कहते उन्होंने हुक्का उठानेके लिए हाथ बढ़ाया।

अचला समझ गई कि वे जानेके लिए हुक्का उठा रहे हैं, और नीचे जाकर अकेलेमें इनका समय बड़ी मुश्किलसे कटेगा। इससे अचलाका मन व्यथित हो उठा। इसलिए वह चटसे खुद उठकर हुक्का उठा लाई और उसे उनके पसारे हुए हाथमें देती हुई बोली—आप जितनी मनमें आवे, यहीं बैठकर तमाकू पीजिये, यहाँसे मैं आपको नहीं जाने दूँगी।

राम बाबूने हुक्का हाथमें ले लिया और हँसते हुए बोले—अरे बाप रे ! एकदम इतनी रास ढीली मत करो बिटिया, पीछे सम्हाले न सम्हाल सकोगी। मेरा चुप रहकर तमाकू पीना क्या बला है, सो तो कभी तुमने देखा नहीं। इससे बल्कि यह अच्छा कि थोड़ा-बहुत बक लेने दो जिसमें—

"चुप रहनेसे दम न घुटने लगे, ठीक है न ताऊजी ? अच्छा, बात ही करो; लेकिन किस विषयपर बकना शुरू करोगे, बताओ तो सही ?"

राम बाबूने मुँहसे बहुत-सा धुआँ ऊपरकी ओर छोड़ते हुए कहा—यह तो तुमने बड़ी मुश्किलमें डाल दिया बेटी ! किसी महावक्तासे भी इस तरहका प्रश्न किया जाय तो उसे भी चुप रहना पड़े, फिर मेरी क्या चलाई !

"अच्छा ताऊजी, किसी दिन अगर आपको मालूम हो जाय कि जिसके हाथकी आपने आज जबरदस्ती रसोई खाई है, उससे नीच, उससे घृणित संसारमें और कोई भी नहीं, तब क्या करेंगे ? प्रायश्चित्त ? और शास्त्रमें उसकी अगर विधि-तक न हो, तब ?"

वृद्धने कहा—तब तो झगड़ा ही मिट गया समझो बेटी, फिर प्रायश्चित्त ही नहीं करना होगा।

"लेकिन मुझपर उस समय आपको कितनी न घृणा होगी !"

"कब, बिटिया ?"

"जब पता लगेगा कि मेरी कोई जात तक नहीं है।"

राम बाबू हुक्केको मुँहसे हटाकर उसी अस्पष्ट प्रकाशमें क्षण-भर अचलाके मुँहकी तरफ देखते रहे, फिर धीरे धीरे बोले—तुम लोगोंकी यह बात मेरी कुछ समझहीमें नहीं आ रही बेटी ! और 'तुम लोगों'की ही क्या कहूँ, जानती हो सुरमा, खुद अपने लड़केके मुँहसे भी यह शिकायत सुनी है। वह स्पष्ट ही कहता है कि इस खाने-पीने और छुआछूतके विचारसे ही सारा देश क्रमशः सर्वनाशकी ओर चला जा रहा है। कारण, इसकी जड़में घृणा है, और घृणामेंसे कोई बड़ा फल नहीं मिल सकता।

अचला मन ही मन अत्यन्त विस्मित हुई। इस घरमें भी इन सब बातोंकी आलोचना किसी तरह रास्ता पा सकती है, ऐसी उसकी धारणा नहीं थी। उसने कहा—तो क्या यह बात झूठी है ?

राम बाबू जरा हँसकर बोले—झूठ है कि नहीं, इसका जवाब मैं नहीं दूँ तो क्या बेटी ! लेकिन सच नहीं है। शास्त्रके विधिनियम मानकर चलता हूँ, बस इतना ही समझ लो। जो लोग इससे भी जरा आगे बढ़ते हैं,—जैसे मेरे गुरुदेव, वे खुद अपने हाथसे बनाकर खाते हैं। लड़की तकको हाथ नहीं लगाने देते। क्या इससे यह सिद्ध किया जा सकता है कि वे अपनी एकमात्र सन्तानसे घृणा करते हैं ?

अचला कुछ जवाब न दे सकनेके कारण चुप रही।

राम बाबू और और कई एक कस खींचकर बोले—बेटी, अपनी जवानीमें मैं

बहुत जगह घूमा हूँ। कितने वन-जंगल, पहाड़-पर्वत, कितने ही तरहके आदमी और कितने ही तरहके आचार-व्यवहार मैंने देखे हैं। उन मैं घूमा हूँ नामोंसे तुम लोग वाकिफ भी होगे,—कहीं खाने-पीनेका विचार है, कहीं कहींके लोग इस अभ्यासको जानते तक नहीं। फिर भी, बेटी, वे हमेशासे वैसे ही असभ्य, वैसे ही छोटे बने हुए हैं।—कहकर उन्होंने जली हुई तमाकूके फिर कई एक कस खींचकर हुक्केको एक कोनेमें दीवारके सहारे रख दिया। अचला जैसी चुपचाप बैठी हुई थी, वैसी ही बैठी रही।

राम बाबू खुद भी कुछ देर तक स्तब्ध बैठे रहे, फिर सीधे होकर बैठ गये और कहने लगे—असल बात क्या है, जानती हो सुरमा? तुम लोगोंने साहबोंसे पट्टी पढ़ी है। वे लोग उन्नत हैं, राजा हैं और धनी हैं। उनमें अगर ऊपरको पैर करके हाथसे चलनेका रिवाज होता, तो तुम लोग कहते कि ठीक इस तरह चलना सीखे बगैर उन्नति नहीं हो सकती।

इस तरहके तर्क अचलाने बंगला दैनिक पत्रोंमें बहुत पढ़े हैं, इसलिए कुछ जवाब न देकर वह जरा हँस दी। उस हँसीको राम बाबूने देखा, मगर इस ढंगसे जैसे देखा ही न हो। अपनी बातकी पुष्टिमें कहने लगे—श्रीधाम श्रीक्षेत्रमें जब गया था, तब जाने-अनजाने कितने ही लोगोंमें मुझे जाना पड़ा था। छुआछूतका विचार वहाँ नहीं है, और ऐसा विचार वहाँ उठता भी नहीं। परन्तु घृणामेंसे अगर इसकी उत्पत्ति होती, तो क्या इतनी आसानीसे उस कामको मैं कर सकता था? जैसे मान लो कि किसीके हाथका मैं नहीं खाता, मगर रास्तेके दीन-दुःखियोंसे क्या कभी मैंने मन ही मन घृणा की है?—

अचला व्यग्र-व्याकुल कण्ठसे बाधा देती हुई बोली—मैं क्या आपको जानती नहीं ताऊजी? इतनी दया संसारमें और है किसके?

"दया नहीं बेटी, दया नहीं,—प्रेम है। उन्हीं लोगोंसे मेरा ज्यादा प्रेम है। मगर असल बात क्या है जानती हो? चाहे कोई जात हो, या कोई आदमी, धीरे धीरे जब वह हीन हो जाता है, तब सबसे ज्यादा तुच्छ चीजपर ही सारा दोष मढ़कर वह तसल्ली कर लेता है। समझता है, इस आसान चीजको सम्हाल लेनेसे ही वह रातों रात बड़ा हो उठेगा। हमारा भी ठीक वैसा ही भाव है। मगर जो कठिन है, जो मूल जड़ है—"

बात खतम करनेका उन्हें समय नहीं मिला। जीनेमें जूतेकी आहट सुनकर

मुँह फेरते ही देखा कि सुरेश आ रहा है, वे चटसे उसीसे पूछ बैठे—अच्छा सुरेश बाबू, आप तो हिन्दू हैं, आप तो हमारे जातिभेदको मानते हैं ?

सुरेश हक्काबक्का-सा हो गया,—यह कैसा प्रश्न ? जिस दलदलके रास्तेसे वह चल रहा है, उसके हर कदमपर जाँच किये बगैर अगर सहसा वह कदम रखे तो कहाँ समा जायगा, कोई ठीक नहीं। यहाँ 'सत्य' ही 'सच' है या नहीं, यह सावधानीसे हिसाब लगाकर देखना पड़ता है। इसलिए डरते डरते पास आकर उसने एक बार अचलाके चेहरेकी तरफ देखकर तात्पर्य समझनेकी कोशिश की, पर उसका चेहरा दिखाई न दिया। तब जरा सूखी हँसी हँसकर दुबिधाके स्वरमें उसने कहा—हम लोग क्या हैं, सो तो आप अच्छी तरह जानते ही हैं राम बाबू !

राम बाबूने कहा—अच्छी तरह जानता हूँ, यही तो मैं भी समझता था। लेकिन आपकी गृहिणी तो एकदम शुरूसे आखिर तक उलट-पुलट कर देना चाहती हैं ! कहती हैं, जातिभेद जैसे बड़े अन्याय और सर्वनाशको किसी भी हालतमें स्वीकार नहीं किया जा सकता। म्लेच्छका अन्न खानेमें कोई बुराई नहीं, यही शिक्षा जन्मसे उन्हें अपने पितासे मिली है। इसलिए इनके हाथका खाकर आज मेरी जात गई या नहीं, और उसका कुछ प्रायश्चित्त करना चाहिए या नहीं, अब तक यही बातचीत हो रही थी। अब आप क्या कहते हैं ?

सुरेश चुप ! अचलाका मिजाज उससे छिपा न था कि उसके मनमें विद्रोहकी आग दिन-रात जल रही है, आर यह बात भी नई नहीं। किन्तु वह आग आज अकस्मात् किस लिए और कहाँ तक फैली है, इसका अनुमान न कर सकनेसे वह आशंका और उद्वेगसे सूख गया; मगर दूसरे ही क्षण अपनेको सम्हालकर उसने पहलेकी तरह फिर जरा हँसनेकी कोशिश की, लेकिन, अब की बार उस कोशिशने सिर्फ हँसीको ढककर चेहरेको विकृत भर कर दिया।

सुरेशने कहा—आपसे ये हँसी कर रही हैं।

राम बाबूने गम्भीर होकर सिर हिलाया और कहा—उचित न होनेपर भी इस बातपर विचार करनेमें मुझे आपत्ति नहीं थी, मगर पतिके कल्याणके लिए भी जब एक हिन्दू-घरकी लड़कीने अपना कर्तव्य-पालन नहीं करना चाहा,—तुलसी दिये जानेके दिन किसी तरह भी उपवास नहीं किया,—अच्छी बात है, यह अगर हँसी हो, तो कुछ कठोर हँसी है। अच्छा, सुरेश बाबू, ब्याह तो आपका हिन्दू मतसे ही हुआ होगा ?

सुरेशने कहा—हाँ।

रामबाबू मुसकराने लगे, बोले—यह मैं जानता था।—फिर अचलाकी तरफ देखकर बोले—यद्यपि तुमसे मुझे बहुत-सी बातें कहनी हैं बेटी, फिर भी तुम्हारे पिताके ब्राह्मसमाजी होनेका मुझे कोई दुःख नहीं। ऐसे बहुतेरे ब्राह्मसमाजियोंको मैं जानता हूँ जो समाजमें जाकर तो आँखें मीचकर गद्गद हो उठते हैं और थोड़ा-बहुत अनाचार भी करते हैं, लेकिन लड़कीके ब्याहके समय हिसाबमें गलती नहीं करते।—खैर जाने दो, एक दुश्चिन्ता दूर हुई।

परन्तु उनसे भी बहुत ज्यादा दुश्चिन्ता दूर हो गई सुरेशकी। वह उसी वक्त राम बाबूके स्वरमें स्वर मिलाकर बोल उठा—आप ठीक कह रहे हैं राम बाबू, आजकल ऐसे ही आदमियोंकी संख्या ज्यादा है। वे—

सहसा दोनों जने चौंक पड़े। बातके बीचमें अचलाका तीक्ष्ण कण्ठस्वर मानो गर्जन कर उठा। उसने सुरेशके चेहरेपर अपनी आँखोंकी तीव्र दृष्टि गड़ाकर कहा—इतने अपराधोंके बाद भी तुम्हें अपराध करनेमें शरम नहीं आती? सो भी मेरे ही मुँहपर? तुम जानते हो, यह सब झूठ बात है? तुम जानते हो, पिताजी ठग नहीं हैं; वे मनसे-ज्ञानसे वास्तवमें ब्राह्मसमाजी हैं। तुम जानते हो—कहते कहते वह कुरसीसे उठकर खड़ी हो गई।

सुरेश पहले तो हक्काबक्का-सा हो गया, मगर गरदन फेरकर वृद्ध राम बाबूकी विस्मय-विस्फारित दृष्टिकी तरफ देखकर वह भी अकस्मात् आग-बबूला हो उठा। बोला—झूठी बात कैसी? तुम्हारे पिता क्या हिन्दू-घरमें लड़की ब्याहनेके लिए राजी नहीं थे? तुम भी सच बात कहो!

अचलाने इसका कोई जवाब नहीं दिया। शायद, क्षण-भर चुप रहकर उसने अपनेको सम्हाल लिया, फिर धीरे धीरे बोली—यह बात मुझसे क्यों पूछ रहे हो? उसका कारण संसारमें सबसे बढ़कर तुम्हीं हो, सो क्या तुम नहीं जानते? तुम ठीक जानते हो कि मैं क्या हूँ, मेरे पिताजी क्या हैं; लेकिन इस विषयपर तुमसे बहस करनेकी मुझे प्रवृत्ति नहीं होती, इतना ही नहीं, बल्कि शरम मालूम होती है। तुम्हारी जो तबीयतमें आवे, इन्हें बना बनाकर कहते रहो, मगर मैं नहीं सुनना चाहती। कहो, मैं जाती हूँ। इतना कहकर वह तेजीसे निकलकर बगलवाले कमरेमें चली गई।

वह चली गई, लेकिन कुछ देरके लिए दोनोंके दोनों मानो निश्चल पत्थरकी

तरह हो गये।

राम बाबूने शायद अन्यमनस्क भावसे अपने हुक्केके लिए हाथ बढ़ाया, पर उसी वक्त हाथ समेटकर जरा हिल-डुलकर ठीकसे बैठ गये और खाँस-खूँसकर जरा गला साफ करके बोले—आजकल आपकी तबीयत कैसी रहती है सुरेश बाबू?

सुरेश अन्यमनस्क हो गया था, चौंककर बोला—जी, अच्छी रहती है।—कहते कहते शायद सच बात याद आ गई, बोला—छातीमें थोड़ा थोड़ा दर्द रहता है,—मालूम नहीं कलसे फिर बढ़ गया क्या—

राम बाबूने कहा—अब आप ही सोचिये, ऐसी ठंडमें इतनी रात तक आपका बाहर घूमते रहना अच्छा है क्या?

"ठीक घूमता-फिरता तो नहीं, राम बाबू! उस मकानके लिए आज दो हजार रुपये बयाना दे आया हूँ।"

राम कुछ आश्चर्य प्रकट करके अन्तमें बोले—नदीके किनारेका मकान तो अच्छा है। लेकिन मुझसे अगर पूछते, तो मैं मना कर देता। उस दिन बातों ही बातोंमें मैं समझ रहा था कि सुरमाकी यहाँ रहनेकी बिलकुल इच्छा नहीं।—फिर हँसकर पूछने लगे—उनकी राय ले ली है, या सिर्फ अपनी ही तबीयतसे खरीद बैठे?

सुरेशने इस बातका ठीक जवाब न देकर कहा—यहाँ न रहनेका कोई खास कारण तो नहीं मालूम होता। और, इसके सिवा, घर-गृहस्थीके काम लायक कुछ कुछ असबाब मँगानेके लिए भी कलकत्तेको आर्डर भेज दिया है, कल-परसों तक सब आ जायगा।

राम बाबू कुछ देर स्तब्ध भावसे बैठे रहे, फिर सहसा न जाने क्या सोचकर पुकार उठे—बेटी सुरमा!

अचलाने उत्तर नहीं दिया, परन्तु कमरेमेंसे चुपचाप निकलकर धीरेसे अपनी कुरसीपर आकर बैठ गई। वृद्धने स्निग्ध कण्ठसे कहा—बेटी, तुम्हारे पतिने तो हमारे देशमें एक बड़ा भारी मकान खरीद डाला है। इस बूढ़े ताऊजीको छोड़कर अब तो तुम कहीं जा नहीं सकतीं बेटी!

अचला चुप रही।

राम बाबू फिर कहने लगे—सिर्फ मकान और असबाब ही नहीं, मुझे मालूम है, घोड़ागाड़ी भी आ रही है। और उससे भी बढ़कर यह भी जानता हूँ कि यह सब-कुछ तुम्हारे ही लिए है! इतना कहकर हँसते हुए उन्होंने एक सुरेशकी और

एक बार अचलाकी ओर देखा। परन्तु उस गम्भीर उदास चेहरेपर आनन्दकी एक झलक भी नहीं दिखाई दी। इस अस्पष्ट प्रकाशमें शायद और किसीकी निगाहमें यह बात न पड़ती, पर वृद्ध राम बाबूकी तीक्ष्ण दृष्टिसे कुछ छिपा न रहा। फिर भी उन्होंने पूछा—लेकिन बेटी, तुम्हारी राय—

अबकी बार अचला बोली, कहा—मेरी रायकी तो कोई जरूरत नहीं ताऊजी!

राम बाबू जल्दीसे कह उठे—यह क्या बात है बेटी! तुम्हीं तो सब-कुछ हो, तुम्हारी इच्छासे ही तो—

अचला उठके खड़ी हो गई, बोली—नहीं ताऊजी, नहीं, मेरी इच्छासे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। आप सब बातें समझेंगे नहीं, और मैं आपको समझा भी नहीं सकूँगी;—अगर मेरी कुछ जरूरत न हो तो मैं जाऊँ—

राम बाबूके मुँहसे फिर कोई बात नहीं निकली, और न उसकी जरूरत ही रही; सहसा नौकरानी एक तसलेमें जलते अंगारे लिये हुए आ पहुँची; और सबकी निगाह उसी तरफ चली गई। राम बाबू आश्चर्यमें कुछ पूछना ही चाहते थे कि सुरेश अप्रतिभ होकर कह उठा—मैंने बेहरासे आग लानेको कहा था, सो वह इसपर हुक्म चलाकर चला गया मालूम होता है। मेरा यह दर्द आज जरा—

आगकी जरूरतकी और ज्यादा विशद व्याख्या न करनी पड़ी; लेकिन उसके लिए तो और भी एक आदमीकी जरूरत है। राम बाबूने अचलाके मुँहकी तरफ देखा, परन्तु उसने चटसे मुँह फेरकर श्रान्त कण्ठसे कहा—मैं जाती हूँ। और उत्तरकी प्रतीक्षा किये बगैर चटसे चली गई; और दूसरे ही क्षण बगलके कमरेसे दरवाजा बन्द करनेकी आवाज आ पहुँची।

राम बाबू धीरेसे कुरसी छोड़कर उठके खड़े हो गये, और नौकरानीके हाथसे आगका तसला लेकर बोले—तो चलिए सुरेश बाबू—

"आप?"

"हाँ, मैं ही सेक दूँगा। मेरे लिए कोई नई बात नहीं, यह काम इस जीवनमें अनेकों बार कर चुका हूँ। कहते हुए लगभग जबरन खींचकर उसे अपने कमरेमें ले गये, और तसला जमीनपर रखकर उसके शुष्क म्लान चेहरेकी तरफ क्षण-भर एकटक देखते रहनेके बाद अकस्मात् उसका हाथ मसककर आर्द्रकण्ठसे कहने लगे—नहीं सुरेश बाबू, ऐसा हरगिज नहीं हो सकता,—हरगिज नहीं।

मैं निश्चयसे समझ रहा हूँ, कोई बात हो गई है,—कह दीजिए उस बातको,—अगर जरूरत पड़े तो यह बुड्ढा फिर एक बार—कहते कहते वे सहसा चुप रह गये।

सुरेशसे एक शब्द भी नहीं कहा गया। मगर, छोटे बच्चेकी तरह पहले उसके ओठ काँप उठे, और फिर आँखोंके आँसू छिपानेके लिए उसने मुँह फेर लिया।

३५

सुरेश एक कोचपर लेटा हुआ था और पास ही एक कुरसीपर बैठे वृद्ध राम बाबू उसकी छातीपर सेक लगा रहे थे; इतनेमें दोनोंने दरवाजा खुलनेका शब्द सुनकर उधर देखा तो अचला! उसने बिना किसी आडम्बरके कहा—रात बहुत हो चुकी है ताऊजी, आप सोने जाइये।

"इसीलिए तो बाट देख रहा था बिटिया!" कहते हुए वे चटसे उठ खड़े हुए, और सुरेशको लक्ष्य करके बोले—इतनी देरसे दोनों जने फजूलमें विडम्बना भोग रहे थे न! ये सब काम क्या हमारे-तुम्हारे करनेके हैं?—फिर अचलाकी तरफ कुरसी खिसकाते हुए बोले—जिसका काम, उससे ही बनता है, यह लो, बैठो,—मैं जरा आरामसे सोऊँ जाकर। इतना कहकर वृद्ध राम बाबूने जोरकी एक उबासी ली और चुटकियाँ बजाते हुए हुक्का उठाकर चल दिये। घरके बाहर जाकर सावधानीसे दरवाजा बन्द करते हुए उन्होंने हँसकर कहा—ऊँघते हुए हाथ-पैर नहीं जला बैठा, यही गनीमत समझो, क्यों सुरेशबाबू?

सुरेशने मुँहसे कुछ नहीं कहा, सिर्फ मिची हुई आँखोंपर दोनों हाथ जोड़कर एक नमस्कार किया।

अचला चुपकेसे उनके छोड़े हुए आसनपर बैठ गई, और सेक देनेके लिए फ्लानेलको गरम करती हुई धीरेसे बोली—फिरसे दर्द क्यों शुरू हो गया? कहाँ मालूम होता है?

सुरेशने आँखें नहीं खोलीं, न उत्तर दिया; सिर्फ हाथसे छातीके बाईं तरफ इशारा कर दिया। फिर सन्नाटा! ऐसा सन्नाटा कि मालूम होने लगा, यह मौन अभिनय अन्तिम अंक तक इसी तरह नीरवतामें ही समाप्त होगा। मगर ऐसा हुआ नहीं। सहसा अचलाके फ्लानेल-समेत हाथको सुरेशने अपनी छातीपर दबा लिया। अचलाके चेहरेपर उद्वेगका कोई चिह्न दिखाई न दिया, मानो यही

उसे आशा थी; उसने सिर्फ इतना कहा—और जरा सेक लगा दूँ ?

सुरेशने हाथ छोड़ दिया, परन्तु दूसरे ही क्षण उठकर बैठ गया और दोनों बाँहोंसे अचलाको कुरसीपरसे खींचकर जोरसे अपनी छातीसे चिपटा लिया और असंख्य चुम्बनोंसे उसे आच्छन्न-अभिभूत कर डाला। एक क्षण पहले जैसा मालूम हुआ था कि इस आवेग-उच्छ्वासहीन नाटककी परिसमाप्ति शायद ऐसे ही निस्पन्द मौनमें ही हो जायगी, वैसा न हुआ; और कुछ क्षण बीतते न बीतते मालूम होने लगा कि इस उन्मत्त निर्लज्जताकी शायद कोई सीमा नहीं, अन्त नहीं,—सब दिशा और सब समयको व्याप्त करके यह मत्तता हमेशा शायद ऐसी ही अनन्त और अक्षय बनी रहेगी, किसी दिन किसी युगमें भी इसे विराम न मिलेगा, विच्छेद न होगा।

अचलाने रुकावट नहीं डाली, न जोर किया; मालूम हुआ जैसे इसके लिए भी वह तैयार ही थी; सिर्फ उसका शान्त चेहरा पत्थरकी तरह शीतल और कठोर हो उठा। सुरेशको होश न था,—शायद सृष्टिके कठिनतम घोर अन्धकारसे उसकी दोनों आँखें बिलकुल अन्धी हो गई थीं, नहीं तो इस मुँह-चूमनेकी लज्जा और अपमानको आज वह भी अनुभव करता। उसे अनुभव न हुआ, पर जब शायद सिर्फ श्रान्तिके कारण ही उसका वह उन्माद स्थिर हो गया, तब अचला धीरेसे अपनेको छुड़ाकर अपनी जगहपर बैठ गई।

और भी क्षण-भर चुपचाप बीतनेके बाद अकस्मात् सुरेश एक गहरी साँस लेकर बोल उठा—इस तरह हम लोगोंके और कितने दिन कटेंगे ?—कहकर उत्तरके लिए प्रतीक्षा किये बगैर ही कहने लगा—तुम्हारे कष्टको मैं जानता हूँ, मगर मेरे दुःखको भी जरा एक बार विचार देखो ! मैं तो मरा !

इस बातका जवाब न देकर अचलाने पूछा—तुमने क्या यहाँ मकान खरीद लिया है ?

सुरेशने अत्यन्त आग्रहके साथ कहा—सो तो तुम्हारे ही लिए है अचला !

अचलाने इसका कोई जवाब नहीं दिया, पूछा—माल-असबाब, घोड़ा-गाड़ी, ये सब भी मँगा रहे हो ?

इसके बाद कुछ सोचकर अचला चुप हो रही। इन सब चीज़ोंकी उसे क्या जरूरत है, ये सब चीजें वह चाहती है या नहीं,—इस आदमीसे ऐसे प्रश्न करनेके समान अपने सम्बन्धमें व्यंग और क्या हो सकता है ? इसलिए इस सम्बन्धमें

कोई बात न कहकर वह चुप रही। पर क्षण-भर बाद ही उसने पूछा—राम बाबूको क्या तुमने मेरे पिताजीका नाम बताया है? घर कहाँ है, बता दिया है?

सुरेशने कहा—नहीं तो!

"और सेक देनेकी जरूरत है क्या?"

"नहीं।"

"तो अब मैं जाती हूँ। बड़ी नींद आ रही है मुझे।" कहकर अचला उठके खड़ी हो गई और आगका तसला एक तरफ हटाकर जाने लगी। कमरेसे बाहर निकलकर वह दरवाजा फेर ही रही थी कि सुरेश भड़भड़ाकर उठके बैठ गया, बोला—आज और एक बात बता जाओ अचला! तुम क्या और कहीं जाना चाहती हो? सच बताओ!

अचलाने कहा—सो कहाँ?

सुरेशने कहा—जहाँ भी हो। जहाँ हम लोगोंको कोई पहचानता न हो, जानता न हो,—ऐसे किसी देशमें! फिर वह देश चाहे जितनी—

आग्रह और आवेशसे सुरेशका स्वर काँपने लगा, अचला इस बातको ताड़ गई, मगर उसने खुद बिलकुल स्वाभाविक और सरल स्वरमें धीरेसे जवाब दिया, "इस देशमें भी हम लोगोंको कोई पहचानता नहीं, कोई जानता नहीं। अब भी तो कोई नहीं पहचानता।"

सुरेश उत्साह पाकर कहने लगा—लेकिन धीरे धीरे—

अचला बीच ही में बोल उठी—धीरे धीरे जान जायँगे? सम्भव है जान जायँ, मगर ऐसी सम्भावना तो और देशमें भी है।

सुरेश उल्लाससे चंचल होकर कहने लगा—तो यहीं तय रहा? यहीं तुम्हारी राय है, बताओ अचला? एक बार साफ साफ कह जाओ—

कहते कहते बीचहीमें मानो किसीने उसे धक्का देकर उठा दिया। परन्तु, तेजीसे फर्शके ऊपरसे ही उसने सहसा स्तब्ध होकर देखा कि दरवाजा बन्द करके अचला अन्तर्हित हो गई है।

× × × ×

कई दिनसे आकाशमें बादल घूम-फिर कर शायद आँधी-मेहकी सूचना दे रहे थे। सुरेशके नये मकानमें काफीसे ज्यादा असबाब और चीज-बस्तोंका ढेर लग गया है; मगर उसे ठीकसे रखने-सजानेकी तरफ किसीका भी ध्यान नहीं है।

घोड़ोंकी एक जोड़ी और एक बढ़िया कीमती गाड़ी परसोंसे आकर किसी अस्तबलमें साईस-कोचवानके जिम्मे पड़ी है, किसीने उसकी खबर तक नहीं ली। दिन किसी कदर जैसे-तैसे बीत रहे थे, इतनेमें एक दिन दोपहरको वृद्ध राम बाबू एक हाथमें हुक्का और दूसरे हाथमें नीले रंगकी एक चिट्ठी लिये हुए आ पहुँचे। अचला रेलिंगके पास बेंतके सोफेपर अधलेटी हालतमें पड़ी पड़ी एक मासिकपत्रके विज्ञापन उलट रही थी; ताऊजीको देखकर वह उठके बैठ गई। राम बाबूने चिट्ठीको आगे बढ़ाते हुए कहा—यह लो सुरमा, तुम्हारी राक्षसीकी चिट्ठी है। वह इतने दिनोंसे तुम्हें चिट्ठी नहीं लिख सकी, इसके लिए मेरी चिट्ठीमें उसने असंख्य बार माफी भी माँगी है और प्रणाम भी लिखा है। उसे तुम माफ कर देना। इतना कहकर उन्होंने हँसते हुए चिट्ठी उसके हाथमें दे दी और पास ही एक कुरसी खींचकर बैठ गये; और नदीकी तरफ देखते हुए अपनी धुनमें हुक्का पीते पीते मारे धुएँके अँधेरा कर डाला।

अचलाने चिट्ठीको आद्योपान्त दो बार पढ़नेके बाद मुँह उठाकर देखा, और कहा—तो परसों सबेरेकी गाड़ीसे ये लोग सब आ जायेंगे? बुआजी कौन हैं ताऊजी! और उनकी राजपुत्र-वधू, राजपुत्र, गारजियन-ट्यूटर—

राम बाबूने हँसते हुए कहा—राक्षसी बेटीको हँसी-मजाककी कोई बात मिल जाय तो छोड़ती थोड़े ही है! बुआजी है मेरी विधवा छोटी बहन, और राजपुत्र-वधू लिखा है उसकी लड़कीको जो भण्डारपुरके भवानी चौधरीको ब्याही है। सो, वह चाहे जो भी लिखे, पर घर तो राजाओं जैसा ही है। राजपुत्र हुआ उसका लड़का, दसेक सालका होगा,—और आखिरमें जिसका जिकर किया है, उसे तो बगैर देखे कह नहीं सकता कि कौन है! होंगे कोई ज़्यादा तनखाके नौकर-औकर। बड़े आदमीके लड़कोंके साथ घूमा-फिरा करते हैं, इधर उधरकी चीज प्रकट-अप्रकट रूपसे जुटाकर बालिग-नाबालिग दोनोंका मन रख देते हैं,—ऐसे ही कोई होंगे शायद। मगर उसकी तो कोई फिकर नहीं है सुरमा,—आयें, खायें-पीयें, पश्चिमकी आब-हवासे गलेकी जलन, छातीकी जलन दो-चार दिन स्थगित रहे तो खुशीकी ही बात है। लेकिन चिन्ता यह है कि मकान तो है हमारा छोटा; राजा-रजवाड़ोंकी बात सोचकर तो मैंने बनाया नहीं था,—घर-द्वारका इन्तजाम भी उनके लायक नहीं। साथमें नौकर-चाकर नौकरानी वगैरह सभी होंगे जरूरतसे तिगुने-चौगुने! इसीसे मैं सोच रहा था कि तुम्हारे मकानको

अगर—

अचला व्यग्र होकर बोली—लेकिन इसके लिए अब वक्त कहाँ है ताऊजी ? इसके सिवा अकेले इतनी दूर रहनेमें क्या उन लोगोंको सहूलियत होगी ?

राम बाबूने कहा—वक्त है, अगर अभीसे लग्गा लगा दिया जाय। और, जगह होनेपर कहाँ किसको सहूलियत होगी, इसकी मीमांसा आसानीसे हो सकती है। सुरेश बाबू तो सुनते ही एक किरायेकी टमटम लेकर चल दिये हैं,—तुम्हारी गाड़ी भी तैयार होकर आ रही होगी। तुम खुद अगर जरा जल्दी तैयार हो सको बेटी, तो मैं भी फुरसतमें जूते बदलकर कंधेपर दुपट्टा डालकर तैयार हो जाऊँ। तुम्हारी घर-गृहस्थीका इन्तजाम तो हम लोगोंसे हो नहीं सकेगा!

अचला क्षण-भर मौन रहकर उठके खड़ी हो गई; बोली, "अच्छा, मैं कपड़े बदल आती हूँ।" और धीरे धीरे चली गई।

राम बाबूका प्रस्ताव न तो असंगत ही था, और न अस्पष्ट ही। अपने रिश्तेदार राजकुमार और राजमाताको जगह देनेके लिए इस मकानको छोड़कर अब उसे दूसरी जगह जाना होगा, यह बात अचलाकी समझमें सहज ही आ गई; लेकिन समझमें आसानीसे आ जाते ही तो उसका भार कुछ हलका नहीं हो जाता। मनके भीतर वह जहाँ तक पहुँची वहाँ तककी जगहको उसने मानो बड़े भारी स्टीमरोलरकी तरह पीस दिया।

इतने दिन हो गये, कोई भी उसे घरके बाहर जानेके लिए राजी नहीं कर सका था। परन्तु आज पन्द्रह मिनटके बाद ही जब वह पहले पहल अपनी अनभ्यस्त पोशाकमें सजकर सिर्फ इसीलिए नीचे उतर आई, तब चारों तरफका सब कुछ उसकी दृष्टिमें नया और आश्चर्य-जनक मालूम होने लगा; यहाँ तक कि अपने आपको भी कुछ और तरहका अनुभव करने लगी। फाटकके बाहर जोड़ी गाड़ी खड़ी थी; नई पोशाकसे सुसज्जित कोचवानने उसे मालिकिन जानकर ऊपरसे सलाम किया, साईस गाड़ीका दरवाजा खोल कर एक बगलसे खड़ा हो गया, और उसके साथ साथ जब वृद्ध राम बाबू सामनेकी सीटपर बैठ गये, तब उसे यह सब अद्भुत स्वप्न-सा मालूम होने लगा। उसकी आच्छन्न दृष्टिने गाड़ीके जिस किसी अंशको देखा, उससे मालूम हुआ कि यह सिर्फ बहुमूल्य या धनवानके धनका दम्भ नहीं है, बल्कि इसका प्रत्येक अंग-प्रत्यंग मानो किसीके सीमाहीन प्रेमसे मढ़ा हुआ है।

कठोर पत्थरकी सड़कपर चार जोड़ी टापोंकी प्रतिध्वनि करती हुई गाड़ी दौड़ने लगी; परन्तु अचलाके कानोंमें वह आवाज़ अस्पष्ट होकर प्रवेश करती रही। उसका सम्पूर्ण मन और बहिरिन्द्रयाँ शायद अन्त तक इसी तरह अभिभूत ही बनी रहतीं, परन्तु सहसा राम बाबूके कंठस्वरसे वह चौंक पड़ी। उन्होंने सामनेकी तरफ दृष्टि आकर्षित करते हुए कहा—बेटी, वह देखो, तुम्हारा मकान दिखाई दे रहा है। नौकर-चाकर सब तैनात कर दिये गये हैं, मामूली ढंगसे सामान लगानेका काम भी शायद अब तक बहुत-कुछ आगे बढ़ गया होगा,—सिर्फ तुम्हारे अपने सोने-बैठनेके कमरेमें मैंने किसीको हाथ लगानेके लिए मना कर दिया है। जाते वक्त मैंने सुरेश बाबूसे कह दिया था कि मकान-भरमें और चाहे जहाँ जो भी कुछ करें, इसकी मुझे परवाह नहीं; पर सिर्फ मेरी बिटियाके कमरेमें कर-धरकर उसका काम न बढ़ा दीजिएगा।—इतना कहकर वृद्ध राम बाबूने अचलाका सलज्ज हास्यपूर्ण मुखड़ा देखनेकी आशासे आँख उठाई, पर उधर देखते ही वे एकबारगी चुप रह गये।

वे क्यों इस तरह ठहर गये, अचला इस बातको उसी क्षण समझ गई; इस लिए जब तक कि गाड़ी नये बंगलेके दरवाजेपर आकर खड़ी नहीं हुई, तब तक उसने अपने सूखे और फीके चेहरेको बाहरकी तरफ फेरकर इस वृद्धकी विस्मित दृष्टिसे छिपा रखा।

गाड़ीकी आहट सुनकर सुरेश बाहर निकल आया; और दासी-दास आदि भी अपना अपना काम छोड़कर छिपे-छिपे अपनी नई मालिकिनको सभय दृष्टिसे देखने लगे; परन्तु उस चेहरेकी तरफ देखकर किसीको कोई उत्साह नहीं मिला।

राम बाबूके साथ साथ अचला चुपचाप नीचे उतर आई। सुरेशकी तरफ उसने एक बार मुँह उठाकर देखा तक नहीं। इसके बाद तीनों जने चुपचाप धीरे धीरे उस नये मकानमें घुसे। उसके भीतर-बाहर ऊपर-नीचे कहीं जरा भी रंचमात्र आनन्दका आभास मौजूद है, यह बात किसीको किसी तरफ एक क्षणके लिए भी नहीं दिखाई दी।

३६

मगर इसमें गलती कितनी बड़ी थी, उसके भी प्रकट होनेमें देर न लगी।

मकान सजानेके काममें इन सब बहुमूल्य और काफीसे ज्यादा उपकरणोंके बीच अन्य सब चिन्ताओंके ऊपर एक बात सभीके मनमें बार बार चोट पहुँचाने लगी। जिसके पास रुपया है उसने खर्च किया है, यह तो एक पुरानी बात हुई; मगर यह सिर्फ इतना ही नहीं है ! यह तो मानो एकको आनन्द और आराम पहुँचानेके लिए दूसरेकी अन्तहीन व्याकुलता है ! काम-काजकी भीड़में चीज-वस्त धरने-उठानेमें मामूली बातें बहुत-सी हुईं, चार आँखें भी बहुत दफे हुईं, मगर सबके भीतरसे एक अनुच्चारित वाक्य, और अप्रकाश्य इंगित रह-रहकर सिर्फ इसी तरफ उँगली दिखाने लगा !

मकानको धोने पोंछनेका काम अभी खतम नहीं हुआ था। इसलिए उसे रहने-लायक बनानेमें ही सारा दिन बीत गया। क्लान्त-परिश्रान्त होकर तीनों जने जब गाड़ीमें आकर बैठे, तब लगभग एक पहर रात बीत चुकी थी। एक जोरकी हवा चली और उसने सामनेका आकाश स्वच्छ कर दिया; सिर्फ बीच-बीचमें कहीं कहीं धूसर रंगके एक आध बादलके टुकड़े दिगन्तसे आते और नदी पार होकर दूसरे दिगन्तको चले जाते थे; और उससे छन छन कर कभी उज्ज्वल, कभी म्लान ज्योत्स्नाकी धारा मानो सप्तमीके बंकिम चन्द्रमासे चारों तरफ मैदान और पेड़-पौधोंपर झर रही थी। इस सौन्दर्यको आँख भरके देखनेके लिए वृद्ध राम बाबू खिड़कीके बाहर विस्फारित नेत्रोंसे ताकते रहे; किन्तु जो वृद्ध नहीं हैं, प्रकृतिके सम्पूर्ण रस और सम्पूर्ण माधुर्यका उपभोग करनेकी जिनकी उमर है, वे ही सिर्फ गाड़ीके दो गद्दीदार कोनोंमें माथा टेके आँखें मीचे बैठे रहे।

बहुत दिन पहलेकी एक स्मृति, जो अचलाके मनमें बिलकुल धुँधली-सी हो गई थी, बहुत दिनों बाद मनमें आने लगी : जिस दिन सुरेशके कलकत्तेवाले मकानसे वे दोनों ऐसी ही एक रातको इसी तरह गाड़ीमें बैठकर लौट रहे थे। उस दिन सम्पदा और सम्भोगकी विपुल सामग्री महिमके पाससे उसके अतृप्त मनको बहुत दूर खींच ले गई थी। उस दिन इसी सुरेशके हाथमें आत्म-समर्पण करना उसे बिलकुल असंगत या असम्भव नहीं मालूम हुआ था। बहुत दिनों बाद क्यों आज उसे सहसा इस बातका खयाल आ गया, यह विचारते विचारते उसे अपने अन्तःकरणका निगूढ़ चित्र स्पष्ट दिखाई दे गया जिससे उसके सारे शरीरमें मानो लज्जाकी आँधी उठ खड़ी हुई।

लज्जा ! लज्जा ! ! लज्जा ! ! ! यह गाड़ी, वह मकान और उसकी तैयारियाँ,—

सब कुछ उसने अपने पतिके प्रेमका उपहार जाना; और उसे जान पड़ा कि एक दिन ऐसा भी आयेगा, जब सभी कोई जान जायेंगे कि इनपर उसका वास्तविक अधिकार रंचमात्र भी न था,—इसका एक छोरसे लेकर दूसरे छोर तक सब कुछ मिथ्या है। उस दिन उस लज्जाको वह छिपायेगी कहाँ? और आज,—आजके लिए यह बात किसी भी कदर झूठ नहीं कि यह सब कुछ सिर्फ उसीकी पूजाके लिए जतनसे संचित हुआ है और इसका आद्योपान्त स्नेह-प्रेम और लाड़-प्यारसे मण्डित है। यह जो शानदार जोड़ी और गाड़ी चारों दिशाओंको कँपाती हुई उसे लादे दौड़ी जा रही है, इसका सुकोमल स्पर्श-सुख, इसकी निस्तरंग अबाध गतिका आनन्द,—सब कुछ आज उसीके लिए है और उसीका है! आज उसका मुँह ताकते हुए ये जो असंख्य दासी-दास आग्रहसे प्रतीक्षा कर रहे हैं सो किस लिए?

देखते देखते उसके मनमें लोभ और त्याग, लज्जा और गौरव दोनों पास पास ठीक मानो गंगा-यमुनाकी धाराकी तरह बहने लगे और क्षण-भरके लिए इनमेंसे किसीको भी वह अस्वीकार नहीं कर सकी। मगर, फिर भी, घर पहुँचकर वृद्ध राम बाबूके संध्या करने चले जानेपर वह जब अकस्मात् थकान और सिर-दर्दकी दुहाई देकर अत्यन्त असमयमें जल्दीसे अपने कमरेमें जाकर दरवाजा बन्द करके बिस्तरपर पड़ रही, तब एकमात्र लज्जा और अपमानने ही मानो उसे निगल जाना चाहा। पिताकी लज्जा, पतिकी लज्जा, आत्मीय स्वजनोंकी लज्जा,—सबकी सामूहिक लज्जा उसकी आँखोंके सामने अभ्रभेदी होकर खड़ी हो गई और उसने अन्य सब दुःखोंको ढक दिया। उसे सिर्फ इसी बातका खयाल आने लगा कि इस धोखाधड़ीका जब किसी दिन भंडाफोड़ होगा, तब उसे मुँह छिपानेकी जगह कहाँ मिलेगी?

और मजेकी बात यह कि जिस समाज और जिन संस्कारोंमें वह बचपनसे पली है, उनमें उसने मृगछालाकी शय्या और वृक्ष तले निवास, किसीको भी कामनाकी वस्तु बताते नहीं सुना। वहाँ किसीके भी चलने-फिरने, मिलने-जुलने और आहार-विहारमें उसने विलासिताके प्रति विराग भाव नहीं देखा बल्कि अनुरागके भावको ही उत्तरोत्तर प्रचण्ड होते देखा है। वहाँ हिन्दूधर्मके किसी भी आदर्शके साथ उसका परिचय नहीं हुआ,—परलोककी आशामें इहलोकके समस्त सुखोंसे अपनेको वंचित करनेकी निष्ठुर निष्ठाको उसने कभी देखा ही नहीं। उसने देखा है सिर्फ दूसरोंके अनुकरणसे बने हुए अपने घरके समाजको जहाँका प्रत्येक व्यक्ति,

—स्त्री और पुरुष संसारकी तीव्र प्याससे दिनपर दिन सूखता जा रहा है।

इसीसे, इस एकान्त शय्यापर भी वह आँख मीचकर ऐश्वर्य जैसी चीजको 'कुछ नहीं' कहकर उड़ा नहीं सकी; और 'जरूरत नहीं' कहकर भी उसके मनने किसी भी तरहकी गवाही नहीं दी। उसकी आजन्मकी शिक्षा और संस्कार इनमेंसे किसी भी चीजको तुच्छ समझनेके अनुकूल नहीं, फिर भी, ग्लानिसे उसका सारा हृदय काला हो उठा। यही कारण है कि यह सम्पदा, ये उपकरण,—इस देहको सब तरहसे सुखी करनेके विविध आयोजनोंका जो आज बिना माँगे उसके पाँवों-तले आ पड़े हैं, दुर्निवार मोह उसे लगातार एक हाथसे खींचने और दूसरे हाथसे धकेलने लगा।

साथ ही, दुःखके दुःस्वप्नमें जैसे एक तरहकी अपरिस्फुट मुक्ति पानेकी चेतना अपना काम करती है, वैसे ही यह ज्ञान भी उसका बिलकुल जाता नहीं रहा कि भाग्यकी विडम्बनासे आज जो धोखा है, उसीके एक दिन सत्य होनेके मार्गमें कोई बाधा नहीं थी। यह सुरेश ही उसका पति हो सकता था, और फिर किसी एक भविष्यमें ऐसा होना बिलकुल असम्भव ही है, यह भी कोई दावेके साथ नहीं कह सकता।

उनके अनुरूप सभी समाजोंमें विधवाओंका पुनर्विवाह हो जाया करता है,—हिन्दू नारीके समान केवल एक ही पुरुषके साथ पत्नीत्वका बन्धन इहलोकसे लेकर परलोक तक नहीं बना रहता; इसलिए जीवन-मरणमें सिर्फ एकहीको अनन्यगति समझकर चिन्ता करने लायक सीमाबद्ध मन उसका नहीं है। वह मन एक पतिके जीवित कालमें ही दूसरेको पति कहनेमें अपराधके भारसे चाहे कितना ही क्यों न पीड़ित हो, लज्जा और अपमानकी ज्वालासे चाहे कितना ही क्यों न जल रहा हो, परन्तु धर्म और परलोककी गदा उसे धराशायी करनेका भय नहीं दिखा सकी।

बन्द दरवाजेको खटकाते हुए राम बाबूने पुकारकर कहा—बगैर खाये-पीये सो गई बिटिया, तबीयत क्या बहुत ज्यादा खराब मालूम हो रही है?

अचलाकी चिन्ताका सूत्र टूट गया। सहसा उसे मालूम हुआ कि मानो यह उसके पिताकी आवाज है। गुस्सा होकर बेवक्त सो जानेसे वे भी ठीक इसी तरह दरवाजा खटखटाकर पुकारा करते थे।

वैसे इस चिन्ताको वह स्थान न देती, परन्तु इस स्नेहकी पुकारकी वह किसी

भी तरह उपेक्षा न कर सकी। क्षण-भरमें उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। झटपट उन्हें पोंछ कर गलेको साफ करके उसने जवाब दिया, और दरवाजा खोलकर सामने आ खड़ी हुई।

यह वृद्ध व्यक्ति इतने दिनकी घनिष्ठता होनेपर भी बराबर अपनेको कुछ फासलेपर रखता था; मगर, इस मकानमें इन लोगोंका आज आखिरी दिन समझकर ही शायद क्षण-भरमें उसने उस व्यवधानको हटा दिया। अपना एक हाथ अचलाके कंधेपर रखकर, दूसरे हाथसे उन्होंने उसकी ठोड़ीको छूआ और क्षण-भर बाद ही हँसते हुए कहा—बूढ़े ताऊजीके साथ शरारत कर रही हो बेटी ? कुछ नहीं हुआ, चलो,—और हाथ पकड़कर खींचकर उसे बरामदेकी कुरसीपर बिठा दिया।

पास ही दूसरी कुरसीपर सुरेश बैठा था; उसने मुँह उठाकर एक बार देखा और तुरंत ही फिर सिर झुका लिया। बात यह थी कि रातको धीरे-सुस्तेमें बैठकर दिन-भरके काम-काजकी आलोचना की जायगी, और इसीलिए वह अकेला बैठा हुआ राम बाबूके वापस आनेकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसकी तरफ देखकर राम बाबूने जरा हँसते हुए कहा—सुरेश बाबू, आपके घरकी लक्ष्मी तो किसी एक विलायती बापकी लड़की है। दिन-मुहूरत वगैरह कुछ मानती नहीं। फिर आप मानिये या न मानिये, मेरा कुछ जाता-आता नहीं, मगर मेरा तो यह तीन बीसी उमरका कुसंस्कार दूर होनेका नहीं। कल डेड़ पहरके भीतर ही एक शुभ लग्न है—

सुरेश इस इशारेको समझ न सकनेके कारण आश्चर्यमें पड़ गया, बोला—किस बातका लग्न ?

राम बाबूसे ठीक सीधा उत्तर न दिया गया। जरा बगलें झाँकते हुए बोले—इसके बाद फिर एक हफ्तेके भीतर पत्रामें मुझे कोई अच्छी सायत ढूँढ़े नहीं मिली। इसीसे कह रहा था—

बात अब सुरेशकी समझमें आ गई, लेकिन वह इसका 'हाँ' या 'ना', किसी तरहका जवाब न दे सका, और डरते डरते एक बार मुँह उठाकर जो उसने अचलाके मुँहकी तरफ देखा तो फिर उससे दृष्टि न हटाई गई। देखा कि वह अपनी स्थिर दृष्टि उसीपर डाले हुए चुपचाप बैठी है।

अचलाने शान्त मृदुकंठसे कहा—कल सवेरे भी तो हम लोग उस मकानमें जा सकते हैं ?

विस्मयाभिभूत सुरेशके मुँहसे इस सीधे प्रश्नका सीधा उत्तर किसी भी तरह

न निकल सका। उसने अनिश्चित कंठसे किसी तरह सिर्फ इतना ही कहा—वह मकान अभी पूरी तरह रहनेके काबिल नहीं हो पाया। उसकी जमीन सब भीगी हुई है, दीवारें भी अभी कच्ची हैं, शायद उसमें जाकर अचलाको कुछ तकलीफ हो या तबीयत खराब—

मगर आपत्तियोंकी सूची पूरी नहीं हो पाई। अचलाने मानो कुछ हँसते हुए ही कहा—सो होने दो। ऐसे बुरे दिन जब कि कुत्ते-गीदड़ तक अपनी जगह नहीं छोड़ना चाहते, अगर मुझे अनजान जगहमें पेड़-तले लाकर खड़ा कर सके, तो जरा भीगी जमीन या कच्ची दीवारोंके डरसे तुम्हें मेरे लिए सोच-फिकरमें डूबनेकी जरूरत नहीं। उस दिन जिसे मौत नहीं आई, वह आज भी जिन्दा रह जायगी।

फिर राम बाबूकी तरफ़ मुँह करके कहा—आप जरा भी चिन्ता न करें ताऊजी। हम लोग कल सबेरे ही जा सकेंगे। आपका ऋण मैं जन्मान्तरमें भी नहीं चुका सकती ताऊजी, हम लोग कल ही बिदा होंगे।—कहते कहते वह रो दी, और चटसे भागकर अपने कमरेमें जाकर उसने भीतरसे किवाड़ बन्द कर लिये।

वृद्ध राम बाबू ठीक मानो वज्राहतकी भाँति निश्चल होकर बैठे रहे। उनकी विह्वल व्याकुल दृष्टि एक बार सुरेशके झुके हुए चेहरेकी तरफ, एक बार उस बन्द किवाड़की तरफ जाकर सिर्फ यह विफल प्रश्न करने लगी कि यह हुआ क्या? परन्तु अन्तर्यामीके सिवा इस मर्मान्तक अभिमानका और कौन उत्तर दे सकता था?

३७

दूसरे दिन सबेरेसे ही आकाश मेघाच्छन्न था। उस मलिन आकाशके नीचे सारा संसार कैसा तो एक तरहका उदास और म्लान दिखाई दे रहा था। जुती हुई गाड़ी दरवाजेपर खड़ी थी और उसपर ट्रंक बिस्तर आदि लादे जा रहे थे। पत्राके शुभ मुहूर्तमें अचला नीचे उतर आई और गाड़ीपर बैठनेके पहले राम बाबूके पैर छूने लगी तो वे जबरदस्ती मुँहपर हँसी लाकर बोले—बेटी, बूढ़े आदमीकी बेटी होनेमें बड़े बखेड़े होते हैं। जरासा पाँव छू लेने और मील दो मील दूर चले जानेसे ही पिण्ड छूट जायगा, ऐसा न समझ लेना।

अचलाने सजल नेत्रोंको ऊपर उठाकर धीरेसे कहा—मैं तो ऐसा चाहती

नहीं ताऊजी !

इस करुण बातके सुनते ही वृद्धकी आँखोंमें भी पानी आ गया। उन्हें सहसा ऐसा मालूम हुआ कि यह अपरिचित लड़की फिर मानो परिचयके बाहर बहुत दूर हटी जा रही हो। स्नेहार्द्र कंठसे उन्होंने कहा—सो क्या मैं जानता नहीं, बिटिया ? नहीं तो, पतिके साथ अपने घर जा रही हो, इसमें मुझे खुशी होनी चाहिए, भला आँखोंमें आँसू क्यों आयें ? मगर फिर भी तो उन्हें रोक न सका। —इतना कहकर उन्होंने हाथसे आँसूकी बूँद पोंछ डाली और फिर हँसते हुए वे कहने लगे—पास थीं, रात-दिन तंग किया करता था; अब उतना न कर सकूँगा, पर आगे ब्याजसमेत वसूल करनेमें भी कसर न छोड़ूँगा, सो भी तुम देख लेना।

सुरेश पीछे खड़ा था। उसने आज वास्तवमें भक्तिके साथ वृद्धके पाँव छूए। राम बाबूने चुपकेसे कहा—मेरे यहाँ तुम सुखसे नहीं थे, सो मैं जानता हूँ सुरेशबाबू ! तुम्हारे अपने घरमें वह बात दूर हो जाय, मेरा मन-वचन-कायसे यहीं आशीर्वाद है।

सुरेश मुँहसे बोला कुछ नहीं, सिर्फ दुबारा झुककर प्रणाम करके गाड़ीपर बैठ गया।

राम बाबूने फिर एक बार आशीर्वाद देकर ऊँचे स्वरमें जता दिया कि उन्होंने भी इक्का लानेके लिए आदमी भेजा है। हो सकता है कि शामके पहले पहले वे भी पहुँच जायँ। मगर उस समय इस तरह गुस्सा होनेसे काम न चलेगा, समझी कि नहीं—यह कहकर उन्होंने करना तो चाहा था मज़ाक, पर हुआ यह कि एक गहरी साँस लेकर वे चुप हो रहे।

गाड़ीके चले जानेपर वे मन ही मन कहने लगे, यह अच्छा ही हुआ कि ये समय रहते चले गये। क्योंकि यहाँ न सिर्फ स्थानकी ही कमी थी, पर साथ ही वे अपनी विधवा बहनके स्वभावको अच्छी तरह जानते थे। दूसरोंकी भीतरकी बात रत्ती रत्ती जाननेके उनके कुतूहलका अन्त न था। आनेके साथ ही वे सुरमाकी कठिन परीक्षा करने लग जातीं, और उसका नतीजा चाहे जो भी होता, पर वह प्रसन्न होनेकी बात न होती। इस लड़कीका कुछ भी न जानते हुए भी वे इतना जान गये थे कि वह वास्तवमें भद्र महिला है। अपनी किसी भी सहूलियतके खातिर वह हरगिज झूठ नहीं बोल सकती।—वह ब्राह्मसमाजी पिताकी

लड़की है और खुद भी छुआछूत और देवी-देवता नहीं मानती, इनमेंसे कोई भी बात वह छिपाएगी नहीं जिससे इस घरमें ऐसा उपद्रव उठ खड़ा होगा कि जिसकी कल्पना करते ही दिल धड़कने लगता है। परन्तु यह तो हुई उनकी अपनी सुख-सुविधाकी बात। और भी एक बात थी जिसे वे स्वयं अपने लिए भी कभी स्पष्ट नहीं करना चाहते थे: उनके कोई लड़की नहीं थी; प्रथम सन्तान उनकी लड़की ही थी और होते ही मर गई थी। आज वह जीवित रहती तो अचलाकी जननी हो सकती थी, इसलिए उमर या चेहरेका सादृश्य कुछ भी नहीं था, परन्तु फिर भी इस विषयकी भूख उनकी कितनी बड़ी थी, यह बात उसी दिन मालूम हो गई थी जिस दिन इस अचलाको उन्होंने पतिके इलाजके लिए रोते-बिलखते हुए रास्तेमें इधर उधर भटकते देखा था। उस दिन उन्हें ऐसा मालूम हुआ था कि अपनी बहुत दिनोंकी खोई हुई सन्तान आज मानो उन्हें अचानक मिल गई हो, और तबसे वह ममता प्रतिदिन बढ़ती ही गई। भीतर ही भीतर वे अनुभव यह भी करते थे कि न जाने कौन-सा एक गंभीर रहस्य इस लड़कीको घेरे हुए है, जिसका उन्हें पता नहीं; परन्तु साथ ही यह कहकर मनको समझा भी लेते थे कि है तो रहने दो,—जो आँखोंके ओझल है वह ओझल ही रहे; कोशिश करके उसे बाहर खींच लानेकी जरूरत नहीं।

एक दिन राक्षसीने जरा-सा आभास दिया था कि शायद इसके भीतर कोई पारिवारिक झगड़ा है, शायद झगड़ा करके ही सुरेश बाबू स्त्रीके साथ घर छोड़कर चले आये हैं। सहसा जिस दिन अचलाने अपनेको ब्राह्म-महिला बताया था और साथ ही सुरेशके गलेमें यज्ञोपवीत भी देखा था, उस दिन वृद्ध जरा चौंके थे, परन्तु मन ही मन इस गुप्त रहस्यका उन्हें एक हेतु भी मिल गया था;— उस दिन उन्हें निश्चयसे ऐसा मालूम हुआ था कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि सुरेशने ब्राह्मसमाजीके घर ब्याह करके ही यह आफत सिरपर बुलाई है, और क्रमशः यही विश्वास उनके मनमें बद्धमूल हो गया था।

वृद्ध राम बाबू सच्चे अर्थोंमें हिन्दू थे; और यही वजह थी कि उन्होंने हिन्दू धर्मकी निष्ठा तो पाई थी, पर उसकी निष्ठुरता नहीं पाई। ब्राह्मण-सन्तान सुरेशकी यह दुर्गति न होती तो वे खुश होते; पर यह प्रेमका विवाह, आत्मीय-स्वजनोंका विच्छेद, इस तरहकी दुबकाचोरी,—इन सबका सौन्दर्य और माधुर्य भीतर ही भीतर उन्हें अत्यन्त मुग्ध कर दिया करता है। इसको बगैर जाने प्रश्रय देनेमें

उनका सम्पूर्ण मन मानो उस रसमें डूब जाता था। इसीसे, जब कभी इन दो विद्रोही प्रेमी-प्रेमिकाका प्रणय-अभिमान उनके आगे मनोमालिन्यके रूपमें प्रकट होता, तब अत्यन्त वेदनाके साथ उन्हें इसी बातका खयाल आता कि पराये घरकी अत्यन्त संकीर्ण और संकुचित लकीरके भीतर जो मिलन बराबर आपसमें टकरा जाया करता है, शायद वह अपने घरमें जाकर स्वाधीन और प्रशस्त अवकाशमें घर-गृहस्थीके अनेकों काम-धन्धोंमें शान्ति और सामंजस्यकी स्थिति प्राप्त कर सकेगा।

उनके नहानेका समय हो गया था। अँगोछा कंधेपर डालकर नदीकी तरफ जाते हुए वे मन ही मन हँसकर कहने लगे, बेटी जाते समय इस बूढ़ेपर बड़ी रूठकर गई है। सोचा होगा, अपने आदमियोंकी खातिर ताऊजीने हम लोगोंको घरमें जगह नहीं दी! मगर दो-चार दिन बाद जब देखूँगा कि मारे खुशीके फूली नहीं समाती, तब इसका बदला लूँगा। उस दिन कहूँगा, इस बूढ़ेकी सरकी कसम है बेटी, सच सच तो बताओ, अब उस गुस्सेमेंसे कितना और बाकी है? तब देखूँगा, बेटी क्या जवाब देती है।

इतना कहते कहते उनका चेहरा प्रशान्त निर्मल हास्यसे उद्भासित हो उठा। उन्हें अपनी कल्पनामें मानो स्पष्ट दिखाई दिया कि सुरमा मुसकराकर कामका बहाना करके चली गई है और दूसरे ही क्षण एक थालीमें 'सन्देश' (छैनाकी बनी बरफी) ले आई है; और चेहरेपर अत्यन्त गम्भीरता लाकर कह रही है—मेरे हाथकी बनी मिठाई अगर न खायेंगे ताऊजी, तो सचमुच बड़ी भारी लड़ाई हो जायगी।

स्नान करनेके बाद पानीमें खड़े खड़े गंगास्तोत्र पढ़ते समय बुड्ढेको बीच बीचमें मन ही मन उस लड़कीकी हँसी छुपानेके व्यर्थ प्रयत्नकी 'सागसे मछली ढकने' की तुलना करके बड़ी हँसी आने लगी; और मनमें जो क्षोभ पिछली रातसे बराबर बढ़ता ही जा रहा था वह संध्या-पूजा करके लौटते वक्त रास्तेमें ही कल्पनाकी स्निग्ध वर्षासे शान्त हो गया।

तार आ गया है, कल सबेरे ही सब आ जायँगे। साथमें राजकुमार, नाती और राजवधू भानजीके सबबसे सम्भवतः आदमी कुछ ज्यादा आयेंगे। आज उनके घर काम कम न था, और साथ ही आकाशके ढंग भी अच्छे न थे। मगर फिर भी, इस डरसे कि कहीं पानी न बरसने लगे और जाना न हो सके,

राम बाबू दिन छुपनेके पहले ही इक्का किराये करके चल दिये और इक्केवालेको इनामकी उम्मीद देकर जल्दी ले चलने लगे। परन्तु रास्तेमें पानी बरसनेकी ठंडी हवा चलने लगी, और वहाँ पहुँचते न पहुँचते थोड़ी-थोड़ी वर्षा भी शुरू हो गई।

अचला बाहर निकल आई, और बोली—ऐसे बादलोंमें आज क्यों चले आये ताऊजी? और जरा देर हो जाती तो भीग न जाते!

उसके चेहरेपर और कण्ठस्वरमें भावी आनन्दका चिह्न तक न देखकर बुड्ढेका दिल बैठ गया। इसके लिए वे बिलकुल ही तैयार नहीं थे,—मानो किसीने उनकी कल्पनाकी मालाको झटका देकर तोड़कर फेंक दिया। फिर भी चेहरेके उत्साहको कायम रखकर उन्होंने कहा—अरे बापरे, तब फिर मेरी खैर थी! पानीमें भीगनेको मैं सम्हाल लूँगा, पर त्याज्यपुत्र होकर हमेशा कौन रहता मा?

इस दुर्बोध्य लड़कीको वृद्ध कभी भी नहीं समझ पाये। खासकर कल रातके व्यवहारसे तो वे विस्मयसे हतबुद्धि हो गये थे; और आजके आचरणसे तो मानो बिलकुल ही दिशाहीन होकर भटके-से रह गये। उनकी सुरमा किसी भी दिन किसी कारणसे ऐसा कर सकती है, उनके लिए ऐसा स्वप्न देखना भी असम्भव था। बात तो सिर्फ इतनी ही थी, पर इतनेहीमें वह लड़की ठीक पागलकी तरह एकदम दौड़कर उनकी छातीपर औंधी होकर लेट गई और फूटफूटकर रोने लगी। बोली—ताऊजी, क्यों आप मुझे इतना प्यार करते हैं,—मैं मारे शरमके मिट्टीमें मिली जाती हूँ जो!

बहुत देर तक राम बाबूसे कुछ बोला नहीं गया, सिर्फ एक हाथसे उसे अपनी छातीपर दबाकर दूसरा हाथ उसके माथेपर फेरते रहे। उनका स्नेहार्द्र चित्त उसके सामाजिक अननुमोदित विवाहकी बात, आत्मीय-स्वजन और माता-पितासे विद्रोह-विच्छेदकी बात और झगड़ा करके घर छोड़नेकी बात याद करके उसी पुरानी, परिचित और अनेक बारकी अभ्यस्त धाराके बहावमें ही बहता चला गया; उसने किसी भी तरह और एक नया रास्ता खोदनेकी कल्पना नहीं की। इसी तरह, यह मौन वृद्ध और यह रोती हुई तरुणी बहुत देर तक एक ही भावसे खड़े रहे। उसके बाद राम बाबू चुपके-से कहने लगे—इसमें शरमकी बात क्या है बिटिया? तुम मेरी लड़की हो, तुम मेरी वही सती-लक्ष्मी मा हो जो बहुत दिन पहले सिर्फ दो दिनके लिए मेरी गोदमें आकर चली गई थी,—मोह न छोड़ न सकनेके कारण फिर बापकी गोदमें लौट आई हो,—मैं तो तुम्हें देखते ही पहचान गया था सुरमा।

इतना कहकर वे उसे अपने पास एक कुरसीपर बिठाकर नाना प्रकारसे बार बार यही बात समझाने लगे कि इसमें शरमकी कोई बात नहीं, लज्जाकी कोई बात नहीं। युग युगसे हमेशासे ऐसा होता आया है।—जो सती हैं, जो स्वयं आद्या-शक्ति हैं, वे भी एक बार पतिके साथ रहनेके लिए बाप-मा और आत्मीय-स्वजन सबको छोड़कर झगड़ा करके चली गई थीं। फिर सब कुछ होगा, सब वापस मिल जायगा; आज जो लोग विमुख हैं, वे फिर मुँह फेरकर देखेंगे; फिर वे अपने पुत्र और पुत्र-वधूको घर बुलायेंगे। देख लेना बेटी, मेरा यह आशीर्वाद निष्फल नहीं होगा।

इस तरहकी न जाने कितनी बातें वृद्ध अपने मनके आवेगमें कहते गये। उनमें सार चाहे हो न हो, पर उनके भारसे श्रोताका सिर धीरे धीरे मानो धूलमें मिला जाने लगा। जोरकी वर्षा हो रही थी। इसी समय देखा गया कि सुरेश भीगता और मिट्टीसे लथपथ दौड़ता हुआ बाहरसे चला आ रहा है। उसे देखते ही अचलाने झटपट आँखें पोंछ डालीं, उठकर वर्षाका पानी हाथमें लेकर आँसूके सारे चिह्न धो डाले और अपनी जगहपर आ बैठी। राम बाबूने समझ लिया कि सुरमा, चाहे किसी भी कारण हो, अपने आँसुओंके इतिहासको पतिसे छिपाये रखना चाहती है।

सुरेशने ऊपर आकर राम बाबूको जो देखा, तो उसे आश्चर्य हुआ; वह कुछ कहना ही चाहता था कि व्यस्त होकर राम बाबू बोल उठे—बातचीत पीछे होगी सुरेश बाबू, मैं भागा नहीं जाता। आप कपड़े बदल आइए।

सुरेश हँस दिया, बोला, "यह कुछ नहीं।" और एक कुरसी खींचकर बैठने लगा। इतनेमें अचलाने मुँह उठाकर उसकी तरफ देखा और कहा, "ताऊजीकी बात माननेमें बुराई क्या है? महीना-भर भी नहीं हुआ, इतनी बड़ी बीमारीसे उठे हो,—बार बार मुझे और कितनी सजा देना चाहते हो?"

उसकी बात और चितवनमें इतना बड़ा व्यवधान था कि दोनोंके दोनों विस्मित हो गये; परन्तु इस विस्मयका स्रोत बहने लगा ठीक उल्टी दिशामें। सुरेश कुछ जवाब न देकर आदेश पालन करने चला गया, और राम बाबू बाहरकी तरफ देखने लगे।

बाहर वर्षा होती ही चली जा रही थी। जितनी रात बीतने लगी, वर्षाका प्रकोप उतना ही बढ़ता चला गया। बहुत दिनोंके अवर्षणसे धरती सूख-सी गई

थी; अब ऐसा लगने लगा कि उसकी सारी दीनता,—सारे अभावको आज रात ही रातमें पूरा कर देनेके लिए विधाताने कमर कस ली है।

राम बाबूके उद्वेगको लक्ष्य करके अचलाने आहिस्तेसे कहा—घर जानेमें तो बड़ी तकलीफ होगी ताऊजी, आज रातको न जायँ तो क्या है? वे हँस दिये और अपने मानसिक चांचल्यको दबाकर बोले—तकलीफकी कोई बात नहीं, ऐसे आँधी-मेहमें इस नई जगहमें तुम लोगोंको छोड़कर मैं नहीं जाता, पर, कल सवेरे ही सब आनेवाले हैं, रातमें घर बगैर पहुँचे काम नहीं चलेगा सुरमा। लेकिन, मेरा ख्याल है, मेह ऐसा न रहेगा, घंटे-भरमें थम जायगा। तब तक मैं ठहरा हुआ हूँ।

इसी प्रसंगमें, कल जो लोग आनेवाले हैं उनकी बातसे लेकर संसार-धर्म, समाज, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, इहलोक-परलोककी चर्चा चल पड़ी। दोनों ऐसे मग्न हो गये कि कितना समय बीत गया, कितनी रात हो गई, किसीको कुछ ध्यान ही न रहा। बाहर बिजलीका गरजना और वर्षा उत्तरोत्तर कितनी बढ़ती गई और अन्धकार कितना दुर्भेद्य हो गया, इस ओर किसीका ध्यान ही न गया। इस वृद्धके अन्दर जितना भी ज्ञान, इस असार संसारका जितना भी शून्य-दर्शन और भक्ति-भाव संचित था, उसने अपनी इस परम स्नेहपात्रीके आगे बिना किसी बाधाके उत्सारित होनेका मार्ग पाकर केवल इन दो व्यक्तियोंकी निराली सभाको मानो माधुर्यसे भर दिया। अचलामें सिर्फ इतनी ही चेतना बच रही कि उसे मालूम हुआ, वह ऐसे एक हृदयकी सत्य-अनुभूतिकी बातें सुन रही है जो निष्पाप है और जिसका स्नेह, प्रीति और श्रद्धा उसने पूर्णरूपसे प्राप्त कर ली है।

सहसा पैरोंकी आहट सुनकर दोनोंने पीछेकी तरफ देखा कि नौकर खड़ा है। उसने कहा—बहूजी, रात बहुत हो चुकी है, करीब बारह बज रहे हैं,—आपकी थाली पहुँचा दी जाय?

अचलाने चौंककर कहा—बारह बज रहे हैं? बाबू—

“वे अभी अभी जीमकर सोने गये हैं।”

सुरेश तबका गया अब तक लौटा नहीं इस बातका अभी जाकर उसे खयाल आया। अचलाने उचककर देखा: सुरेशके कमरेके परदेमेंसे रोशनी चमक रही है। राम बाबू क्षुब्ध और लज्जित होकर बार बार कहने लगे—मुझसे बड़ी गलती हो गई बेटी, बड़ी गलती हो गई! तुम्हें ऐसा रोक रखा कि उनका ठीकसे खाना-

पीना हुआ कि नहीं, तुम देख भी न सकीं। अब तुम जाओ बेटी, जीमने—

अचलाने इन बातोंका कोई जवाब नहीं दिया। नौकरसे पूछा—कोचवान गाड़ी जोतकर ठीक वक्तपर लाया क्यों नहीं?

नौकरने कहा—नये नये घोड़े हैं, आँधी-मेह और अँधेरेमें गाड़ी ले जानेकी हिम्मत नहीं पड़ी।

"तो फिर और कोई गाड़ी क्यों नहीं लाई गई?"

नौकर चुप रहा। मगर इसके मानी कुसूर मंजूर करना नहीं था, बल्कि प्रतिवाद करना था कि ऐसा हुक्म तो उन लोगोंको मिला नहीं।

राम बाबू उत्कंठा दिखानेके बदले लज्जित होकर बार बार कहने लगे—गाड़ीकी जरूरत नहीं, न जाऊँ तो भी कोई हर्ज नहीं,—जल्दीसे उठकर सबेरे ही स्टेशन पहुँच जानेसे काम चल जायगा। मैं रातको तो खाता-वाता नहीं, उसकी भी कोई झंझट नहीं,—सिर्फ तुम कुछ खा-पीकर सो रहो बेटी। बातचीत करते करते बहुत रात हो गई है,—बड़ी गलती हो गई मुझसे—कहते हुए उन्होंने एक तरहसे जबरदस्ती ही अचलाको नीचे खानेके लिए भेज दिया और लगभग पंद्रह मिनिट बाद जब वह ऊपर वापस आई, तो व्यग्र और उत्सुक होकर उससे बोले—बस, अब एक मिनटकी भी देर न करो, तुम सोओ जाकर। मैं बैठकमें कोचपर आरामसे सो जाऊँगा, मुझे कोई तकलीफ न होगी,—जाओ, सोओ तुम।

वृद्धके बार बार साग्रह कहनेसे और अपनी मानसिक उत्तेजनासे अचलापर मानो कोई जाल-सा छा गया। जो सम्मान और श्रद्धा-स्नेह अब तक वह अपने इस नित्य शुभाकांक्षी पितृवत् वृद्धसे सिर्फ धोखा देकर ही पाती आई है, उसका लोभ ही आज उसे इस अत्यन्त दुःसमयमें उसका कंठ रोधकर, अप्रतिहत बलसे जबरदस्ती सुरेशके उस निर्जन शयन-कक्षकी तरफ धकेलने लगा। उसे याद आया, ऐसी ही एक आँधी-मेहकी रातने उसे अपने पतिसे अलग किया था, आज फिर वैसी ही एक रातका दुरतिक्रम्य अभिशाप उसे हमेशाके लिए सीमाहीन अन्धकारमें डुबोनेके लिए तैयार खड़ा है। कल वह असह्य अपमानसे लज्जाके गहरे कीचड़में गले तक डूब जायगी, यह उसे आँखोंके सामने स्पष्ट दिखाई देने लगा; मगर फिर भी, आज उस मिथ्याने ही जयमाला पहनी और उसे किसी भी तरह सत्य नहीं कहने दिया। आज जीवनके इस चरम क्षणमें अभिमान और

मोह ही उसका चिरविजयी हो रहा। उसने बाधा नहीं दी, बात नहीं की,—एक बार पीछेकी तरफ मुड़कर भी नहीं देखा। वह चुपचाप धीरे धीरे सुरेशके शयन-कक्षमें जा पहुँची।

बाहरकी उन्मत्त प्रकृति वैसी ही मदोन्मत्त बनी रही, गाढ़े अन्धकारमें बिजली वैसी ही हँसी हँसती रही,—सारी रात कहीं भी कोई रंचमात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ।

× × ×

नई जगहमें राम बाबूको अच्छी तरह नींद नहीं आई; खासकर मनमें चिन्ता रहनेसे पौ फटते ही उनकी आँख खुल गई। बाहर आकर देखा कि वर्षा तो थम गई है पर उसका आवेश अभी दूर नहीं हुआ है। नौकर लोग अभी उठे हैं या नहीं, यह देखनेके लिए बरामदेके एक किनारे पहुँचते ही वे सहसा चौंक पड़े। देखा कि कोई टेबिलपर माथा टेके कुरसीपर बैठा है। पास जाकर देखा तो अचला है! मारे आश्चर्यके वे पूछ उठे—सुरमा, तुम यहाँ? इतनी जल्दी क्यों उठीं बेटी?

सुरमाने एक बार मुँह उठाकर देखा और फिर उसी तरह टेबिलपर सिर टेक दिया। उसका चेहरा मुरदे जैसा सफेद फक पड़ गया था, आँखोंके नीचे गाढ़ी कालिमा छा गई थी;—और जैसे काले पत्थरमेंसे झरनेकी धारा बहती है, ठीक उसी तरह दोनों आँखोंसे आँसू झर रहे थे।

वृद्ध राम बाबूके मुँहसे एक अस्फुट शब्द निकला और वे एकटक उस अर्द्धमृत नारीकी तरफ चुपचाप देखते रह गये, कोई बात उनके कंठसे बाहर न निकल सकी।

३८

सबेरेके वक्त मुट्ठी-भर गरम 'मुड़ी'के साथ चाय पीनेके बाद केदार बाबूने तृप्तिका साँस ली। जूठे बरतन उठानेके लिए मृणाल आई, तो उन्होंने उससे कहा—बेटी, तुम्हारी इस गरम मुड़ी और पथरौटीकी चायमें नहीं मालूम क्या अमृत है, कि एक महीना हो गया, मैं यहाँसे हिल न सका।

अचलाके नातेसे मृणालने उन्हें बापूजी कहना प्रारम्भ कर दिया था। उसने कहा—क्यों तुम यहाँसे भागनेके लिए जल्दी कर रहे हो बापूजी! तुम्हारी यह,

—मैं क्या सेवा करना नहीं जानती ?

'तुम्हारी यह लड़की क्या', मृणाल असावधानीसे यही कहने जा रही थी; पर उसे दबाकर उसने वाक्यका रुख बदल दिया। शायद इसीसे केदार बाबूने इस इशारेको समझकर भी न समझा। परन्तु उनका कंठस्वर सहसा करुण हो उठा; बोले, "भागनेकी जल्दी कहाँ कर रहा हूँ बेटी! तुम्हारी बनाई हुई चाय, तुम्हारे हाथकी रसोई,—तुम्हारे इस मिट्टीके घरको छोड़कर मुझे स्वर्ग जानेकी भी इच्छा नहीं होती। उस छोटेसे जंगलेके किनारे बैठकर मैं अकसर सोचा करता हूँ, मृणाल, और भी दो साल अगर भगवानकी दयासे जिन्दा रहा, तो कलकत्तेमें जिन्दगी-भर रहकर जितना भी नुकसान मैंने अपना किया है, उस सबकी पूर्ति कर लूँगा जिससे कि उस मूल-धनको हाथमें लेकर उनके पास जाकर खड़ा हो सकूँ।"

कितनी बड़ी वेदनामेंसे उन्होंने ये बातें कहीं, और कैसी मर्मान्तक लज्जासे कलकत्तेके आजन्म-परिचित मुहल्ले और मकानको छोड़कर,—हमेशाके आश्रित-समाजको छोड़कर, इस जंगलमें कच्चे घरमें रहकर बाकीके दिन बितानेकी अभिलाषा व्यक्त की! इस बातको मृणाल समझ गई, और इसीलिए कुछ उत्तर न देकर चायकी पथरौटी उठाकर धीरेसे चली गई।

यहाँपर जरा पहलेकी बात कह देना आवश्यक है। करीब महीना-भर हुआ, केदार बाबू यहाँ आये थे, और तबसे फिर लौट नहीं सके। माहिमकी बीमारीके समय सुरेशके कलकत्तेवाले मकानमें इस विधवाके साथ उनका पहले-पहल परिचय हुआ था; परन्तु यहाँ उसके अपने घरमें आकर उसका जैसा परिचय मिला उससे उनका सम्पूर्ण शरीर और मन सोनेकी जंजीरसे बँध गया। इस बन्धनसे अपने आपको किसी भी तरह मुक्त करते नहीं बनता, हालाँ कि कितने ही जरूरी काम उनके बाकी पड़े हुए हैं।

महिमसे उनकी भेंट नहीं हुई। इनके आनेका समाचार पाते ही वह व्यस्त होकर चला गया था। जाते समय मृणालने उसे रोकनेके लिए जिद नहीं की, कारण, बचपनसे ही अपने इस भइयाके संयम और सहिष्णुताके प्रति,—बुद्धि और विवेचनाके प्रति उसकी इतनी अगाध श्रद्धा थी कि वह निश्चयसे समझ गई कि अचलाके साथ मुलाकात करना उचित नहीं समझकर ही वह यहाँसे भागा जा रहा है। उसने समझा था कि उसका पत्र पाकर केदार बाबू, लड़की और

दामादमें मेल करा देनेके लिए ही, इस तरह जल्दीसे उसे साथ लिये आ रहे हैं।

अभी तक उसका कुछ स्पष्टीकरण नहीं हुआ, सिर्फ संशयके बोझसे उत्तरोत्तर भाराक्रान्त होकर ही एकके बाद एक दिन नीरवतासे बीत रहे थे। सिर्फ ऊपरकी तरफ देखकर इतना समझमें आ जाता है कि आकाशमें जो दुर्भेद्य मेघ हैं, उनके स्तर अगर किसी दिन फटें तो फट भी सकते हैं, पर उसके पीछे अन्धकार ही संचित है, चन्द्रमाकी चाँदनी नहीं है।

सुरेशकी बुआजीने अपने लापता भतीजेके लिए व्याकुल होकर मृणालको चिट्ठी लिखी है, और वह केदार बाबूके हाथ पड़ गई है। महिमने लिखा है कि वह किसी एक बड़े जमीदरके यहाँ गृह-शिक्षकका काम कर रहा है, उस चिट्ठीको भी उन्होंने बार बार पढ़ा है, मगर कहीं भी किसी भी तरफसे उनकी कन्याका उल्लेख तक नहीं किया गया। यद्यपि दोनों चिट्ठियोंकी प्रत्येक पंक्तिका अक्षर अभागे पिताके कानोंमें सिर्फ एक ही बात बार बार कह रहा है, परन्तु फिर भी उसे सत्य-रूपमें अनुभव करने लायक शक्ति उनमें नहीं है।

अचला सिर्फ उनकी एकमात्र सन्तान ही हो, सो बात नहीं; बचपनमें जब उसकी मा मरी थी, तबसे उन्हींने उसकी जननीका स्थान अधिकार करके उसे छातीसे लगाकर पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है। उस लड़कीके गभीर अकल्याणकी आशंकासे उनका शरीर दिन दिन क्षीण हो रहा था और कच्चे सोने जैसा गोरा रंग काला पड़ता जा रहा था। और मजा यह कि अमंगल जिस रास्तेसे आ रहा था, वह रास्ता पिताके लिए ही दुनियामें सबसे ज्यादा अवरुद्ध था।

गाँवके दो-चार वृद्ध पड़ोसी कभी कभी उनसे बातचीत करने आया करते थे, परन्तु वे स्वयं मारे संकोचके किसीके घर न जाते थे। मृणाल कभी इस बारेमें कुछ कहती, तो वे हँसकर कह दिया करते—जरूरत क्या है बेटी? मुझ जैसे म्लेच्छका किसीके घर न जाना ही अच्छा है।

मृणाल कहती—तो फिर वे भी क्यों आयेंगे?—वृद्ध उसकी बातका कोई जवाब न देकर छतरी तानकर मैदानकी तरफ चल देते। वहाँ किसानोंके साथ वे अपनी तरफ़से बात छेड़कर परिचय करते। उनके सुख-दुःखकी बात, न्याय-अन्याय और पाप-पुण्यकी बात,—इसी तरहकी और भी न जाने कितनी बातचीत करके काफी दिन चढ़नेपर घर लौटते। प्रतिदिन चाय पीनेके बाद यही उनका काम था।

जन्मसे ही हमेशा वे कलकत्ते रहते आये हैं। शहरके बाहर जो असंख्य गाँव हैं उनसे उनका सम्बन्ध-सूत्र पीढ़ियोंसे टूट चुका है। आत्मीय कुटुम्बी-जन भी धर्म-परिवर्तनके साथ साथ अलग हो गये थे, इसलिए अधिकांश नागरिकोंकी तरह उनके सम्बन्धमें कुछ न जानते हुए भी उनकी विविध अद्भुत धारणाएँ हों, तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। जो अशिक्षित असंख्य किसान दूर गाँवोंमें रहकर ही सारी ज़िन्दगी बिता दिया करते हैं,—शहरका मुँह देखना जिनके भाग्यमें शायद ही कभी बदा होता है, उन्हें वे एक तरहसे पशु ही समझा करते थे और उस समाजको भी उन्होंने जंगली समाज समझ रखा था। परन्तु, आज जब कि दुर्भाग्यने अपने तीक्ष्ण जहरीले दाँत उनके हृदयमें गड़ाकर उनके मनको अपने समाजसे विमुख कर दिया था, तब ज्यों ज्यों इस बिना पढ़े-लिखे गाँवके गरीब किसानोंसे उनका घनिष्ठ परिचय होने लगा, त्यों त्यों उनके हृदयमें इनके प्रति प्रेम और श्रद्धा उमड़ने लगी; और साथ ही, अपने समाज, उसके आचार और आचरण, शिक्षा और संस्कृति, धर्म और सभ्यता, विधि-विधान,—सबके विरुद्ध विद्वेष और विरक्तिसे उनका मन विद्रोही हो उठा।

वे स्पष्ट देखने लगे कि ये बेपढ़े-लिखे और निरक्षर होनेपर भी अशिक्षित नहीं हैं। बहुत युगोंकी प्राचीन सभ्यता आज भी इनके समाजकी नसोंमें मिली हुई है। नीतिकी मोटी बातें ये लोग जानते हैं। किसी धर्मके विरुद्ध इनका द्वेष-भाव नहीं है; कारण, संसारके सभी धर्म मूलतः एक ही हैं, और तेतीस करोड़ देवी-देवताओंको अमान्य न करके भी एकमात्र ईश्वरको माना जा सकता है, इस बातका इन्हें ज्ञान है और वह अन्य किसीसे भी कम नहीं है। हिन्दुओंका भगवान् और मुसलमानोंका खुदा एक ही वस्तु है, यह सत्य भी इनसे छिपा नहीं।

उनका मन लज्जित होकर बार बार यही कहने लगा : ये लोग किस बातमें हम लोगोंसे छोटे हैं ? इन लोगोंसे कौन-सी बात हम ज्यादा जानते हैं ? किस लिए इनका समाज, इनका सम्बन्ध त्याग कर हम लोग इतने दूर चले गये हैं ? और क्यों वह दूरी इतनी लम्बी है कि इन सब अपने आदमियोंके लिए हम बिलकुल म्लेच्छ हो गये हैं ?

इस तरहका मन लिये हुए आज जब वे घर लौटे, तब करीब दस बजे होंगे।

मृणालने आकर कहा—कल तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं थी बापूजी, आज कहीं तालाबमें नहाने न चले जाना। तुम्हारे लिए मैंने गरम पानी कर रखा है।

"एकदम करके रख ही दिया है ?" कहकर केदार बाबू उसके मुँहकी तरफ देखते रहे।

नहानेके बाद मृणाल संध्या-पूजा करने बैठी थी, उनके आनेकी आहट सुनकर वह उठ आई। भीगे बाल पीठपर बिखरे हुए थे, पट्टवस्त्र पहने थी, चेहरा प्रसन्न था,—उसके समस्त शरीरपर अत्यन्त निर्मल शुचिता विराज रही थी। उसकी तरफ देखते हुए वृद्ध केदार बाबूने कहा, "इतनी तकलीफ क्यों उठाई बेटी, इसकी कोई जरूरत नहीं थी।—फिर जरा ठहरकर बोले—मैं तो कलकत्तेका आदमी हूँ, नलके पानीमें नहाना ही मेरा हमेशाका अभ्यास है। लेकिन तुमने मुझे ऐसा आश्रय दिया है मृणाल, कि तुम्हारा यह गँदला तालाब तक मेरी खातिर बगैर किये न रह सका। उसके पानीसे मेरी कभी तबीयत खराब नहीं होती, मैं तालाबमें ही नहाने जाऊँगा, बेटी।

मृणालने सिर हिलाकर कहा, "नहीं बापूजी, सो नहीं हो सकता। कल तुम्हारी तबीयत खराब हो रही थी, मुझे मालूम है,—मैं पानी लिये आती हूँ, तुम तेल लगाओ तब तक।" इतना कहकर वह जा ही रही थी कि केदार बाबू सहसा कह उठे—अच्छा, सो तो लाओगी ही; लेकिन आज एक बात तो बताओ मृणाल, कि इस तरह पराई सेवा करनेकी विद्या तुमने इतनी-सी उमरमें किससे कैसे सीखी ? ऐसा तो मैंने कहीं देखा नहीं, बेटी !

मारे लज्जाके मृणालका चेहरा सुर्ख हो उठा, मगर फिर भी जबरदस्ती हँसते हुए उसने कहा—लेकिन तुम क्या मेरे पराये हो बापूजी ?

केदार बाबूने कहा—नहीं, गैर नहीं हूँ, मैं तुम्हारा लड़का हूँ। लेकिन इस तरह छुटकारा नहीं मिलनेका, इसका जवाब आज तुम्हें देना ही पड़ेगा।

मृणाल मुड़के खड़ी हो गई और उसी तरह सलज्ज हँसी हँसती हुई बोली—यह ऐसा कौन-सा कठिन काम है कि कोशिश करके सीखना पड़ता ? यह तो हम लोग जन्मसे ही सीखती रहती हैं। लेकिन तुम्हारा पानी जो ठंडा हुआ जा रहा है बापूजी—

"सो हो जाने दो।" केदार बाबू कुछ गम्भीर हो गये और बोले, "ठीक यही बात मैं कुछ दिनोंसे सोच रहा हूँ मृणाल। आदमी सीखता है तब तैरता है,

मगर जो चिड़िया जलचर है वह जनमते ही तैरना शुरू कर देती है। उसके इस सीखनेको कोई देख नहीं पाता, लेकिन कामसे जी चुराकर फल पानेका तो कोई उपाय नहीं है बेटी। ऐसा तो भगवानका नियम नहीं है। कहीं न कहीं, किसी न किसी प्रकार सीखनेका तो दुःख उसे उठाना ही पड़ता है। इसीसे, जिस घोंसलेमें रहकर तुमने जन्मते ही आसानीसे यह विद्या सीखी है, तुम्हारे उसी विशाल समाज-नीड़की बात मैं सोच रहा हूँ। मैं सोचता हूँ कि—"

"लेकिन तुम्हारा पानी जो बिलकुल—"

"रहने दो बेटी, उस पानीको। तालाब थोड़े ही सूखा जा रहा है। मैं सोचता हूँ कि तुम्हारा यह बूढ़ा बेटा छोटे बच्चेकी तरह अपनी मासे चुपके चुपके कितनी बातें सीख ले रहा है, सो भी उसे मालूम नहीं! यद्यपि अब तक देवी-देवता और मंत्र-तंत्रोंमें रत्ती-भर भी विश्वास नहीं हो पाया, मगर फिर भी जब अपनी माको देखता हूँ कि नहानेके बाद वह मटमैले रंगका पट्टवस्त्र पहनके संध्या करने जा रही है, तभी मेरी इच्छा होती है कि मैं भी जनेऊ पहनकर उसी तरह पूजाके पात्र लेकर बैठ जाऊँ।"

मृणालने कहा—क्यों बापूजी, तुम अपने धर्म, अपने समाजको छोड़कर दूसरोंका आचार क्यों पालन करोगे? उसको भी तो कोई दोष नहीं दे सकता।

केदार बाबूने कहा—कोई दे सकता है या नहीं, यह अलग बात है, मगर मैं उसकी ग्लानि करने न बैठूँगा। वह अच्छा हो या बुरा, इस उमरमें उसे छोड़नेकी शक्ति भी मुझमें नहीं है और न बदलनेका पुरुषार्थ ही है। इसी रास्तेसे जीवनके अन्त तक चलना पड़ेगा। मगर तुम्हें जब मैं देखता हूँ,—जब देखता हूँ कि इतनी-सी उमरमें जिसका इतना बड़ा आत्म-विसर्जन है, जो स्वर्ग सिधार चुके हैं उनके प्रति जिसकी इतनी निष्ठा है, उसकी माको ही मा समझकर,—अच्छा, जाने दो, अब न कहूँगा,—मगर मैं भी जिसमें रहकर बच्चे-से बूढ़ा हो गया, बेटी, उस समाजकी भी मन ही मन तुलना बगैर किये मैं रह नहीं सकता। बिना समाजके जो धर्म है, उसपर तो अब श्रद्धा मेरी टिकती नहीं दिखाई देती मृणाल।

मृणाल मन ही मन क्षुण्ण हो गई। उसके व्यक्तिगत जीवनके दुर्भाग्यको वे इस तरहसे अपनी सामाजिक शिक्षा-दीक्षापर आरोपित करें, यह बात उसे अत्यन्त अन्याय मालूम हुई। उसने कहा—बापूजी, ठीक इसी तरह जब हमारे समाजको

आप, देखने लगेंगे, तब इसमें भी आपको बहुत-सी त्रुटियाँ, बहुतसे दोष दिखाई देने लगेंगे। देखेंगे कि हम लोग भी अपने दोषोंको समाजके मत्थे मढ़ देनेमें उतावले बने रहते हैं। हम लोग भी——

परन्तु बात खतम होनेके पहले ही केदार बाबू कह उठे——मगर मैं तो उतावला नहीं हो रहा बेटी! तुम्हारे समाजमें चाहे जितने भी दोष क्यों न बने रहें, त्रुटियाँ क्यों न बनी रहें,——मगर तुम भी तो हो वहाँ! यह चीज़ तो हमारे यहाँ सिर पटकनेपर भी न मिलेगी।

मृणाल मारे लज्जाके सुर्ख हो उठी, बोली——इस तरह तुम अगर मुझे बार बार लज्जित करते रहोगे बापूजी, तो मैं ऐसी भागूँगी कि फिर तुम मुझे ढूँढ़े न पाओगे, सो मैं पहलेसे कहे देती हूँ।

वृद्धने तत्काल कोई जवाब नहीं दिया, सिर्फ चुपचाप म्लान चेहरेसे उसके मुँहकी तरफ देखते रहे। फिर धीरे धीरे बोले——मैं भी तुमसे आज कहे देता हूँ बेटी, यह मैं काम तुम्हें हरगिज न करने दूँगा। तुम मेरी आँखोंकी मणि हो, तुम मेरी मा हो, तुम मेरी एकमात्र आश्रय हो। इस अनाथ अकर्मण्य बूढ़ेके भारसे जब तुम्हारा छुट्टी पानेका दिन आयेगा बेटी,——शायद उसमें ज्यादा देर भी नहीं, उसे मैं आँखोंसे देख न सकूँगा,——तो भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ——कहते कहते उनकी आँखें भर आईं।

कुरतेकी बाँहसे आँखें पोंछकर वे कहने लगे——मेरा एक काम अब भी बाकी है, महिमके साथ मिलना। क्यों वह भागा भागा फिर रहा है, एक बार साफ साफ उससे पूछना चाहता हूँ। ऐसा भी तो हो सकता है कि वह जिन्दा ही न हो?

"बापूजी, तुम ऐसे क्यों डरते हो?"

"डर?" वृद्धने एक गहरी साँस ली, और कहा, "सन्तानकी मौत ही बापके लिए सबसे बड़ा डर नहीं बेटी!"

३९

अपनी एकमात्र कन्याकी मृत्युसे भी बढ़कर जो दुर्गति आज पिताकी दृष्टिमें बड़ी होकर दिखाई दे रही है, उसके आभास-मात्रसे मृणाल संकुचित और लज्जित होकर चुपकेसे अलग खिसक गई, और तब इस साध्वी विधवा लड़कीकी लज्जा ठीक मानो एक भारी हथौड़ेकी तरह उनकी छातीपर आ पड़ी। बहुत देर तक वे

चुपचाप बैठे हुए अपनी सफेद दाढ़ीपर हाथ फेरते रहे, और अन्तमें उन्होंने एक गहरी साँस छोड़कर तेलकी कटोरी उठा ली।

आज सबेरेसे आकाश बिलकुल साफ था, मगर दोपहरके कुछ बादसे ही बादल मड़राने लगे। केदार बाबू अभी अभी बिस्तरपर बैठे थे और पश्चिमकी खिड़की खोलकर बाहरकी ओर देख रहे थे। सामने ही एक अमरूदका पेड़ है जो फूलोंसे छा गया था, और उसपर असंख्य मधुमक्खियाँ आनन्द-कलरवके साथ मड़रा रही थीं। पास ही लम्बी रस्सीसे बँधी हुई मृणालके अपने हाथसे परिमार्जित चिकनी परिपुष्ट गाय बड़ी बड़ी साँस छोड़ती हुई घास चर रही थी, और पीठके ऊपरसे गाँवकी पगडंडीका कुछ अंश स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

" बापूजी, तुम्हारी चाय अब ले आऊँ ? "

केदार बाबूने मुड़कर देखा और कहा—अभीसे ले आओगी बिटिया ?

" वाह, अब दिन थोड़े ही है ज्यादा ! "

उन्होंने जरा हँसते हुए तकियेके नीचेसे घड़ी निकालकर कहा—पर अभी तो तीन भी नहीं बजे बेटी !

मृणालने कहा—न बजें तीन, इससे क्या ? सबेरे जो तुमने कुछ भी नहीं खाया ?

केदार बाबू मन ही मन समझ गये कि आपत्ति करना व्यर्थ है। बोले—अच्छा, ले आओ।

मृणाल क्षण-भर स्थिर रहकर बोली—अच्छा बापूजी, तुम तो बहुत कहा करते थे कि गरम गरम चिवड़ा तुम्हें बहुत अच्छा लगता है ?

" सो झूठी बात थोड़े ही है बेटी। "

" तो वह भी ले आऊँ थोड़ा-सा ? "

" लाओगी ? अच्छा ले आओ। " कहकर उसके मुँहकी तरफ देखकर जबरदस्ती जरा हँस दिये।

मृणालके चले जानेपर वे फिर उसी खिड़कीके बाहर देखने लगे; देखा कि सब धुँधला हो गया है, और दूसरे ही क्षण गरम आँसुओंकी पाँच-छै बूँदें टप टप उनकी गोदमें टपक पड़ीं। चटसे कुरतेकी बाँहसे उन्होंने आँसुओंके दाग घिसके पोंछ डाले और चेहरेको शान्त और स्वाभाविक दिखानेकी कोशिशमें एमर्सनकी किताब खोलकर सामने रख ली।

उसके पन्नोंमें चाहे जो भी हो, उनके मनपर यही छाप पड़ने लगी कि कैसी

आश्चर्यजनक अशोंकी यह सृष्टि है ! संसारके दिन जब कि उँगलियोंपर गिनने लायक रह गये हैं, तभी जाकर इस दीर्घ जीवनकी सारी अभिज्ञता और सारे आयोजनोंको रद करके फिर नया अनुभव अर्जन करनेकी आवश्यकता पड़ गई ! साफ देख रहा हूँ कि मेरे इस मानव-जन्मका साराका सार अतीत बिलकुल व्यर्थ हो गया है,—और साथ ही यह बात भी समझनेमें कसर नहीं कि इस सुदीर्घ व्यर्थताके गढ़ेको भरनेके लिए यह एक ही महीना काफी साबित हुआ है।

दरवाजेपर पैरोंकी आहट सुनकर उन्होंने मुँह उठाकर उधर देखा कि मृणाल पथरौटीमें चाय और रकाबीमें चिउड़ा लिये हुए भीतर आ रही है। दोनों हाथोंसे उन्हें लेते हुए उन्होंने कहा—आज मेरा खाना भर-पेट नहीं हुआ, सो अब मुझे मालूम हो रहा है। लेकिन सुनो बेटी—"

"नहीं बापूजी, तुम बात करना शुरू कर दोगे तो सब ठंडा हो जायगा।"

केदार बाबूने चुपकेसे चायकी पथरी मुँहसे लगा ली और खतम करके उसे नीचे रखते हुए एक लम्बी साँस छोड़कर कहा—मैं यही कामना करता रहा हूँ मृणाल, कि तुम अगले जन्ममें मेरी लड़की होओ। छातीसे लगाकर पाल-पोसकर बड़ा करनेकी विद्या मैंने खूब सीख ली है बिटिया, मैं चाहता हूँ कि अगले जन्ममें जिन्दगी-भर उससे काम लूँ।

कहते कहते अन्तमें उनका स्वर काँपने लगा। और इस ढंगकी बात-चीतसे मृणालको सबसे ज्यादा डर लगता है, इसलिए उसने उनके अपरिस्फुट आवेगकी तरफ जरा भी ध्यान न देकर हँसते हुए कहा—अच्छा ही तो है बापूजी, तुम्हारे बहुतसे बाल-बच्चोंमें मैं भी एक हो जाऊँगी।

वृद्धने उसी वक्त सिर हिलाते हुए कहा—नहीं, नहीं, बहुतसे नहीं बेटी, बहुतसे नहीं। सिर्फ तुम अकेली,—मेरी एकमात्र बिटिया। अकेली तुम मेरे सारे हृदयको घेरे रहोगी। अबकी बार जो कुछ तुमसे सीखे जा रहा हूँ उस सबको एक एक करके अपनी बिटियाको सिखाकर फिर ठीक इसी तरह बुढ़ापेमें सबका सब उससे वापस लेकर दूसरे जन्मके लिए यात्रा करूँगा। इतना कहकर उन्होंने अलक्ष्यमें एक बार आँखोंपर हाथ फेर लिया।

मृणालने क्षुण्ण कण्ठसे कहा—तुम सिर्फ मुझे शरमिन्दा कर दिया करते हो बापूजी, मैं जानती ही क्या हूँ ?

"यही देखो न बिटिया, मैंने अच्छी तरह खाया नहीं, यह मुझे खुद नहीं

मालूम, पर तुम्हें मालूम था।"

"यह क्या कोई बड़ा जानना हो गया? जिसके आँखें हैं, वह तो देखेगा ही।"

"मगर ये आँखें ही तो सबके नहीं होतीं मृणाल", फिर जरा ठहरकर कहने लगे, "लेकिन मुझे सबसे ज्यादा आश्चर्य हुआ है यह देखकर कि भगवान् कहाँ, कब और किस उपायसे आदमीको यथार्थ अपने जनोंसे मिला देते हैं, सो कोई नहीं जानता। इसमें न तो आडम्बर है, न कोई सम्बन्धकी बला, और न समयका ही कोई हिसाब है,—सिर्फ जब पूरे हृदयसे हम उसे पा जाते हैं, तभी मालूम होता है कि इतने दिनों तक इतनी बड़ी कमी सही कैसे गई होगी!

मृणालने आहिस्तेसे कहा—सो ठीक है बापूजी, नहीं तो क्या तुम्हारी जो एक लड़की इस जंगलमें इतने दिनसे पड़ी हुई थी, सो उसकी कभी कोई खबर ही नहीं लेते!

केदार बाबूने कहा—मेरी क्या हस्ती है जो लेता, जब तक कि उनका हुक्म नहीं होता। और जब हुक्म हो गया, तब कहीं भी कोई बाधा नहीं रह गई, न जाने कौन हड़हड़ाकर मुझे घसीट लाया। आज लोग देख रहे हैं कि यह तो सिर्फ एक महीनेका परिचय है, पर मैं जानता हूँ, यह कुछ मेरे किरायेका हिसाब नहीं है जो पत्राके पन्नेके साथ इसकी गणनाका मेल होगा! यह तो मालूम होता है, मानो कितने ही युग-युगान्तरोंसे सिर्फ तुम्हारी छायामें बैठा हुआ हूँ,—इसमें दिन-महीने-वर्षका सवाल ही क्या है?

इतना कहकर वे फिर जरा रुक गये। मृणाल खुद भी कुछ कहना चाहती थी, पर सहसा उनके मुँहकी तरफ देखकर बिलकुल चुप रह गई। उसे ऐसा मालूम पड़ा कि इस वृद्धके हृदयमें इतने दिनोंसे जो दुःखकी चिता नीरवतासे जल रही थी, वह मानो अब बुझना चाहती है; और उसका अन्तिम आभास उनके चेहरे-पर दीप्त हो उठा है और उस म्लान आलोकमें न जाने कहाँका सुगभीर स्नेह असीम करुणासे ओतप्रोत होकर खिल उठा है।

कुछ देर तक कोई भी कुछ नहीं बोला, मृणालकी आनत दृष्टि जमीनकी तरफ उसी तरह स्थिर रही। यह नीरवता आखिर केदार बाबूने ही भंग की। उन्होंने कहा—मृणाल, मैंने एक धर्म छोड़कर जब कि दूसरे धर्मकी दीक्षा ली है, तब बाहरवालोंके आगे न सही, कमसे कम अपने आगे भी एक जवाबदेही आ पड़ी है। उससे अब तक किसी तरह बचता रहा हूँ, पर अब शायद बचा

नहीं जा सकता। धर्मके सम्बन्धमें अब मानो यह बात समझमें आ रही है कि—

लहमे-भरके लिए मृणालके आँख उठाते ही केदार बाबू कह उठे—डरो मत बेटी, डरो मत, मैं बार बार तुम्हारा नाम लेकर अब तुम्हें संकोचमें न डालूँगा; मगर इतने दिनों बाद इस सत्यको निश्चयके साथ समझ रहा हूँ कि लड़ाई-झगड़ा, वाद-विवाद और होड़ा-होड़ी करके और चाहे जो चीज मिल जाय, पर धर्म जैसी चीज नहीं मिल सकती।

मृणालने उनके हृदयकी बात अनुभव करते हुए धीरे धीरे कहा—यह बात सत्य हो सकती है बापूजी, मगर धर्मको मैंने अच्छी चीज समझा है, इसलिए उसे अंगीकार करनेके लिए लड़ाई-झगड़ा वाद-विवाद करना ही होगा, ऐसा तो मुझे महसूस नहीं होता।

केदार बाबूने कहा—सो मुझे भी किसी दिन होता हो, सो बात नहीं; लेकिन जरूरत तो कहीं न कहीं आ ही जाती है मृणाल! किसी भी चीजका त्याग तो हम प्रेमसे करते नहीं। जिसे त्याग देते हैं, उसके सम्बन्धमें मन जो छोटा हो जाता है, वह तो कभी मिटाये मिटता नहीं। इसीलिए तो आज बड़ी जबरदस्त कैफियत देनेकी जिम्मेदारीमें पड़ गया हूँ बेटी! परन्तु, तुम लोगोंने जो जन्मसे ही पाया है, वह अच्छा हो या बुरा, उसीको अवलम्बन करके चल रही हो। इस अन्तरको जरा विचारकर तो देखो।

मृणाल चुप रही, प्रतिवाद करने लायक जवाब उसे कुछ सुझाई नहीं दिया। केदार बाबू खुद भी क्षण-भर मौन रहे, फिर बोले—बिटिया, आज बहुत दिनोंकी भूली हुई बातें भी धीरे धीरे याद आ रही हैं,—मगर ये इतने दिनोंसे छिपी कहाँ बैठी थीं?

मृणालने आँखें उठाकर प्रश्न किया—किसकी बातें बापूजी?

केदार बाबूने कहा—मेरी अपनी ही बातें, बेटी। बड़े होने लायक बुद्धि भगवानने दी नहीं, और बड़ा कभी हो भी नहीं पाया। मैं साधारण आदमी हूँ, साधारण आदमियोंके साथ मिलकर ही ज़िन्दगी बिताई है। जो लोग समाजके शिरोमणि है, समाजके आचार्य हो गये हैं, उनके आदेश-उपदेश ही हमेशासे भक्ति और श्रद्धाके साथ मानता आया हूँ। उनकी कितने दिनोंकी कितनी भूली बातें आज मुझे याद आ रही हैं! तुम कह रही थीं मृणाल, धर्म-ग्रहणमें अच्छी चीज़को छाँट लेनेमें लड़ाई-झगड़ा होना ही क्यों चाहिए? उसकी जरूरत

ही क्या है ? मैं तो इतने दिनोंसे ऐसा ही समझता आ रहा हूँ, और यही कहता भी फिरा हूँ । मगर आज देख रहा हूँ कि जरूरत तो थी ही । आज दिखाई दे रहा है कि हिन्दुओंमें जो यह कहकर शिकायत करते हैं कि देश-विदेशमें उनका मस्तक हम लोग जितना नीचा कर रहे हैं, उतना ईसाई पादरी भी नहीं कर सके हैं ।—इस शिकायतको तो आज मैं झूठ कहकर उड़ा नहीं दे सकता बेटी ! वास्तवमें देखा जाय तो विदेशी विधर्मियोंके हाथमें हम जैसे बिभीषण तो और कोई दिखाई नहीं देते । ”

मृणाल अत्यन्त चंचल हो उठी, पर वृद्ध केदार बाबूने उधर ध्यान ही नहीं दिया । कहने लगे—मृणाल, द्वेषभाव अगर नहीं ही होता तो हम लोगोंमें जो आदर्श कहलाते हैं,—यहाँ तक कि जो मनुष्य-समाजमें आदर्श कहलाते हैं, उनके मुँहसे धर्म-मन्दिरमें धर्मकी वेदीपर खड़े होकर ‘ राम ’ के लिए ‘ रमवा ’, ‘ हरी ’ के लिए ‘ हरिया ’, ‘ नारायण ’ के लिए ‘ नारायना ’ क्यों निकलता ? सबको सम्बोधित करके वे उच्च कंठसे किसलिए इस बातकी घोषणा करते कि अभागे लोग अगर अघाटमें डूब मरना नहीं चाहते तो हमारे इस पक्के घाटमें आवें ? बेटी, धर्मोपदेशकके ताल-ठोंकनेमें हमारे समाजके सभी लोगोंका खून भक्तिसे जैसे गरम हो जाया करता था, उसी तरह श्रद्धासे क्रुद्ध भी हो उठता था,—और उस आलोचनामें पुलकित होनेकी मात्रा भी कहीं जरा तिलमात्र कम न होती थी,—परन्तु, आज जीवनके इस अन्तिम छोरपर पहुँचकर मैं स्पष्ट अनुभव कर रहा हूँ कि उसमें अगर उपदेश कुछ हो भी तो रहा करे, मगर धर्मका लेश-मात्र भी उसमें कहीं नहीं रह सकता ।

मृणालने व्यथित कंठसे कहा—ये सब बातें मुझे तुम क्यों सुना रहे हो ? वे सभी मेरे लिए तो पूज्य ही हैं, वन्दनीय हैं ।

यह कहकर उसने दोनों हाथ जोड़कर माथेसे लगाये । इस भक्तिमती तरुणीके नम्रनत मुखड़ेकी तरफ देखकर वृद्ध मानो विभोर हो रहे; और दूसरे ही क्षण दासीकी बुलाहटसे मृणालके उठके चले जानेपर भी वे उसी तरह स्थिर बैठे रहे ।

सास क्यों बुला रही थीं, यह सुनकर थोड़ी देर बाद मृणालके वापस आते ही केदार बाबू अकस्मात् दोनों हाथ पसारकर उच्छ्वसित आवेगके साथ कह उठे—मृणाल, ऐसे ही दूसरोंकी दोष-त्रुटियोंकी शिकायत करते करते ही क्या मेरी सारी जिन्दगी बीत जायगी ? इससे क्या कभी छुटकारा नहीं मिलेगा बेटी ?

मृणालने कहा—तुम्हारी मशहरीका कोना जरा फट गया है बापूजी, जरा हटके बैठ जाओ न, उसे सीं दूँ।

यह कहकर वह ट्रंकमेंसे सिलाईकी छोटी-सी डिबिया निकाल लाई। केदार बाबू बिस्तरसे उठकर मूढ़ेपर जा बैठे, और उस कर्म-रत मौन लड़कीके आनत मुँहकी ओर एकाग्र दृष्टिसे देखने लगे। वह किसी तरफ मुँह उठाये बगैर ही अपनी धुनमें काम करने लगी, परन्तु देखते देखते केदार बाबूकी आँखोंमें बिना कारण ही बार बार आँसू बहने लगे और उसे वे बार बार धोतीके खूँटसे पोंछने लगे।

सिलाई खतम करके मृणालने डिबिया जहाँकी तहाँ उठाके रख दी और केदार बाबूके पास आकर बोली—रातको तुम क्या खाओगे बापूजी ?

प्रश्न सुनकर केदारबाबूने सहसा एक गहरी साँस ली और अपने अश्रु-करुण ओठोंपर जरा हँसी लाकर बोले, "रातके खानेकी बात सोचनेकी जरूरत नहीं बेटी। उसकी चिन्ता यथासमय हो सकती है। लेकिन तुम जरा एक बार स्थिर होकर बैठ तो जाओ बेटी!" फिर जरा ठहरकर कहने लगे, "इस अपराधका आज ही खातमा है। मेरे मुँहसे अब कभी किसीके बारेमें शिकायत नहीं सुनोगी मृणाल!" फिर जरा ठहरकर बोले, "लेकिन मुझपर तुम नाराज़ न होना, प्रसंग मैंने ठीक इसीलिए नहीं छेड़ा था।"

उनके सहज कंठस्वरसे मृणाल चौंक उठी, बोली—ऐसी बात तुम क्यों कह रहे हो बापूजी, मैं क्या कभी तुमसे नाराज हुई हूँ ?

केदार बाबू उसी वक्त जोरसे सिर हिला हिलाकर बार बार कहने लगे—कभी नहीं बेटी, कभी नहीं। तुम मेरी मा हो न, इसीसे इस बूढ़े लड़केके सभी अन्याय-उपद्रव स्नेहके साथ हँसती हुई सहती आई हो। परन्तु इतने दिनों बाद जिस सत्यको मैंने अपने हृदयके खूनके बदले पाया है, सिर्फ उसीको मैंने तुम्हें दिखाना चाहा है। मृणाल, दूसरोंकी निन्दा-ग्लानि करना मैंने नहीं चाहा। आज मुझे निश्चयसे मालूम हो गया है कि धर्म-वस्तुको एक दिन हम लोगोंने जैसे दल बाँधकर मसविदा करके पकड़ना चाहा था, वैसे उसे नहीं पकड़ा जा सकता। खुद पकड़ाई दिये बगैर शायद उसे पाया ही नहीं जा सकता। परम दुःखकी मूर्तिके रूपमें जब वह मनुष्यकी चरम वेदनाकी छातीपर पैर रखकर अकेला आ खड़ा हो, तब तो उसे पहचान ही लेना चाहिए।—जरा भी भूल-भ्रान्ति उससे सही नहीं जाती, जरामें मुँह फेरकर लौट जाता है वह! मगर ऐसा दुर्भाग्य

मैं अपने बड़ेसे बड़े शत्रुके लिए भी कामना नहीं करता मृणाल !

जिस प्रसंगसे वह हमेशा बचती रहनेकी कोशिश करती रही है, उसीका इशारा पाकर मृणालके संकोच और वेदनाकी सीमा न रही; मगर आज उसने किसी बहानेसे भागनेकी कोशिश नहीं की, बिना उत्तर दिये चुपचाप बैठी रही ।

लगातार बाधा पाते पाते केदार बाबूकी अपनी दृष्टि भी इधर अत्यन्त तीक्ष्ण हो उठी थी, परन्तु आज उन्होंने भी कुछ खयाल नहीं किया; कहने लगे—बेटी, एक बातको बार बार कहकर भी मुझे सन्तोष नहीं हो रहा है, कि तुम्हारे सिवा इतने बड़े संसारमें मेरा अपना कोई आदमी नहीं है, न कोई कभी था ही। इसीसे मेरे अन्तिम जीवनका सारा बोझा,—सारी भलाई-बुराई, नहीं मालूम कैसे तुम्हारे ऊपर आकर स्थिर हो गई है। इस बातको मैंने बिना किसी संशयके समझ लिया है कि जो समस्त विधि-व्यवस्थाके मालिक हैं, यह भी उन्हींकी व्यवस्था है। इसीसे अब मुझे कोई लज्जा या संकोच नहीं। शुरू शुरूमें 'गले आ पड़ने'के संकोचसे मुझे कुछ बाधा-सी मालूम दी थी, पर आज मेरे मनसे उसकी सारी बला बिलकुल दूर हो गई है ।

मृणाल मुँह उठाकर सिर्फ जरा हँस दी। केदार बाबू जरा इधर उधर करके फिर कहने लगे—फिर भी न जाने कैसी हिचक-सी लगती है मृणाल, गलेसे किसी भी तरह बात निकलना ही नहीं चाहती ।

"तो रहने दो बापूजी, वह बात आज न कहो तो हर्ज ही क्या है ?"

केदार बाबूने गरदन हिलाते हुए कहा—नहीं नहीं, अब रुक नहीं सकती, अब रोकनेसे काम नहीं चलेगा। मुझे निश्चित मालूम होता है कि वह सुरेशके साथ ही—

यह संशय मृणालके अपने मनमें भी बहुत बार चोट पहुँचा गया है, इसीसे वह सिर्फ सिर झुकाये बैठी रही, कुछ बोली नहीं। कुछ देर तक सन्नाटा रहा, फिर केदार बाबू प्रबल चेष्टासे मानो अपने आपको पराजित करके कह उठे—एक बार महिमके पास जाना चाहता हूँ मृणाल, एक बार उसके मुँहकी बात सुनना चाहता हूँ,—सिर्फ इसीके लिए मेरी छातीके अन्दर रात-दिन मानो आग-सी जलती रहती है। पर अकेला जाकर मैं उसके आगे खड़ा किस तरह होऊँगा ?

मृणालने उसी वक्त मुँह उठाकर अपने सकरुण नेत्रोंसे अभागे वृद्ध पिताके

लज्जित भीत चेहरेकी तरफ देखते हुए कहा—क्यों बापूजी, तुम अकेले क्यों जाओगे ?—अगर जाना ही होगा, तो हम दोनों मिलकर एकसाथ जायेंगे।

" सचमुच, जाओगी बिटिया ? "

" जाऊँगी क्यों नहीं बापूजी ! इसके सिवा तुम्हें मैं अकेला छोड़ भी कैसे सकती हूँ ? तुम कहीं भी क्यों न जाओ मैं तुम्हें अकेले नहीं जाने दे सकती, सो कहे देती हूँ। कोई मुझे साथ नहीं ले जाना चाहता बापूजी, मैं कहीं जरा घूमने भी नहीं पाती। "

मृणाल चुपचाप उनके सिरहानेके पास बैठी रही, एक भी बात,—सान्त्वनाका एक शब्द भी उच्चारण न कर सकी। एकमात्र कन्याकी घृण्यतम दुर्गतिसे जिस पिताका हृदय छिदा-बिंधा जा रहा है, उसे सान्त्वना देने लायक उसके पास था ही क्या ?

इस तरह बहुत देर बीत जानेके बाद वृद्धने अपनेको सम्हाला और उठके बैठते हुए पुकारा—बिटिया !

उनके मुँहकी तरफ देखकर मृणालकी छाती फटने लगी, पर उसने जी-जानसे कोशिश करके आँसू रोकते हुए जवाब दिया—क्या है बापूजी ?

" संसारमें वेदनाका परिमाण इतना बड़ा भी हो सकता है, ऐसा कभी सोचा नहीं था मृणाल ! इससे छुटकारा पानेका क्या कहीं भी कोई उपाय नहीं ? क्या कोई भी उपाय नहीं जानता ? "

" लेकिन, बापूजी, आदमी मरनेका शोक भी तो सह लेते हैं ! "

केदार बाबूने कहा, " मेरे लिए वह मर चुकी, यही तुम कहना चाहती हो न बेटी ! एक हिसाबसे है तो यही बात। बहुत बार ऐसा सोचा भी है मैंने,—पर मृत्युका शोक जैसा बड़ा है, उसकी शान्ति और माधुर्य भी वैसा ही बड़ा है। मगर यहाँ तो उस सान्त्वनाका उपाय भी कहाँ रहा है मृणाल ? इसकी दुस्सह ग्लानि, असह्य लज्जा मेरे हृदयको घेरे हुए ऐसी चुभ रही है कि कहीं भी उसे हटाकर रखनेकी जरा भी जगह नहीं। " कहते कहते आँखें मीचकर उन्होंने क्षण-भरके लिए छातीपर हाथ रखा और फिर धीरे धीरे कहने लगे, "बेटी, सन्तानकी मृत्यु जो देते हैं, उन्हें हम यह कहकर क्षमा कर देते हैं कि उनके कार्य-कारणको हम नहीं जानते। हम—

मृणाल सहसा बाधा देकर बोल उठी—तब तो, बापूजी, हम भी तो ऐसा

कर सकते हैं ? कोई भी क्यों न हो, जिनका कार्य-कारण हमें नहीं मालूम, उन्हें अगर हम माफ न भी कर सकें, तो कमसे कम उनका विचार करके उन्हें अपराधी तो नहीं ठहरावें।

केदार बाबू मानो चौंक पड़े, और अपनी दोनों आँखोंकी तीव्र दृष्टि मृणालके मुँहपर एकाग्र करके पत्थरकी भाँति निश्चल बैठे रहे।

मृणाल सलज्ज मुखसे धीरे धीरे कहने लगी—इसके सिवा, मैंने भय्याके मुँहसे ही सुना है बापूजी, कि संसारमें ऐसे अपराध कम ही हैं जिन्हें हम चाहें और क्षमा नहीं कर सकें।

केदार बाबू उत्तेजनासे सीधे होकर बैठ गये और बोले—इस अपराधको भी क्या कोई कभी माफ कर सकता है मृणाल ?

मृणाल चुप रही; और वे उसी तरह तीव्र स्वरमें कहते गये—कभी नहीं, हरगिज नहीं। बाप होकर उसकी इस दुष्कृतिको मैं हरगिज क्षमा नहीं कर सकता। क्षमाके योग्य नहीं वह, क्षमा करना उचित नहीं,—यह तुमसे मैं निश्चित कहे देता हूँ।

मृणालने धीरेसे कहा—योग्य-अयोग्य तो विचारकी बात है बापूजी, उसे तो क्षमा नहीं कहा जा सकता। दूसरे, क्षमाका फल क्या सिर्फ अपराधीको ही मिलता है ? जो क्षमा करता है उसे क्या कुछ भी नहीं मिलता, बापूजी ?

वृद्ध एकबारगी दंग रह गये। इस लड़कीकी इन शान्त और स्निग्ध बातोंने एक ही क्षणमें उन्हें मानो अभिभूत कर डाला। कुछ देर तक स्वप्नाविष्टकी भाँति बैठे रहनेके बाद वे सहसा कह उठे—इस तरह तो मैंने कभी विचार कर देखा नहीं मृणाल, तुमसे आज मानो मैं और एक नया तत्त्व सीख रहा हूँ बेटी ! बात तो ठीक है। जो ग्रहण करता है, लाभके खातेमें क्या सिर्फ उसीकी सोलहों आने वसूली लिखकर दाताके खातेमें सिर्फ शून्य ही रखा जा सकता है? ऐसा कभी सत्य नहीं हो सकता ! ठीक है, ठीक है ! किसका अपराध कितना बड़ा है, इसका विचार जिसके जीमें आवे करे, मैं तो क्षमा करूँगा सिर्फ अपनी तरफ देखकर ! यही न उपदेश है तुम्हारा बेटी ?

"बापूजी क्यों, ऐसी बात करके मेरा अपराध बढ़ा रहे हो ?"

"तुम्हारा भी अपराध ? संसारमें उसके लिए भी कहीं स्थान है बिटिया ?"

मृणाल सहसा उठ खड़ी हुई, और बोली, "शायद मा मुझे बुला रही हैं,

मैं अभी आती हूँ बापूजी।" इतना कहकर वह जल्दीसे बाहर चली गई।

४०

मृणाल उठके चली गई, पर केदार बाबूने मानो कुछ ध्यान ही नहीं दिया। सिर्फ अपनी ही बातकी धुनमें मग्न होकर वे अपने मन ही मन कहने लगे—मैं जी गया, मैं जी गया, बेटी, तुमने मुझे बचा लिया। दुर्गतिके दुर्गम अरण्यमें जब कि दोनों आँखोंपर पट्टी बँधी हुई है, मौतके सिवा जब कि मेरे लिए और सभी रास्ते बन्द हैं, तब हाथके पास ही मुक्तिका इतना बड़ा राज-मार्ग खुला पड़ा है! इस बातकी खबर तुम्हारे सिवा और कौन दे सकता था? क्षमाकी बात तो मैं कभी सोच ही नहीं सका था। अगर वह कभी मनमें आई भी है, तो उसी वक्त उसे मैंने दोनों हाथोंसे धकेलकर गर्वके साथ कहा है—नहीं, हरगिज नहीं! लड़की होकर जिसने इतना बड़ा अपराध किया है, बाप होकर इतना बड़ा दान उसे कभी नहीं दे सकता। मगर, ओ रे अन्धे, ओरे मूढ़, अरे कंजूस, बाप होकर भी जो तू नहीं दे सकता, दूसरा उसे कैसे दे सकता है? और, वह उसमेंसे ले ही कितना जायगी? तेरी क्षमाका सबका सब जो तेरे अपने ही घर लौट आयेगा! अपनी मृणाल-बेटीके इस तत्त्वको जरा आँखें खोलकर देख तो सही। इतना कहकर वे ठीक मानो कुछ देखनेके लिए ही मेघाच्छन्न आकाशकी तरफ देखने लगे और जी-जानसे जोर लगाकर कहने लगे—मैंने क्षमा कर दिया, मैंने क्षमा कर दिया! सुरेश, तुम्हें भी क्षमा कर दिया। अचला, तुम्हें भी क्षमा कर दिया। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, जो कोई जहाँ भी हो, आज मैं सबको क्षमा करता हूँ। आजसे किसीके प्रति मेरा कोई अभिमान नहीं, कोई शिकायत नहीं। आज मैं मुक्त हूँ, आज मैं स्वाधीन हूँ, आज मैं परमानन्दमय हूँ!—कहते कहते अनिर्वचनीय करुणासे उनकी दोनों आँखें मुँद गईं, और दोनों हाथ एकत्र करके धीरे धीरे उन्हें गोदमें रखते ही उनकी मुँदी हुई आँखोंसे पितृ-स्नेह मानो अजस्र अश्रु-धारामें झरने लगा और काँपते हुए ओठ अस्फुट स्वरमें कहने लगे—बिटिया, बिटिया! तू कहाँ है? एक बार, सिर्फ एक बार लौट आ। मैं तुझे दुनियामें लाया हूँ, मैंने तुझे छातीसे लगाकर पाला-पोसा है,—बिटिया, तू अपने समस्त अपराध, सारे अपमान, सारी लांछनाको लिए हुए फिर एक बार अपने बापकी गोदमें

लौट आ अचला, मैं अपने हृदयसे तेरे सारे घाव, सारी जलन धो-पोंछकर फिरसे तुझे उसी तरह पाल-पोसकर बड़ी करूँगा। हम लोग अब जन-समाजमें न आयेंगे, घरके बाहर न निकलेंगे,—सिर्फ तू और मैं—

"बापूजी!"

वृद्धने मुँह फेरकर मृणालके मुँहकी तरफ देखा, शायद एक बार अपनेको संयत करनेकी भी कोशिश की; किन्तु दूसरे ही क्षण जमीनपर लोटकर बालककी तरह आर्तकंठसे रो उठे—बेटी, बेटी, मेरी छाती फटी जाती है! सभी उसे कितना कष्ट, कितनी व्यथा पहुँचा रहे हैं! अब तो मुझसे नहीं सहा जाता!

मृणालने कुछ भी नहीं कहा। सिर्फ पास आकर वह उनके जमीनपर पड़े हुए सिरको अपनी गोदमें रखकर धीरे धीरे उसपर हाथ फेरने लगी। उसकी अपनी आँखोंसे भी आँसू गिरने लगे।

प्रथम फाल्गुनका यह मेघाच्छन्न दिन शायद इसी तरह बीत जाता, परन्तु सहसा केदार बाबू आँखें खोलकर उठ बैठे; बोले—मृणाल, महिमको चिट्ठी लिखनेसे क्या जवाब नहीं मिल सकता?

"क्यों नहीं मिल सकता, बापूजी? मैं तो समझती हूँ, कल-परसोंके अन्दर ही उनका उत्तर आ जायगा।"

"तुमने क्या उन्हें कुछ लिखा है?"

मृणालने गरदन हिलाकर जताया, "हाँ।"

चिट्ठीमें क्या लिखा है, यह बात वृद्धने संकोचके कारण नहीं पूछी। बाहरकी ओर देखते हुए पूछा, "अभी थोड़ा दिन है, मैं जरा घूम आऊँ।" यह कहकर उन्होंने दुशाला उठा लिया और लाठी हाथमें लेकर दो-एक कदम आगे बढ़े, फिर सहसा ठिठककर खड़े हो गये; बोले—मगर देखो बिटिया—

"क्या बापूजी?"

"मुझे डर है,—नहीं, ठीक डर नहीं,—लेकिन मैं सोचता हूँ कि—"

"क्या बापूजी?"

"बात यह है बिटिया,—अच्छा, तुम क्या समझती हो, हम लोग जाना चाहें तो महिम आपत्ति करेगा?"

यह डर और चिन्ता दोनों ही मृणालको काफी थी और मन ही मन इसका ठीक तरहसे जवाब भी उसने एक सोच रखा था; इसीसे उसी क्षण बोली—

" अभीसे उसकी क्या फिकर है बापूजी ? उनका पता मालूम होते ही हम लोग चल देंगे,—उसके बाद भइया जब मुझे भगा दे सकेंगे, तब दुनियामें जानने लायक बहुत-सी बातें अपने आप मालूम हो जायँगीं । फिर इस विषयमें किसीसे कुछ पूछनेकी जरूरत न रहेगी । "

केदार बाबू क्षण-भर चुप रहकर बोले, " तो सचमुच ही तुम मेरे साथ चलोगी ? "

मृणालने कहा, " सच्ची, चलूँगी । पर मैं तो तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी बापूजी, बल्कि तुम ही मेरे साथ जाओगे । "

उत्तरमें केदार बाबू फिर कुछ कहना चाहते थे, पर वे क्षण-भर उसकी तरफ देख और मुँह फेरकर चुपचाप बाहर चल दिये ।

ठीक ऐसे ही फाल्गुनकी एक शामको इस बंगालके बाहर और भी दो नर-नारीके आँसू उस दिन इसी तरह रोके नहीं रुक रहे थे; सुरेशने जब सील-मुहर किया हुआ एक बड़ा लिफाफा अचलाके हाथमें देकर कहा, " इतने दिनोंसे देनेकी बात सोच रहा था, पर फिर भी यह कागज तुम्हारे हाथ देनेकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी,—मगर आज बगैर दिये कोई चारा ही नहीं ।

अचलाने लिफाफा हाथमें लेकर दुबिधाके स्वरमें कहा—इसके मानी ?

सुरेशने जरा हँसकर कहा—दुनियामें जिसके लिए मेरी भी हिम्मत नहीं पड़े, ऐसी भी क्या कोई भयंकर आश्चर्यजनक चीज हो सकती है ? यही न तुम सोच रही हो ? इसके मानी अगर कुछ हो, तो किसी न किसी दिन वह प्रकट होगा ही । परन्तु दुनियामें बहुत-सा अपमान और दुःखका बहुत भारी बोझ जिस तरह तुमने मुझसे बिना अर्थ समझे ही ले लिया है, इसको भी उसी तरह ले लो न अचला !

अचलाने शान्त स्वरमें पूछा—इसके अन्दर क्या है ?

सुरेशने हाथ जोड़कर कहा—अब तक जो कुछ मैंने तुमसे पाया है, सब डकैतकी तरह जबरदस्ती छीनकर ही पाया है । मगर आज सिर्फ एक चीज़की तुमसे भीख माँगता हूँ, और वह यह कि इस बातको तुम जानना मत चाहो ।

अचला चुप हो गई; इसके बाद वह क्या कहे, उसकी कुछ समझमें न आया ।

बाहर परदेकी ओटमेंसे नौकरने आकर कहा—बाबूजी, इक्केवाला कह रहा है, अब और देर करनेसे पहुँचनेमें रात हो जायगी । रास्तेमें शायद आँधी-मेह भी

आ सकता है ।

अचला चौंककर बोली—आज फिर तुम कहाँ जा रहे हो इस वक्त ? ”

सुरेशने हँसते हुए संशोधन करके कहा, “यानी बेवक्त ? जा रहा हूँ मझौली। प्लेगके डाक्टर कहीं नहीं मिल रहे हैं, और गाँवके गाँव श्मशान हुए जा रहे हैं। अबकी बार पाँच-सात दिन रहना पड़ेगा। और, कौन जानता है, हो सकता है कि हमेशाके लिए ही वहाँ रह जाना पड़े। ” और फिर वह जरा हँस दिया।

अचला स्थिर होकर उसके मुँहकी तरफ देखती रही। उसे खुद भी कुछ कुछ समाचार मालूम थे। सात-आठ कोसकी दूरीपर गाँवके गाँव श्मशानमें परिणत हो रहे हैं, यह बात वह सुन चुकी थी। शहरसे इतनी दूर इस भीषण महामारीमें गरीबोंके इलाजके लिए चिकित्सकोंका अभाव हो, यह कोई विचित्र बात नहीं। सुरेश बहुत रुपयोंकी दवा-दारू छिपे छिपे चारों तरफ भेज रहा था, इसका भी उसे पता लग गया था; और खुद भी वह तड़के ही उठकर कहीं न कहीं चला जाता है, लौटनेमें कभी शाम और कभी रात हो जाती है,—परसों तो आ ही नहीं सका था। परन्तु आज वह घर छोड़कर और उसे छोड़कर एक साथ कुछ दिनोंके लिए मौतके बीच जाकर रहनेका संकल्प कर बैठेगा, इसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। इसीसे बात सुनकर वह क्षण-भरके लिए चुपचाप सिर्फ उसके मुँहकी तरफ देखती रही। ऐसा महापापिष्ठ जो भगवानको नहीं मानता, पाप-पुण्य नहीं मानता,—जो अपने एकमात्र मित्र और उसकी निरपराध स्त्रीका सर्वनाश बड़ी आसानीसे कर बैठा और इसमें किसी भी बाधाकी जिसने परवाह नहीं की, और जिसके मुँहकी तरफ जब कभी उसने देखा है तभी उसका सारा मन विरक्तिसे विषमय हो गया है,—आज इस समय उसीकी तरफ देखकर उसका सारा हृदय विषसे नहीं बल्कि अकस्मात् विस्मयसे भर गया। उस आदमीके ओठोंपर थोड़ी-सी हँसीकी रेखा मौजूद थी,—अत्यन्त क्षीण। परन्तु, उतनी-सी हँसीमें ही अचलाको विश्वका सम्पूर्ण वैराग्य भरा हुआ दिखाई दिया। चेहरेपर उसके उद्वेग नहीं, उत्तेजना नहीं,—अभी वह मौतके बीच खड़ा होनेके लिए जा रहा है, मगर फिर भी उसके चेहरेपर आशंकाका चिह्न तक नहीं। तो क्या इस अनीश्वरवादी घोर स्वार्थीके लिए भी आज अपने प्राण इतने सस्ते हो गये हैं ? संसारमें भोगके सिवा जो आदमी और कुछ समझता ही नहीं,—भोगके सम्पूर्ण

आयोजनके बीच मग्न रहकर भी क्या आज जिन्दा रहना उसके लिए इतना अकिंचित्कर, इतना तुच्छ, इतनी उपेक्षाकी बात हो गई जो इतनी आसानीसे सब कुछ छोड़ जानेके लिए वह क्षण-भरमें तैयार हो गया ? हो सकता है कि न भी लौटे ! यह और चाहे जो हो, पर परिहास नहीं है। मगर यह बात क्या इतनी आसानीसे कहनेकी है ?

अकस्मात् भीतरके धक्केसे वह चंचल हो उठी; हाथके लिफाफेको दिखाकर उसने पूछा—तो क्या यह तुम्हारा वसीयतनामा है ?

सुरेशने भी प्रश्न किया—अभी अभी जो भीख दी है, अचला, उसे क्या तुम वापस ले लेना चाहती हो ?

अचला जरा चुप रहकर बोली—अच्छा, मैं जानना नहीं चाहती। मगर मैं तुम्हें जाने नहीं दे सकती।

"क्यों ?"

उत्तरमें अचलाने उस लिफाफेको जरा हिला-डुलाकर बगलें झाँकते हुए कहा—तुमने मेरा कुछ भी क्यों न किया हो, पर मैं अपने लिए तुम्हें मरने नहीं दे सकती।

सुरेशने कुछ जवाब नहीं दिया। अचलाने अपनी बातसे जरा लज्जित होकर बातको हल्की करनेके लिए कहा, "तुम कहोगे, तुम्हारे लिए क्यों मरने लगा, मैं जा रहा हूँ गरीबोंके लिए प्राण देने, ठीक है, मगर मैं इसके लिए भी न जाने दूँगी।"

बातको सुनते ही चटसे सुरेशको महिमकी बात याद आ गई और उसकी छातीके भीतरसे एक गहरी साँस निकलकर स्तब्ध कमरेमें व्याप्त हो गई। कारण, जीवनकी ममता उसके लिए कितनी तुच्छ वस्तु है और कितनी आसानीसे वह उसे त्यागनेको तैयार हो सकता है, इसका एकमात्र साक्षी आज भी मौजूद है, और वह है महिम। आजकी वह यात्रा ही अगर उसकी महायात्रा हो, तो, वह संगी-साथी-हीन अत्यन्त नीरव मनुष्य ही सिर्फ मन ही मन समझेगा कि सुरेशने लोभसे नहीं, क्षोभसे नहीं, दुःखसे नहीं, घृणासे नहीं,—इहलोक-परलोक किसी भी वस्तुकी आशासे प्राण नहीं दिये, वह मरा है तो सिर्फ इसीलिए कि उसकी मौत आ गई थी।

आँखें उसकी आँसुओंसे भर आना चाहती थीं, पर उसने उन्हें सम्हाल लिया। बल्कि उसने मुँह उठाकर जरा हँसनेकी कोशिश करते हुए कहा—मैं किसीके लिए मरना नहीं चाहता अचला, चुपचाप निरर्थक बैठे बैठे अब अच्छा नहीं लगता,

इसीसे जा रहा हूँ जरा घूमने-फिरने। मरूँगा क्यों अचला, मैं मरूँगा नहीं।

"तो फिर यह वसीयतनामा किस लिए?"

"मगर यह वसीयतनामा ही है, यह भी तो अभी प्रमाणित नहीं हुआ?"

"न हो, मगर मुझे अकेली छोड़कर तुम चले जाओगे?"

"चला ही जाऊँगा, अब न लौटूँगा, यह भी तो तय नहीं हो गया।"

"हाँ, नहीं हुआ! इस परदेशमें मुझे बिलकुल निराश्रय करके," कहते कहते अचला रो दी।

सुरेश उठते उठते बैठ गया। एक अदम्य आवेगको अपनी जिन्दगीमें उसने पहले पहल रोककर, क्षण-भर स्थिर रहनेके बाद शान्त स्वरमें कहा—अचला, मैं तो तुम्हारा साथी नहीं हूँ। आज भी तुम अकेली हो, और वह दिन अगर सचमुच ही आ जाय, तो तब भी इससे ज्यादा तुम्हें निराश्रय न होना पड़ेगा।

अचलाकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे, उन्हीं आँसू-भरी आँखोंको उठाकर उसने सुरेशके मुँहकी तरफ देखा और उसके ओठ थर थर काँपने लगे। दाँतोंसे ओठ दबाकर उनके कम्पनको रोकनेकी कोशिश करते ही अकस्मात् वह भग्न-कण्ठसे रो उठी, "मुझसे और तुम क्या चाहते हो, और मेरे पास क्या है?" और कहते कहते ही मुँहमें आँचल ठूँसकर वह अन्यत्र भाग गई।

नौकरने आकर कहा—इक्केवाला—

"अच्छा, अच्छा, उसे ठहरनेको कह दो।"

थोड़ी देर बाद साईसने आकर कहा—गाड़ी बहुत देरसे तैयार खड़ी है।

"गाड़ी क्यों?"

साईसने जो कुछ कहा उससे मालूम हुआ कि बहूजीने पुराने मकानमें घूमने जानेके लिए हुक्म दिया था, मगर अब महरी कह रही है कि कमरेका दरवाजा बन्द है, बहुत बुलानेपर भी कुछ जवाब नहीं मिल रहा है। अब घोड़े खोल देने होंगे या नहीं, यही जानने वह आया है।

"अच्छा, ठहरो जरा।"

उस कमरेका भीतरकी तरफका दरवाजा खुला ही था। उसका परदा हटाकर सुरेश चुपकेसे अपने सोनेके कमरेमें दाखिल हुआ, और उसी तरह चुपकेसे पास ही एक चौकीपर बैठ गया। यह कमरा उनका दोनोंका है, यहाँ उसने अनधिकार प्रवेश नहीं किया। परन्तु वह जो सामनेकी प्रशस्त शुभ्र सुन्दर शय्यापर

सुन्दरी नारी औंधी पड़ी रो रही है,—उनमेंसे किसीने भी आज उसके मनको अपनी तरफ आकर्षित नहीं किया, बल्कि पीड़ित करके उसे पीछेकी तरफ धकेल दिया। उसका आना अचलाको मालूम नहीं हुआ, वह रोती ही रही, और उसीकी तरफ निष्पलक दृष्टिसे देखता हुआ सुरेश चुपचाप बैठा सोचने लगा। इधर कुछ दिनोंसे उसे अपनी भूल महसूस होने लगी थी; परन्तु उस औंधी पड़ी देह-लताने, उसकी वेदनाने, उसके सम्मिलित माधुर्यने उसकी आँखोंकी पट्टी मानो एक क्षणमें खोलकर अलग फेंक दी। उसे मालूम हुआ, प्रभातकी सूर्य-किरणोंमें पत्तोंके किनारे जो ओसकी बूँद झलका करती है, उसके अपूर्व अनन्त सौन्दर्यको जो लोभी हाथमें लेकर भोगना चाहता है, उसने भी ठीक उसीके समान भूल की है। वह नास्तिक है, वह आत्मा नहीं मानता; जिस झरनेके साथ अनन्त सौन्दर्य निरन्तर झर रहा है वह असीम उसके लिए मिथ्या है; इसीसे स्थूलकी तरफ ही सारी दृष्टिको एकाग्र रखकर वह निःसंशय समझ रहा था कि उस सुन्दर देहपर दखल करनेमें ही उसका पाना अपने आप सम्पूर्ण हो उठेगा; मगर आज उस उसकी गगनचुम्बी भूलका प्रासाद एक क्षणमें चकनाचूर हो गया। प्राप्तिकी उस अदृश्य धरतीसे विच्युत करके पाना कितना बड़ा बोझ है,—कितनी जबरदस्त भ्रान्ति है, यह तथ्य आज उसके मर्मस्थलमें जाकर चुभ गया। ओसकी बूँद मुट्ठीमें आनेपर कैसे पानीकी एक बूँदकी तरह देखते देखते सूख जाती है, अचलाकी तरफ देखता हुआ वह सिर्फ इसी सत्यको देखने लगा। हाय रे! पत्तेका एक किनारा ही जिसके लिए भगवानका दिया हुआ स्थान है, ऐश्वर्यकी इस मरुभूमिमें लाकर उसे वह किस तरह बचाये रह सकता है?

अनजानमें उसकी आँखोंमें पानी भर आया, उसे पोंछकर उसने पुकारा—अचला!

अचला चौंक पड़ी, किन्तु उसी तरह चुपचाप पड़ी रही। सुरेशने कहा—तुम्हारी गाड़ी तैयार है, आज तुम राम बाबूके घर जाना चाहती थीं न?

इसपर भी कोई जवाब न पाकर उसने कहा, "अगर इच्छा न हो तो घोड़े खुलवा दिये जायँ? मैं भी शायद आज बाहर नहीं जा सकूँगा। इक्का लौटा देनेको कह दूँ।" इतना कहकर वह अपने बैठनेके कमरेमें चला गया।

वहाँ दस-पन्द्रह मिनट तक वह क्या सोचता रहा, शायद उसे भी नहीं मालूम; सहसा साड़ीकी खस खस आवाज सुनकर देखा, तो सामने अचला खड़ी है। वह

आँखोंकी सुर्खीको यथासाध्य पानीसे धो-पोंछकर धनी गृहिणीके योग्य पोशाक पहनकर एकदम तैयार होकर आई थी। बोली—उनके यहाँ आज एक बार जाना ही चाहिए।

यह सज-धज उसके अपने लिए नहीं, बल्कि वहाँ आये हुए राज-अतिथियोंके लिए है, इस बातको सुरेश समझ गया; फिर भी इस मणि-मुक्ता-जड़ित-रत्नालंकार-भूषिता सुन्दरी नारीने क्षण-भरके लिए उसे मुग्ध कर दिया। उसने विस्मयके स्वरमें पूछा—जाना ही चाहिए क्यों ?

"राक्षसी बुखारमें ही कलकत्तेसे चली आई है, और सुना है कि ताऊजी भी कलसे बुखारमें पड़े हुए हैं।"

"उनके आनेके बाद क्या एक बार भी वहाँ गई नहीं ?"

"नहीं।"

"वे भी कोई नहीं आये ?"

अचलाने गरदन हिलाकर कहा—नहीं।

"राम बाबू भी नहीं आये ?"

"नहीं।"

इस मकानमें आनेके बादसे सुरेशने प्लेगके काममें अपनेको इतना व्यस्त कर रखा था कि घर-गृहस्थी और आत्मीयताकी इन सब छोटी-मोटी त्रुटियोंकी तरफ उसका कुछ ध्यान ही नहीं था। इसीसे इस बातको सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, बोला—आश्चर्य है ! अच्छा, जाओ।

अचलाने कहा—आश्चर्य उनकी तरफसे उतना नहीं है जितना हम लोगोंकी तरफसे है। एकको बुखार है, एक बुखारमें न पड़ने तक रिश्तेदारोंकी खातिरदारीमें व्यस्त थे। हम लोगोंको ही जाना चाहिए था।

"अच्छा, जाओ। मगर जरा जल्दी ही लौटना।"

अचला क्षण-भर मौन रहकर बोली—तुम भी साथ चलो।

"मैं क्यों ?"

अचला नाराज होकर बोली—अपनी बीमारीकी बात याद न हो तो न सही, कमसे कम डाक्टर हो, इसीलिए चले चलो।"

"अच्छा, चलो।" कहकर सुरेश उठ खड़ा हुआ और कपड़े बदलनेके लिए अपने कमरेमें चला गया।

इक्केवाला बेचारा कुछ हुक्म न पाकर अब तक खड़ा था। नीचे उतरकर उसे देखते ही अचलाने खामखाह गुस्सा होकर नौकरसे उसकी कैफियत तलब की और उसी वक्त उसे किराया देकर विदा करनेकी आज्ञा दी। उसने सुरेशके मुँहकी तरफ देखकर डरते डरते कहा—कल—

अचलाने ही उसका जवाब दिया, बोली—नहीं। बाबू नहीं जायँगे, इक्केकी जरूरत नहीं।

गाड़ीपर चढ़कर सुरेश सामनेकी सीटपर बैठ रहा था कि आज सहसा अचलाने उसके कोटका छोर खींचकर बगलमें बैठनेका इशारा किया। गाड़ी चलने लगी, कोई भी कुछ बोला नहीं, अगल-बगल बैठे हुए दोनों जने अपनी अपनी तरफकी खुली हुई खिड़कीमेंसे बाहरकी ओर देखते रहे।

बगीचेका फाटक पार होकर गाड़ी जब सड़कपर पहुँची, तब सुरेशने आहिस्तेसे पुकारा—अचला!

"क्या है?"

"आजकल मैं क्या सोचा करता हूँ, जानती हो?"

"नहीं।"

"अब तक जो सोचता आया हूँ ठीक उससे उलटा। तब सोचा करता था कि कैसे तुम्हें पाऊँगा, अब रात-दिन यह सोचा करता हूँ कि कैसे तुम्हें छुटकारा दूँ। तुम्हारा भार मानो अब मुझसे सहा नहीं जाता।"

इस अचिन्त्य-पूर्व और अत्यन्त निष्ठुर आघातकी चोटसे क्षण-भरके लिए अचलाका सारा शरीर और मन एकदम सुन्न-सा हो गया। ठीक विश्वास कर सकी हो, सो भी नहीं; फिर भी अभिभूतकी तरह बैठी रहकर अस्फुट स्वरमें बोली—मैं जानती थी। मगर यह तो—

सुरेशने कहा—हाँ, मेरी ही भूल है। तुम लोग जिसे पापका फल कहती हो। मगर फिर भी बात सच है। मनके बिना यह देह,—इसका बोझ इतना असह्य भारी होता है, यह मैंने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था।

अचलाने आँख उठाकर कहा—तुम क्या मुझे यहाँ छोड़कर चले जाओगे?

सुरेशने रंचमात्र भी दुविधा न करके जवाब दिया—अच्छा, यही समझ लो।

इस निःसंकोच उत्तरको सुनकर अचला बिलकुल चुप हो गई। उसके रुद्ध हृदयको मसलती हुई सिर्फ यही बात चारों तरफ अपना सिर धुनने लगी कि यह

वही सुरेश है ! यह वही सुरेश है ! आज उसी सुरेशके लिए वह दुःसह बोझ हो गई ! आज वही सुरेश उसे छोड़कर चला जाना चाहता है ! यह बात उसके मुँहपर कहनेमें आज उसे जरा भी कहीं हिचकिचाहट तक नहीं हुई !

और सबसे बड़ी आश्चर्यकी बात यह कि यही आदमी उसके सीमाहीन दुःखका मूल है ! कलतक उसकी हवासे उसकी सारी देह विषमय होती रही है। मेघाच्छन्न संध्या-आकाशके नीचे निर्जन मार्गको प्रतिध्वनित करती हुई गाड़ी तेजीसे दौड़ रही थी, उसमें बैठे हुए दो नर-नारी बिलकुल मौन थे। सुरेश क्या सोच रहा था, वही जाने; परन्तु उसकी कही हुई बातकी कल्पनातीत निष्ठुरताको पार करके भी आज एक नये भयसे अचलाका सम्पूर्ण मन परिपूर्ण हो उठा। सुरेश नहीं है, वह अकेली है। यह अकेलापन कितना विराट् है, कितना असीम है, इसकी कल्पना उसके मनमें बिजलीकी तरह दौड़ गई। भाग्यकी विडम्बनासे जिस नावपर चढ़कर वह संसार-समुद्रमें बह रही है, वह अनिवार्य मृत्युके बीच ही तिल-तिल करके डूब रही है—इस बातको उससे बढ़कर और कोई नहीं जानता; मगर फिर भी, इस बातकी कल्पना करके कि उस सुपरिचित भयानक आश्रयको छोड़कर आज वह दिक्चक्र-हीन समुद्रमें बह रही है, उसका सारा शरीर ठंडा बरफ-सा हो गया। अब उसका कोई नहीं रहा;—उसे प्यार करनेवाला, उससे घृणा करनेवाला, उसकी रक्षा करनेवाला, उसकी हत्या करनेवाला कहीं भी कोई नहीं रहा;—संसारमें वह बिलकुल ही संग विहीन है। इस बातकी कल्पना करके मानो उसकी साँस रुकने लगी।

सहसा उसका अशक्त अचेतन दाहना हाथ सुरेशकी गोदपर जा पड़ा। उसने चौंककर सुरेशकी तरफ देखा; और रुँधे हुए गलेको शक्ति-भर साफ करके कहा—अब क्या मुझे प्यार नहीं करते ?

सुरेशने उसका हाथ बड़े जतनसे अपने हाथमें लेकर कहा—इस प्रश्नका जवाब अब पहलेकी तरह निःसंशय होकर नहीं दे सकता अचला ! मालूम होता है,—खैर जो भी हो, यह बात सत्य है कि इस भूतके बोझको ढोते रहनेकी अब मुझमें शक्ति नहीं रही।

अचलाने फिर कुछ देर मौन रहकर अत्यन्त मृदु और करुण कण्ठसे कहा—तुम मुझे और कहीं ले चलो—

" जहाँ कोई बंगाली न हो ? "

" हाँ। जहाँ लज्जा मुझे हरदम न चुभती रहे—"

" वहाँ क्या तुम मुझे प्यार कर सकोगी अचला ? यह क्या सच है ?— कहते कहते आकस्मिक आवेगसे उसने अचलाका माथा अपनी छातीसे लगाकर उसके ओठ चूम लिए। "

अपमानसे आज भी अचलाका चेहरा सुर्ख हो उठा, ओठ उसके ठीक बिच्छूके डंक मारने जैसे जल उठे; मगर फिर भी उसने गरदन हिलाकर चुपकेसे कहा— हाँ। किसी समय मैं तुम्हें प्यार करती थी। नहीं नहीं,—छि—कोई देख लेगा।—कहकर अपनेको मुक्त करके वह सीधी होकर बैठ गई। पर हाथ उसका सुरेशकी मुट्ठीमें ही बना रहा, वह उसीको परम स्नेहसे जरा दाबकर सिर्फ एक गहरी साँस लेकर रह गया।

बड़ी सड़कको छोड़कर वह विराट् वेलर-युगल-चालित विपुल-भार अश्वयान, राम बाबूके बंगलेके बगीचेके फाटकको पार करता हुआ, सारे मकानको कँपाता हुआ सहनके नीचे जा खड़ा हुआ।

भड़कीली नई पोशाक पहने हुए साईसोंने गाड़ीका दरवाजा खोल दिया और सुरेशने खुद उतरकर अचलाको हाथ पकड़कर उतार लिया। अचलाकी निगाह थी ऊपरके बरामदेकी तरफ। वहाँ और और स्त्रियोंके साथ राक्षसी भी बिछौनेसे उठकर आखड़ी हुई थी। बहुत दिनों बाद आँखों ही आँखोंमें दोनों सखियोंकी हँसी फूट निकली। राम बाबू नीचे ही थे, वे देहपर फर्द डालकर निकल आये और बड़े आनन्द और स्नेहके साथ बोले—आओ आओ मेरी बिटिया, आओ !

इस परिचित कण्ठ-स्वरके व्यग्र व्याकुल आह्वानसे उसकी हास्यपूर्ण आँखोंकी दृष्टि क्षणमें नीचे उतरकर वृद्धपर पड़ी,—मगर उन्हींके पास खड़ा था महिम,— उसकी तरफ देखकर मानो वह पत्थर हो गया ! दोनोंकी चार आँखें हुईं, लेकिन उन आँखोंके पलक नहीं गिरे। अचलाके सारे शरीरपर रत्नालंकार उसी तरह चमकते रहे, हीरा-माणिकोंकी ज्योति रंचमात्र भी मन्द नहीं पड़ी,—परन्तु उनके बीचमें खिला हुआ कमल मानो क्षण-भरमें मुरझाकर मर गया।

परन्तु आसन्न संध्याके क्षीण आलोकमें वृद्ध राम बाबूसे गलती हो गई। अपरिचित पुरुषके सामने उसे सहसा लज्जासे म्लान और संकुचित जानकर वे व्यस्तताके साथ अचलाके झुके हुए ललाटको दोनों हाथोंसे थामकर कह उठे—रहने दो बिटिया, अब तुम्हें पाँव छूनेकी जरूरत नहीं, तुम ऊपर जाओ—

अचलाने कुछ भी नहीं कहा, लड़खड़ाती हुई चली गई। राम बाबूने कहा—सुरेश बाबू, ये—

सुरेशने कहा—क्या कहते हैं! हम लोग जो एक क्लासके—बचपनसे हम दोना—सहसा हँसनेकी कोशिशमें मुँहको विकृत करके कहा—क्या जी महिम, अचानक तुम—

मगर बातको वह खतम न कर सका। महिम मुँह फेर कर जल्दीसे भीतर चला गया।

हतबुद्धि वृद्धने सुरेशके मुँहकी तरफ देखा, और सुरेशने भी उत्तरमें और एक बार हँसनेकी कोशिश की, मगर, उसे भी वह पूरी न कर सका।

ऊपर चढ़नेकी काठकी सीढ़ीपर अकस्मात् किसी भारी चीजके गिरनेकी आवाज़ सुनकर दोनों दंग हो गये। एक शोर उठा; राम बाबू दौड़ गये, देखा कि अचला औंधी पड़ी है। वह दो ही तीन सीढ़ी चढ़ पाई थी, उसके बाद मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

४१

लौटते समय गाड़ीके एक कोनेमें सिर टेके आँखें मींचे अचला यही बात सोच रही थी कि आजकी यह मूर्च्छा अगर न छूटती तो अच्छा होता। अपने हाथसे अपनी हत्या करनेकी बीभत्सताको वह मनमें स्थान भी नहीं दे सकती; परन्तु इसी तरहकी कोई शान्त स्वाभाविक मृत्यु हो जाय। सहसा बेहोश सो जाना,—उसके बाद फिर कभी न जागना पड़े। मृत्युको इस तरह आसानीसे पानेका क्या कोई रास्ता नहीं? क्या उसे कोई नहीं जानता?

सुरेशने उसे छूकर कहा—तुम अन्यत्र कहीं जाना चाहती थीं, जाओगी?"

"चलो।"

"इसके बाद अब तो कलसे यहाँ मुँह दिखाया जा नहीं सकता।"

"पर, वे तो किसीसे कोई बात करेंगे नहीं?"

सुरेशके मुँहसे एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ा; क्षण-भर मौन रहकर उसने आहिस्तेसे कहा—नहीं। महिमको मैं जानता हूँ, वह घृणाके कारण हमारी बदनामी तक मुँहपर नहीं लाना चाहेगा।"

यह बात सुरेशने सहजमें ही कही थी, पर सुनकर अचलाका सारा शरीर

सिहर उठा। इसके बाद, जब तक गाड़ी मकानके आगे खड़ी न हो गई, तब तक दोनोंके दोनों चुप रहे। सुरेशने उसे जतनके साथ सावधानीसे उतारकर कहा—तुम जाकर जरा सोनेकी कोशिश करो अचला, मुझे कई जरूरी चिट्ठियाँ लिखनी हैं। और वह अपने पढ़ने-लिखनेके कमरेमें चला गया।

पलँगपर पड़कर अचला सोचने लगी—अभी मेरी इक्कीस वर्षकी उमर है, इस अरसेमें मैंने किसीका ऐसा क्या अपराध किया है, जिसके कारण इतनी बड़ी दुर्गति मेरे भाग्यमें आ जुटी? यह चिन्ता नई नहीं थी, जब तब यही बात वह अपने आपसे पूछा करती और बचपनसे, जहाँ तक उसे याद आता, उसकी याद किया करती। आज अकस्मात् मृणालने जो एक दिन बहस की थी, उसकी याद आ गई। उसीका सूत्र पकड़कर सारी आलोचनाको वह एक एक करके मन ही मन दुहराने लगी। अपना विवाहित जीवन पतिके साथ उसका एक तरहसे विरोधमेंसे ही गुजरा था। सिर्फ अन्तमें कई दिन तक रोग-शय्यापर पतिको उसने अत्यन्त अपना पाया था। उनके जीवनके विषयमें जब कि कोई आशंका नहीं थी, मन जब निश्चिन्त निर्भय हो गया था, तबके उस स्निग्ध, निर्मल और सहज-स्वाभाविक आनन्दमें दूसरेका दुर्भाग्य और वेदना जब उसे बहुत ज्यादा आघात पहुँचाती थी, तब एक दिन मृणालके गलेसे चुपटकर आँसुओंसे रुँधे हुए गलेसे उसने कहा था—जीजी, तुम अगर हमारे समाजमें, हमारे मतमें होतीं, तो किसी भी कदर तुम्हारे जीवनको मैं व्यर्थ नहीं होने देती।

मृणालने हँसते हुए पूछा था—क्या करतीं भाभी, मेरा फिरसे ब्याह करा देतीं?

अचलाने कहा था—क्यों नहीं? किन्तु रहने दो जीजी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, अब शास्त्रोंकी दुहाई मत दो। इसका मल्लयुद्ध इतना हो गया है कि उसका नाम सुननेसे भी मुझे डर लगता है।

मृणालने उसी तरह हँसते हुए कहा था—डरनेकी तो बात ही है। कारण, उनकी धींगाधींगी कब किधर आ पड़े, कुछ कहा नहीं जा सकता। मगर एक बात तुमने विचारकर नहीं देखी भाभी, कि जो लोग युद्ध करते हैं, महज इस लिए करते हैं कि उनका वह पेशा हैं; सिर्फ शरीरमें ताकत और हाथसें हथियार होनेके कारण ही करते हैं। इसीसे उनकी हार-जीत सिर्फ उन्हींमें रह जाती है; उससे हम लोगोंका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। हम लोगोंसे तो कोई भी पक्ष कोई बात पूछता नहीं।

अचलाने पूछा था—पर पूछनेसे होता क्या?

मृणालने कहा था—सो तो ठीक मालूम नहीं बहन। हो सकता है कि तुम्हारी तरह विचार करना सीख जाती, या तुम्हारे प्रस्तावपर ही राजी हो जाती,—कोई न कोई दूल्हा अब तक जुट ही जाता।—कहकर वह हँस दी थी।

इस हँसीपर अचलाने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उत्तर दिया था—हमारे समाजके बारेमें कोई बात छिड़ते ही तुम अवज्ञासे बात करने लगती हो, सो मैं जानती हूँ। लेकिन, हम लोगोंकी बातको तुम छोड़ ही दो,—और जो लोग इस विषयमें युद्ध करते हैं, वे क्या सबके सब व्यवसायी हैं? कोई क्या वास्तविक वेदना लेकर नहीं लड़ता?

मृणालने दाँतों-तले जीभ दबाकर कहा था—ऐसी बात मनमें लानेसे भी पाप होता है भाभीजी! असलमें बात ऐसी नहीं है। कल सबेरे ही तो मैं चली जा रही हूँ; फिर कब भेंट होगी, मालूम नहीं;—क्या जानेके पहले एक मजाक भी नहीं कर सकती?—कहते कहते उसकी आँखोंमें आँसू भर आये थे। अपनेको सम्हालकर उसने गम्भीर होकर कहा था—लेकिन तुम तो मेरी सब बातें समझ नहीं सकोगी, बहन। विवाह तुम लोगोंके समाजमें एक सामाजिक विधान है। इसीसे उसके विषयमें अच्छे-बुरेका विचार हुआ करता है, उसके विधि-विधान युक्ति-तर्कोंसे बदल जाते हैं। परन्तु हम लोगोंके लिए विवाह धर्म है। पतिको हम लोग बचपनसे ही इसी रूपमें ग्रहण करती आई हैं। यह चीज तो बहन, समस्त विचार-वितर्कोंसे परेकी चीज है!

अचलाने विस्मित होकर प्रश्न किया था—अच्छा, अगर यही हो, तो धर्म क्या आदमीका बदलता नहीं जीजी?

मृणालने कहा था—धर्मका मतामत बदलता है, पर असल चीज कहाँ बदलती है बहन? इसीसे, इतने लड़ाई-झगड़ोंके होते हुए भी वह मूल वस्तु आज भी समस्त जातियोंकी एक ही बनी हुई है। पतिके दोष-गुणोंका हम लोग विचार किया करती हैं, उनके सम्बन्धमें मतामत हमारे भी बदलते रहते हैं—हम भी तो आखिर हैं तो मनुष्य ही! परन्तु पति हमारे लिए धर्म हैं, इसीसे वे नित्य हैं! जीवनमें भी नित्य हैं, मृत्युमें भी नित्य! उन्हें तो हम बदल नहीं सकतीं।

अचलाने क्षण-भर स्थिर रहकर कहा था—यही अगर सत्य है, तो इतना अनाचार क्यों है?

मृणालने कहा था—वह रहेगा इसलिए है। धर्म जब नहीं तब वह भी नहीं रहेगा। कुत्ते-बिल्लियोंमें तो बहन अनाचार नहीं!

अचलाने, सहसा कोई जवाब न सूझनेसे, कुछ देर चुप रह कर कहा था—जब कि तुम्हारे समाजकी शिक्षा इतनी बड़ी है, तब फिर, जो लोग शिक्षा देते हैं, उनमें इतना सन्देह, इतना सावधान होना किसलिए है? इतना परदा, इतने बन्धन—सारी दुनियासे छिपाकर रखनेकी इतनी जी-जानसे कोशिश क्यों? इस जबरदस्तीके सतीत्वकी कीमत तब समझती, जब उसमें परीक्षाका भी अवकाश रहता!

अचलाकी उत्तेजना देखकर मृणाल चौंक पड़ी थी, और हँसकर बोली थी—जो इन विधि-विधानोंको बना गये हैं, जवाब उन्हींसे पूछो बहन। हम लोग तो सिर्फ बाप-मासे जो कुछ सीखा है, उसीको पालती आ रही हैं। मगर एक बात तुमसे मैं जोरके साथ कह सकती हूँ बहन, कि पतिको जो वास्तवमें धर्म समझकर, परलोककी वस्तु समझकर ग्रहण कर सकी है, उसके पैरोंकी बेड़ी चाहे तोड़ दो और चाहे बँधी रहने दो, उसके सतीत्वकी परीक्षा अपने आप ही हो गई, समझ लो!

इतना कहनेके बाद उसने जरा ठहरकर धीरे-धीरे कहा था—मेरे पतिको तो तुमने देखा है? वे बूढ़े आदमी थे, दुनियामें वे गरीब थे, रूप और गुण भी उनमें साधारण पाँच जनोंसे ज्यादा नहीं था; पर वे ही मेरे लिए इहलोक थे और वे ही परलोक! कहते-कहते उसने आँखें मीचकर क्षण-भरके लिए उन्हींको शायद अन्तःकरणमें देख लिया, उसके बाद आँखें खोलकर जरा म्लान हँसी हँसते हुए कहा—उपमा शायद ठीक न होगी भाभी, पर यह झूठ नहीं कि बाप अपने काने-लँगड़े लड़केपर ही अपना सारा स्नेह उँड़ेल देता है। दूसरेका सुन्दर सुरूप लड़का क्षण-भरके लिए शायद उसके मनमें क्षोभ ला देता हो, पर पितृ-धर्म उससे रंचमात्र भी क्षुण्ण नहीं होता। जाते समय अपना सर्वस्व वह कहाँ छोड़ जाता है, यह तो तुम जानती ही हो। परन्तु अपने पितृत्वके प्रति संशय हो जानेसे अगर कभी उसका पितृ-धर्म भंग हो जाय, तो उस स्नेहकी भाप भी कहीं ढूँढ़े नहीं मिलती। लेकिन हम लोगोंकी शिक्षा, संस्कार और विचारकी धारा दूसरी है बहन, मेरी इस उपमा और बातोंको तुम शायद ठीकसे समझ न सकोगी; पर मेरी यह बात तुम भूलकर भी विश्वास न करना कि पतिको जिस स्त्रीने हृदयमें धर्मके रूपमें विचारना नहीं सीखा, उसके पैरोंकी जंजीर हमेशा बँधी ही रहे चाहे खुल जाय, और अपने सतीत्वके जहाजको वह चाहे जितना भी

बड़ा क्यों न समझती हो, परीक्षाके दलदलमें पड़ते ही उसे डूबना ही पड़ेगा। वह परदेके अन्दर भी डूबेगी और बाहर भी डूबेगी।

वही तो हुआ। इस सत्यको अचलाने उस समय अनुभव नहीं किया, परन्तु आज जब कि मृणालका बताया हुआ वह दलदल उसे फँसाकर दिन-रात रसातलकी तरफ खींचने लगा, तब उसे समझनेमें कुछ बाकी न रहा कि उस दिन कौन-सी बात उसने तरह तरहसे समझानी चाही थी। नीरव रुद्ध समाजकी अबाध स्वाधीनतामें आँख-कान खुले रखकर ही वह इतनी बड़ी हुई है। अपने जीवनको उसने स्वयं चुनकर ग्रहण किया है, मगर परीक्षाके घोर दुःसमयमें उनमेंसे कुछ भी उसके काम नहीं आया। उसकी विपत्ति आई बिलकुल दबे-पाँव मित्रके वेशमें,—वह आई ताऊजीके स्नेह और श्रद्धाके छद्म रूपमें। इस अत्यन्त शुभाकांक्षी स्नेहशील वृद्धके बार बार और सानुरोध आग्रह करनेपर जिस आँधी-मेहकी रात्रिमें वह सुरेशकी शय्यापर जाकर आत्महत्या कर बैठी, उस दिन एक-मात्र जो उसका रक्षण कर सकता था, वह था उसका अत्याज्य सती-धर्म, जिसे मृणालने जीवन और मरणमें अद्वितीय और नित्य समझाना चाहा था। परन्तु उस दिन उसकी बाहरकी केंचुलीने ही बड़ी बनकर उसके धर्मको पराजित कर दिया। उसकी आजन्मकी शिक्षा और संस्कारने अभ्यन्तरको तुच्छ समझकर,—उसे कारागार मान कर बाहरकी दुनियाको ही हमेशा सबसे ऊपर स्थान दिया है। जो धर्म गुप्त है,—जो धर्म गुफामें छिपा पड़ा रहता है, वह अंतःकरणका अव्यक्त धर्म कभी उसके मनमें सजीव होकर नहीं उठ सका। इसीसे बाहरके साथ सामंजस्य रखनेमें उस दिन भी वह भद्र महिलाके सम्भ्रमके बाहरी लिबासको ही मारे शरमके जकड़े रही, इस आवरणके मोहको छोड़कर अपनेको नग्न करके वह किसी भी तरह नहीं कह सकी कि 'ताऊजी, मैं जानती हूँ, मेरे इतने दिनोंके पहाड़-बराबर झूठके बाद आज मेरे सत्यको सत्य समझकर जगतमें कोई विश्वास न करेगा; मैं जानती हूँ, कल तुम ही घृणासे मेरा मुँह न देखोगे; तुम्हारी सती-साध्वी पतोहूके घरका दरवाजा भी कल मेरे मुँहपर ही बन्द हो जायगा और मेरी लांछना संसार-भरमें व्याप्त हो उठेगी। यह सब मुझसे सहा जायगा, मगर तुम्हारा आजका यह भयंकर स्नेह मुझे सहन न होगा। बल्कि तुम मुझे यह आशीर्वाद दो, ताऊजी, तुम्हारे पास आजका यह कलंक ही मेरे लिए अक्षय हो उठे।' मगर हाय रे हाय! यह बात उसके मुँहसे किसी तरह निकली ही नहीं!

आज निष्फल अभिमान और प्रचण्ड भावावेशसे कण्ठ उसका बार बार रुँध आने लगा, और उसकी इस अखंड वेदनाको महिमकी उस समयकी स्तब्ध निष्ठुर दृष्टि मानो छुरीसे चीरने लगी।

इस तरह करीब आधी रात बीत गई। परन्तु सभी दुःखोंका कहीं न कहीं विश्राम है, इसीसे आँसुओंका झरना भी धीरे धीरे सूख गया और भीगे हुए पलक भी नींदसे मुँद गये।

यह नींद जब टूटी तब दिन चढ़ चुका था। सुरेशके लिए दरवाजा खुला ही था, पर वह घरमें आया था या नहीं, मालूम नहीं हुआ। बाहर निकलनेपर नौकरने कहा—बाबूजी बहुत सबेरे ही इक्केमें बैठकर मझौली चले गये हैं।

" कोई साथ गया है ? "

" नहीं। मैं जाना चाहता था, लेकिन उन्होंने साथ लिया नहीं। कहा, प्लेगमें मरना हो तो चल। "

" इसीसे तुम खुद नहीं गये, कृपा करके सिर्फ इक्का बुला लाये ? मुझे जगाया क्यों नहीं ? "

नौकर चुप रहा।

अचला खुद भी जरा चुप रही, फिर बोली—इक्का कौन लाया था ? तू ?

नौकरने सिर झुकाये हुए जताया कि लानेकी जरूरत ही नहीं थी, कल उसे बिदा करते वक्त बाबूजीने खुद ही आज तड़के आनेके लिए हुक्म दे दिया था।

सुनकर अचला दंग रह गई। उसने जैसा सोचा था, वैसा नहीं है। कल शामकी घटनासे इसका सम्बन्ध नहीं है। यह घटना न घटती तो भी वह जाता ही,—जानेका संकल्प उसने छोड़ा नहीं था, सिर्फ उसके डरसे कुछ देरके लिए स्थगित कर रखा था।

उसने पूछा—बाबू कब लौटेंगे, कुछ बता गये हैं ?

उसने खुशीसे सिर हिलाते हुए कहा—बहुत जल्दी, परसों, तरसों या उसके बादके दिन तो जरूर आ जायेंगे।

अचलाने फिर कोई प्रश्न नहीं किया। कल सीढ़ीसे गिर पड़नेसे कितनी चोट लगी है, ठीक मालूम नहीं पड़ी,—आज दर्दके मारे शरीरमें आलस आने लगा। उसपर राम बाबू शायद खबर लेने न आ जावें, इस आशंकासे उसके मनमें

काँटे-से चुभने लगे। महिम किसीसे कोई बात कहेगा नहीं, यह बात वह सुरेशसे कम नहीं जानती थी; फिर भी, सब तरहकी आकस्मिक दैवी घटनाओंके भयसे अत्यन्त व्यथाके स्थानकी रखवाली करता हुआ चित्त जैसे होशियार बना रहता है, उसी तरह उसकी समस्त इन्द्रियाँ बाहरके दरवाजेपर पहरा देती रहीं। इसी तरह सबेरा बीत गया, दोपहर बीता और शाम भी बीत गई। रातको उनके आनेकी कोई सम्भावना नहीं जानकर अब वह निरुद्विग्न होकर बिस्तरपर पड़ रही। पासकी तिपाईपर सूनी फूलदानीसे दबा हुआ किसी औषधालयका सूचीपत्र पड़ा हुआ था, उसे उसने उठा लिया और उसके एक पन्नेपर थकी हुई दृष्टि डालकर, किसी एक श्रीमन्महाराजाधिराजके रोग-निवारणसे लेकर बामनहाटीके माइनर स्कूलके तीसरे मास्टरकी पिलही अच्छे होने तकका विवरण पढ़ते पढ़ते सहसा कब अपने दुःखको भूलकर सो गई, सो उसे मालूम ही न पड़ा।

४२

नौकरने कहा था, बाबू परसों-तरसों तक लौट आयेंगे, या उसके दूसरे दिन तो जरूर ही। परन्तु, उसके दूसरे दिनकी निश्चयताकी दिन-भर परीक्षा करने लायक शक्ति अचलामें नहीं थी। इन तीन दिनोंमें राम बाबू एक दिनके लिए भी नहीं आये। उनके आनेको वह सर्वान्तःकरणसे भयकी दृष्टिसे देखती रही है, किन्तु साथ ही इस न आनेके भीतरी अर्थकी कल्पना करके भी उसकी देह आशंकाके मारे ठंडी हो गई। वे अस्वस्थ थे और इन तीन दिनोंमें उनकी बीमारी बढ़ भी सकती है, यह बात उसके मनमें भी नहीं आई। सिर्फ आज वहाँका दरबान आया था, मगर वह भीतर न आकर बाहर पाँड़ेजीसे ही पूछताछ करके लौट गया है। वह क्यों आया था, क्या पूछताछ गया,—कोई भी बात अचला मारे डरके किसीसे पूछ तक न सकी; परन्तु उसके बादसे ही उसके मनमें ऐसा होने लगा कि यह मकान, यह घर-द्वार, नौकर-चाकर,—सबको छोड़-छाड़कर भाग जाय तो उसकी जान बचे।

नौकरको बुलाकर उसने कहा—रघुवीर, तुम तो यहींके रहनेवाले हो, तुम मझौली कहाँ है जानते हो?

उसने कहा—बहुत दिन पहले एक बरातके साथ गया था, बहूजी।

"कितनी दूर है, बता सकते हो?"

रघुवीर इस देशका रहनेवाला होनेपर भी, बहुत दिनोंसे बँगालियोंके साथ रहते रहते उसे कुछ अटकल लगानेका ज्ञान हो गया था; उसने मन ही मन अन्दाज लगाकर कहा—छै-सात कोससे कम न होगा, बहूजी।

" आज तुम मेरे साथ चल सकते हो ? "

रघुवीरने अत्यन्त आश्चर्यके साथ कहा—आप जायँगी ? वहाँ तो जोरकी प्लेग हो रही है ?

अचलाने कहा—तुम न जा सको तो और किसी नौकरको राजी करा दे सकते हो ? वह जितनी बख्शीश चाहेगा, मैं दूँगी।

रघुवीरने क्षुण्ण होकर कहा—बहूजी, आप जा सकती हैं और मैं नहीं जा सकता ? मगर रास्ता तो वैसा नहीं है, अपनी भारी गाड़ी तो वहाँ तक जा नहीं सकती। इक्का या डोली,—इनमेंसे किसीमें तो आप जा नहीं सकतीं, बहूजी।

अचलाने कहा—जो मिले, उसीमें जा सकती हूँ मैं। लेकिन अब देर करनेसे काम न चलेगा रघुवीर। तुम जो पाओ, जल्दीसे ले आओ।

रघुवीर ज्यादा बहस न करके थोड़ी देरमें एक डोली ले आया, और अपना लोटा-कम्बल लाठीमें लटकाके उसे कंधेपर रखकर वीरकी तरह डोलीके साथ साथ पैदल जानेको तैयार हो गया। मकानकी खबरदारीका भार दरबान तथा अन्यान्य नौकरोंपर छोड़कर अचला जब एक अनजान गाँव मझौलीके रास्तेपर एकमात्र सुरेशको ही लक्ष्य करके घरसे निकल पड़ी, तब, इधरकी सारीकी सारी घटनाएँ उसे अद्भुत स्वप्न जैसी मालूम होने लगीं। उसे बार बार यही खयाल होता रहा कि इस विचित्र दुनियामें ऐसी घटना भी एक दिन होगी, यह कौन सोच सकता था ?

धूल-रेतीकी एक कच्ची सड़क है तो जरूर, पर वह कहीं सुविस्तृत मैदानमें अस्पष्ट हो गई है तो कहीं छोटे गाँवमें जाकर लुप्त हो गई है या रुक गई है। गृहस्थीकी सुविधा और मरजीके माफिक उसका आयतन और दिशा बदलकर कहीं नदीके किनारेसे तो कहीं किसीके घरके प्राङ्गणसे होती हुई ग्रामान्तरको चली गई है। पहले तो कुछ दूर तक उसका कुतुहल बीच बीचमें सजग हो जाता रहा; परन्तु आगे चलकर जब उसने देखा कि कई आदमी एक मुरदेको बाँससे बाँधकर लिये जा रहे हैं, तब रोग-संक्रमणके डरसे उसकी देह संकुचित हो उठी। इच्छा हुई कि पूछ ले कि वह कैसे मरा, उमर क्या थी और उसके घरमें कौन कौन हैं ? परन्तु मार्गकी दूरी जैसे जैसे बढ़ने लगी, दिन जैसे जैसे छुपने लगा और पास या

दूरके गाँवोंसे रोनेकी आवाज जैसे जैसे उसके कानोंमें पड़ने लगी, वैसे वैसे उसका सारा मन न जाने कैसी एक जड़तासे ऊँघने लगा। बहुत देरसे उसे प्यास लग रही थी। डोली तब नदीके ऊँचे किनारेसे जा रही थी। सामने एक घाट दिखाई दिया तो वह डोली रुकवा कर उतर पड़ी। हाथ-मुँह धोकर पानी पीनेके लिए नीचे उतरते ही उसने देखा कि दो अध-जले मुरदे पास ही हिलगे पड़े हैं। उनकी बीभत्स विकृतिने उसके मनपर कोई आघात ही नहीं किया। अत्यन्त स्वाभाविक भावसे उसने हाथ-मुँह धोकर पानी पीया और धीरे धीरे जाकर डोलीमें बैठ गई। किसी भी अवस्थामें यह उसके लिए सम्भव हो सकता है, कुछ समय पहले इस बातकी शायद वह कल्पना भी न कर सकती थी।

इसके बाद जितने भी गाँव मिले, लगभग सभी छोड़े हुए सुनसान थे। क्वचित् कहीं कोई अत्यन्त दुःसाहसी भले ही रह गया हो, बाकी सब भाग गये थे। कहीं कोई शब्द नहीं था, सन्नाटा छा रहा था, घर-द्वार बन्द पड़े थे, गंदगी फैल रही थी। मालूम होता था, जैसे ये घर-द्वार तक मृत्युको अनिवार्य समझकर आँख मींचे उसकी प्रतीक्षा कर रहे हों। इन मृत्यु-शासित जनहीन सुनसान गाँवोंके भीतरसे चलते हुए रघुवीर और डोलीवाले कहारोंकी दबी हुई आवाज और त्रस्त-भयभीत पदक्षेप प्रतिक्षण अचलाको विपत्तिकी ही वार्ता सुनाने लगे; परन्तु मनमें उसके किसी तरहका डर ही नहीं रहा,—उसका सम्पूर्ण अन्तःकरण ऐसा निर्विकार हो गया कि मानो इन सबके साथ उसका आजन्मका परिचय हो!

इस तरह बाकी रास्ता तय करके ये लोग जब मझौली पहुँचे, तब शाम हो गई थी। अचलाको दृढ़ विश्वास था कि उनके मार्गका कष्ट वहाँ पहुँचनेके साथ ही दूर हो जायगा। गाँवके कृतज्ञ स्त्री-पुरुष दौड़े आयेंगे और उन्हें इज्जतके साथ डाक्टर साहबके दरबारमें पहुँचा देंगे। वहाँ रोगी और उनके आत्मीय जनोंकी आवा-जाईसे और दवा-दारू बाँटनेकी धूमसे समारोह-सा हो रहा होगा। उसके बीच अचलाका अपना स्थान कहाँ होगा, इसके चित्रकी एक तरहसे उसने कल्पना कर रखी थी। परन्तु पहुँचकर देखा कि उसकी कल्पना निरी कल्पना ही है। उसके साथ असलियतका जरा भी मेल नहीं, बल्कि, जो चित्र रास्तेमें वह देखती आई थी, यहाँ भी वही हाल है। यहाँ भी रास्तेमें कोई आदमी नहीं, घर-द्वार सब बन्द हैं। यहाँ कहाँ किस मुहल्लेमें सुरेश रहता है, ढूँढ़ निकालना भी मुश्किल है।

इस गाँवमें रोज पेंठ लगा करती थी और वह आज भी लगी थी; मगर ऐस

दुर्दिनमें खरीद-बिक्री खतम करके लोग तीसरे पहर ही भाग गये थे। उठी पेंठकी जगह जगह कुछ निशानी जरूर पड़ी थी।

रघुवीरने खोज-खाजके एक दूकानका पता लगाया। बूढ़ा दूकानदार दूकानकी टटिया बन्द कर रहा था, उसने कहा—उसके बाल-बच्चे सब दूसरे गाँव चले गये हैं, सिर्फ वह और उसकी बुढ़िया स्त्री दूकानका मोह छोड़कर अभी तक नहीं जा सके हैं। सुरेशके सम्बन्धमें वह सिर्फ इतना पता बता सका कि डाक्टर साहब नन्दू पाँड़ेके नीमतल्लावाले घरमें अब तक थे तो जरूर, पर अब भी वहाँ हैं या महमूदपूर चले गये हैं, उसे मालूम नहीं।

" महमूदपुर कहाँ हैं ? "

" सीधा, दो कोस दक्खिनकी तरफ। "

" नन्दू पाँड़ेका मकान किधर है ? "

बूढ़ेने बाहर आकर उँगलीके इशारेसे एक बड़ा भारी नीमका पेड़ दिखाते हुए कहा—वहाँ जाते ही मालूम हो जायगा।

थोड़ी देर बाद डरे हुए और हारे-थके कहारोंने जब नीमके नीचे डोली रक्खी तब सूर्य अस्त हो चुका था। मकान बड़ा था; पीछेकी तरफ दो एक पुरानी ईंटोंके घर दिखाई दिये, मगर अधिकांश खपरैलके थे। सामने दीवार नहीं थी, बिलकुल सफा मैदान था। मकान-मालिक गरीब भी नहीं मालूम होता था; पर एक भी आदमी निकलकर बाहर नहीं आया। सिर्फ सामनेके चौकके एक किनारे बँधे हुए टट्टूने अपनी भूख-प्यासकी वेदना जताते हुए अत्यन्त करुण कंठसे अतिथियोंका स्वागत किया।

सदर दरवाजा खुला था। रघुवीरने हिम्मत करके भीतर झाँककर देखा कि पासके बरामदेमें चारपाईपर सुरेश पड़ा है और उसके पास ही खूँटीके सहारे एक बहुत ही बूढ़ी स्त्री बैठी बैठी ऊँघ रही है।

" बाबूजी ? "

सुरेशने आँख खोलकर देखा और कोहनीका सहारा लगाकर सिर उठाके क्षण-भर उसकी तरफ देखकर कहा—कौन, बेहरा ? रघुवीर ?

रघुवीर सलाम करके पास जाकर खड़ा हो गया, परन्तु मालिककी सुर्ख आँखोंकी तरफ देखते ही उसके मुँहसे आवाज नहीं निकली।

" तू यहाँ ? "

रघुवीरने फिरसे सलाम किया और बाहरकी ओर इशारा करके वह सिर्फ इतना कह सका—बहूजी—

अब सुरेश आश्चर्यके साथ सीधा होकर बैठ गया और बोला—तुझे यहाँ भेजा है?

रघुवीरने गरदन हिलाकर कहा—नहीं, वे खुद ही आई हैं।

जवाब सुनकर सुरेश इस तरह उसके मुँहकी तरफ एकटक देखता रहा कि बातको ठीक तरहसे उसकी समझमें आनेमें मानो देर हो रही है। उसके बाद वह आँख मीचके धीरे धीरे पड़ रहा, कुछ बोला नहीं।

अचला आकर जब चुपकेसे खाटके एक किनारे पाँयतेकी तरफ बैठ गई तब कुछ क्षणोंके लिए वह उसी तरह आँखें मीचे मौन पड़ रहा, भद्रताकी रक्षा करनेके लिए मामूली-सा शब्द 'आओ' कहकर भी न बिठा सका। बचपनहीसे हमेशा अत्यधिक लाड़-प्यारमें पलकर आवेश और प्रवृत्तिके वशमें ही उसने अपनी जिन्दगी बिताई है, अपनेको संयत करनेकी शिक्षा उसे कभी नहीं मिली। इस बातकी शिक्षा जिन्दगीमें पहले-पहल उसने उसी दिन पाई थी जिस दिन उसके चेहरेकी हँसीपर लात मारकर महिम मुँह फेरकर घर चला गया था। उस दिन एक क्षणमें उसके हृदयमें कैसी नीरव उथल-पुथल मच गई थी, इस बातको सिर्फ अन्तर्यामी ही जान सके, और आज भी सिर्फ उन्होंने ही देखा कि इस शान्त अचल देहके भीतर कितना बड़ा तूफान चल रहा है! उस दिन भी महिमकी चोटको उसने जिस तरह सहा था, आज भी उसी तरह वह अपने उन्मत्त आवेगके साथ चुपचाप लड़ाई लड़ने लगा—अपने पश्चात्तापको लेशमात्र भी उसने प्रकट नहीं होने दिया।

इस तरह कितना समय बीत जाता, कहा नहीं जा सकता, पर अचानक कहारोंकी बुलाहट सुनकर रघुवीर जब बाहर चला गया तब सुरेशने धीरे धीरे आँख खोलकर देखा। बोला—तुम्हें मेरी चिट्ठी मिली?

अचलाने मुँह बगैर उठाये ही धीरेसे कहा—नहीं!

सुरेशने जरा आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "चिट्ठी बिना पाये ही चली आईं,—आश्चर्य है। खैर, अच्छा ही हुआ, एक बार भेंट हो गई।" कहकर एक बातके लिए उसके आनत मुँहकी तरफ क्षण-भर देखकर उसने खुद ही कहा—मेरे लिए तुम्हें बहुत दुःख उठाना पड़ा। सम्भव है, जब तक जीओगी इसका पीछा न छूटे।—मगर बड़ी भारी भूल हुई मुझसे, मैं नहीं जानता था कि महिमको तुम इतना ज्यादा प्यार करती हो, और शायद यह तुम भी कभी नहीं समझ पाई थीं!

परन्तु अचला उसी तरह चुपचाप सिर झुकाये बैठी रही, और यह देख सुरेशने फिर कहा—इसके सिवा, मेरा विश्वास है कि आदमीके मन नामकी कोई स्वतंत्र चीज नहीं है। जो है, वह इस देहका ही धर्म है। प्रेम भी वही है। सोचा था, तुम्हारी देहको किसी तरह पाकर तुम्हारे मनको भी पा जाऊँगा,—तुम्हारा प्रेम भी दुष्प्राप्य न रहेगा।—कौन जानता है, शायद सचमुच ही किसी दिन भाग्य सुप्रसन्न हो जाता?—हो सकता है कि सर्वस्व देकर जिस तरह तुम्हें चाहा था, उसीसे प्रसन्न होकर अपनी इच्छासे तुम मुझे भिक्षा दे देतीं! मगर अब उसके लिए समय नहीं हैं,—मुझे प्रतीक्षा करनेका अवसर नहीं मिला। इतना कहकर उसने फिर कोहनीका सहारा लेकर सिर उठाया और संध्याके क्षीण प्रकाशमें अपनी आँखोंकी दृष्टिको तीक्ष्ण करके अचलाके चेहरेकी ओर देखता हुआ स्तब्ध हो रहा।

एककी इस एकाग्र दृष्टिने दूसरेकी सन्नत दृष्टिको मानो आकर्षित कर लिया, किन्तु पलमात्रके लिए। अचलाने उसी वक्त आँखें नीची करके अत्यन्त मृदु कंठ और अत्यन्त लज्जाके साथ कहा—यहाँसे तो सभी लोग भाग गये हैं,—यहाँका काम खतम हो गया हो तो घर चलो।—या और भी कितने ही देश हैं वहाँ चलो, डिहरीमें अब एक क्षण भी नहीं टिका जाता।

"इस बातको मुझसे ज्यादा और कौन जानता है?" कहकर सुरेशने एक गहरी साँस ली और वह तकियेपर सिर रखकर पड़ रहा। फिर कुछ देर तक नीरव और स्थिर रहकर धीरे धीरे कहने लगा—बड़ी मुश्किलसे आज सबेरे दो चिट्ठी भेज सका हूँ, एक तुम्हें और एक महिमको। वह अगर चला न गया हो, तो जरूर आयेगा, मैं जानता हूँ।

सुनकर अचला भय और विस्मयसे चौंक पड़ी। बोली—उन्हें क्यों?

सुरेशने उसी तरह धीरे धीरे कहा—अभी उसीकी मुझे एकमात्र आवश्यकता। बचपनसे संसारमें बहुत दिन बहुत-सी गाँठें डालता रहा हूँ, और उन्हें खोलनेके लिए हमेशा इसी आदमीकी जरूरत पड़ी है। इसीसे, आज भी मुझे उसीको बुलाना पड़ा है। इतना धैर्य पृथिवीपर और किसीमें नहीं है।

अचलाके मनमें उथल-पुथल होने लगी; मगर वह नीचेको निगाह किये सुनती रही। सुरेशने कहा—मेरी चिट्ठीमें लगभग सभी बातें लिखी हुई हैं,—पढ़नेसे मालूम हो जायगा। उस दिन तुम्हारे हाथमें मैंने अपनी सारी सम्पत्तिका पक्का वसीयतनामा दिया था। चाहो तो तुम उसमेंसे बहुत-कुछ ले सकती

हो,—लेकिन मेरा कहना है कि लेनेकी जरूरत नहीं। बल्कि, मेरे जिन्दा रहनेसे जैसे गरीबोंको सब मिलता, मेरे मरनेपर भी उन्हींको मिले तो ठीक है। मेरी किसी भी चीजमें तुम अपनेको शामिल न रखो,—अचला, तुम निश्चिन्त होओ, निर्विघ्न होओ,—मेरे सम्पूर्ण सम्बन्धसे तुम अपनेको अलग रख सको, यही मैं चाहता हूँ। कोशिश करनेसे संसारमें बहुतसे दुःख सहे जा सकते हैं,—मेरा दिया हुआ दुःख भी तुम किसी दिन सह सको, यही मेरी कामना है।

उसके आचरण और बातचीतके ढँगसे अचला जबसे आई तबसे कैसी तो डर-सी रही थी। इस अन्तकी बातसे वह सचमुच ही बहुत डर गई; बोली—ये सब बातें तुम क्यों छेड़ रहे हो? उठके बैठ जाओ न! और, अभी हम लोग यहाँसे जा सकें, इसकी कोशिश करो।

अचलाकी आशंका और उत्तेजनाको लक्ष्य करके भी सुरेशने कोई जवाब नहीं दिया। जो बुढ़िया खूँटीके सहारे बैठी ऊँघ रही थी उसने जरा सजग होकर पूछा—बाबूजी, अब घरके अन्दर जाइएगा कि बत्ती बाहर ला दूँ? उसका भी उसने कोई जवाब नहीं दिया। मालूम हुआ, मानो सहसा उसे तन्द्रा-सी आ गई। अचला उद्विग्न होकर अपने पहलेके प्रश्नको फिरसे पूछना चाहती थी, इतनेमें सुरेशने आँखें खोलकर अत्यन्त स्वाभाविक भावसे कहा—अभी तक तुमसे मैंने असल बात नहीं कही अचला, मैं मरने बैठा हूँ,—मेरे जीनेकी शायद अब कोई भी उम्मीद नहीं।

उत्तरमें सिर्फ एक अस्फुट अव्यक्त कंठस्वर अचलाके गलेसे निकल पड़ा, और उसके बाद वह मूर्तिकी भाँति स्थिर निस्पन्द बैठी रही।

सुरेश कहने लगा—पहलेसे ही मैंने वसीयत जरूर कर रखी है, पर कोई अगर समझे कि मैं जान-बूझकर मर रहा हूँ तो मेरे प्रति अन्याय होगा,—झूठ होगा। उससे मुझे मरनेसे भी बढ़कर व्यथा होगी। मैंने सावधानीमें जरा भी त्रुटि नहीं की, पर कोई काम न आई वह। अगर तुमसे कोई किसी दिन पूछे, तो तुम यह कहना कि संसारमें और और लोगोंकी जैसे मृत्यु होती है, मेरी भी वैसे ही हुई है। मौतसे छुटकारा नहीं पा सका, इसीसे मरा हूँ, नहीं तो मरनेकी मेरी इच्छा नहीं थी। मेरी मौतमें किसीका किसी तरहका हाथ या कोई विशेषता थी, ऐसा अपवाद मुझे कोई न दे।

अचलाने कुछ भी नहीं कहा। बात कहनेकी शक्ति उसकी सूख गई थी

इस बातको उस धुँधले अँधेरेमें उसके भयभीत चेहरेकी तरफ देखकर सुरेश ताड़ न सका। कुछ देरमें अपनेको संयत करके वह फिर कहने लगा—मुझसे बगैर आये रहा न गया, इसीसे तुमसे छिपकर उस दिन सबेरे ही भाग आया था। यहाँ आकर देखा कि गाँव लगभग सूना पड़ा है। इस घरमें एक नौकर मर गया था, और उसकी बगैर दाहक्रिया किये ही घरके सब भागनेको तैयार हो गये थे। उन्हें तो मैं न रोक सका, पर मुरदेकी दाहक्रिया किसी कदर करा दी। लौटनेके बाद सोचा कि अब घर लौट जाऊँ, मगर दोपहरको एक लड़का रोता हुआ आया और बोला कि उसकी मा बीमार है। उसका ऑपरेशन करके ही मैंने यह दुर्घटना कर डाली। ऐसे तो मैंने बहुतसे ऑपरेशन किये हैं, और सावधानी भी कम नहीं रखता; मगर अबकी ऐसा ही दुर्भाग्य था कि इक्केके पहियेसे जो अँगूठेमें घिस्सट लग गई थी, उसका कुछ खयाल ही नहीं रहा,—जब हाथका खून धोने लगा तब उसपर निगाह पड़ी! झटपट लौटकर जो कुछ करना चाहिए, सब किया;—घर लौटनेका उपाय होता तो मैं जरूर चला ही जाता, हरगिज न रहता; पर कोई उपाय न कर सका। कल रातको बुखार-सा मालूम होने लगा,—फिर तो समझ गया कि यह कौन-सा बुखार है। बड़ी कठिनाईसे,–बड़ी बड़ी कोशिशोंसे एक आदमीके मारफत तुम दोनोंको दो चिट्ठी लिखके भिजवा सका।

अचला आँसुओंसे रुँधे हुए व्याकुल कण्ठसे कहने लगी—पर अभी तो उपाय है,—अपनी डोलीमें बिठाकर तुम्हें अभी ले चलूँगी। अब एक मिनट भी यहाँ न रहने दूँगी।

"और तुम?"

"मैं पैदल जाऊँगी,—मेरी फिकर तुम जरा भी न करने पाओगे।"

"पैदल जाओगी? इतना रास्ता?"

"तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, अब तुम इसमें बाधा न दो।" कहते कहते अचला रो पड़ी।

सुरेश क्षण-भर मौन रहा, फिर एक गहरी साँस लेकर धीरे धीरे बोला—अच्छा, सो ही सही। पर, शायद, अब उसकी जरूरत नहीं है।

अचलाने बाहर जाकर देखा कि नीमके नीचे बैठा रघुवीर चना चबा रहा है; उससे कहा—रघुवीर, बाबू सख्त बीमार हैं, उन्हें इसी वक्त ले चलना होगा।

डोलीवालोंसे कहो, जितना रुपया वे चाहेंगे उससे भी ज्यादा मिल जायँगे, मगर अब एक मिनटकी भी देर न होनी चाहिए।

मालिकिनके व्याकुल कंठस्वरसे रघुवीर चौंककर उठ खड़ा हुआ, बोला—लेकिन, वे तो दो जनोंको ले नहीं जा सकेंगे बहूजी !

"नहीं नहीं, दो जने नहीं, एकहीको ले जाना है। मैं पैदल जाऊँगी,—लेकिन अब एक मिनटकी भी देर करनेसे काम न चलेगा रघुवीर, तुम जल्दी जाओ,—कहाँ है वे ?"

रघुवीरने कहा—किरायेके रुपये लेकर वे दूकानपर गये हैं जलपान करने, अभी बुलाये लाता हूँ मैं जाकर।—कहकर वह चनोंको धोतीके छोरमें बाँधता हुआ दौड़ा चला गया।

अचला वापस आकर सुरेशके सिरहाने बैठ गई, और हाथसे उसके माथेकी गरमी देखकर मारे आशंकाके विह्वल हो उठी। मुनियाकी अम्मा मिट्टीके तेलकी ढिबरी जलाकर पास ही जमीनपर रख गई थी, उसके जबरदस्त धुएँसे सारा स्थान कलुषित हुआ जा रहा था, उसे हटाते हुए एक शीशीपर उसकी निगाह पड़ गई, बोली—यह क्या तुम्हारी दवा है ?

सुरेशने कहा—हाँ, मेरी ही है। कल खुद ही बनाई थी, मगर पी नहीं सका। दो—

इस बातने अचलाको बड़ी भारी चोट पहुँचाई, परन्तु नहीं पीनेका कारण पूछकर ज्यादा बात बढ़ानेकी उसे इच्छा नहीं हुई। दवा देकर वह फिर सिरहानेके पास जा बैठी। बहुत देरसे सुरेश चुप था, पर वह चुपचाप कितनी बड़ी वेदना सह रहा है, इस बातका अनुभव करके अचलाकी छाती फटने लगी।

देर हो रही है, और रघुवीरका अभी तक पता नहीं। बीच बीचमें वह दबे-पाँव बाहर गई और दरवाजेसे झाँककर अँधेरेमें जितनी दूर तक देखा जा सकता देखनेकी कोशिश करने लगी; मगर कहीं भी किसीका पता नहीं। और साथ ही मारे डरके वह व्याकुल भी होने लगी कि कहीं उसकी यह उत्कण्ठा सुरेशको मालूम न हो जाय।

रात बढ़ने लगी। खूँटीके पास बैठी हुई मुनियाकी मा खुर्राटे भरने लगी। इतनेमें भूखा और थका हुआ रघुवीर भग्नदूतकी भाँति उपस्थित होकर उदास चेहरेसे बोला—डोलीवाले तो डोली लेकर बहुत देरके चले गये हैं, कहीं भी उनका पता नहीं लगा !

अचला सब कुछ भूलकर विकृत कण्ठसे बार बार पूछने लगी—सब चले गये ! कहाँ किस रास्तेसे गये ? किस लिए गये, क्यों चले गये ? अपना सर्वस्व देनेपर भी क्या मुझे एक डोली कहीं नहीं मिल सकती ?

रघुवीर सिर झुकाये सन्न खड़ा रहा। इस भयंकर विपत्तिके समय उससे कितनी भारी गलती हो गई, इस बातको वह महसूस कर रहा था; इसीसे, जी-जानसे कोशिश करनेके बाद आखिर जब कोई चारा नहीं दिखाई दिया, तभी लौटा था वह।

मगर, और भी एक आदमी जो उसीकी तरह चुपचाप स्थिर होकर बिस्तरपर पड़ा था उसपर इस चंचलताका लेशमात्र भी असर न हुआ। रघुवीरके चले जानेपर उसने धीरेसे कहा—चंचल होनेसे क्या होगा अचला, वे मिल भी जाते तो भी कोई लाभ न होता। यही ठीक है, मेरे लिए यही अच्छा है।

अचला कुछ बोली नहीं, सिर्फ इस अनन्त पथके यात्रीके उत्तप्त ललाटपर अपना दाहना हाथ रखकर पत्थरकी मूर्तिकी तरह स्थिर बैठी रही।

चारों तरफ जनहीन पुरी मृत्युकी भाँति निर्वाक् है, बाहर गभीर रात्रि गभीरतर होती जा रही है, आँखोंके आगे काला आकाश गाढ़ा काला होता जा रहा है,—उधर देख देख कर उसे बार बार यही खयाल होने लगा कि इसकी क्या जरूरत थी ? इसकी क्या जरूरत थी ?

यह जो उसके जीवन-कुरुक्षेत्रमें इतना बड़ा एक गंदा संग्राम चल रहा है, संसारमें इसकी क्या आवश्यकता थी ? संसारकी सारी ज्वाला, सारी हीनता, सारे स्वार्थोंको मिटाकर क्या वह इस रातकी तरह आज ही खतम हो जायगा ? उसके बाद क्या उसका सम्पूर्ण जीवन कुरुक्षेत्रकी तरह सिर्फ श्मशान होकर युग-युगान्तर तक पड़ा रहेगा ? यहाँ क्या चिताका दाह-चिह्न तक किसी दिन न मिटेगा ? संसारमें यह भी क्या आवश्यकतामें शामिल है ?

मगर, यह कुरुक्षेत्र शुरू क्यों हुआ ? किसने शुरू किया ? यह आदमी जो आज अपना सारा ऐश्वर्य, सारी सम्पदा, सम्पूर्ण आत्मीय-स्वजनोंसे बिछुड़कर इस तरह निरुपाय होकर मरने बैठा है, क्या इसी अकेलेने इतना बड़ा विप्लव खड़ा किया है ? और क्या किसीके मनमें छुपा हुआ कोई लोभ,—कोई मोह नहीं था ? कहीं भी कोई पाप क्या और किसीने नहीं किया ?

परन्तु, सहसा मानो इस चिन्ता-धाराको जबरदस्ती दूर फेंककर वह हिल-डुलकर ठीकसे बैठ गई। मानो किसीने दोनों हाथोंसे दबोचकर उसका कंठ रोक दिया इसी समय सुरेशने भी पानी माँगा। अचलाने झुककर उसके मुँहमें पानी दिया

और वह फिर स्थिर होकर बैठ गई। उसे न श्रान्ति थी, न क्लान्ति,—आँखोंसे निद्राका आभास मानो दूर हो गया था। अपनी उन्हीं सूखी आँखोंको आकाशकी तरफ उठाकर वह एकटक देखती रही। बहुत दिन पहले बड़े बड़े प्रयत्नोंसे जिस महाभारतको उसने समाप्त किया था, आज उसीका अन्तिम सर्वनाश मानो मनके पर्देपर छायाचित्रोंकी तरह प्रवाहित होने लगा : मानो वहाँ चारों तरफ खून ही खून बह रहा हो, बहुतसे अनजान आदमी आपसमें मार-काट करके मर रहे हों, सैकड़ों-हजारों चिताएँ जल और बुझ रही हों, और उनके धुएँसे सम्पूर्ण स्वर्ग-मर्त्य बिलकुल आच्छन्न और एकाकार हो गया हो।

कुछ देरके लिए सुरेशको शायद तन्द्रा आ गई थी,—वह चुपचाप पड़ा था। परन्तु ऐसे कितनी देर बीत गई, कैसे बाहरका समय बीतने लगा, कैसे रात्रि प्रभातकी ओर अग्रसर हो रही है,—इधर अचलाका कुछ भी खयाल न था। उसकी मिची हुई आँखोंके किनारेसे आँसू गिर रहे थे और स्खलित हाथ सुरेशके तकियेपर पड़े थे। वह एकाग्र मनसे कह रही थी—हे ईश्वर! मैंने बहुत दुःख उठाया है, बहुत वेदना झेली है, आज मेरे सब दुःख और सब वेदनाके बदले इन्हें तुम क्षमा करके गोदमें उठा लो। मेरे मा नहीं, बाप नहीं, भाई नहीं, पति नहीं,—इतनी बड़ी लज्जा लेकर कहीं भी मेरे लिए खड़े होने तककी जगह नहीं। मैंने कितना सहा है सो तो तुम जानते ही हो, अब मुझे जीने मत दो, प्रभो! मुझे भी तुम अपने पास बुला लो।

ये बातें उसने कितनी तरहसे और कैसे कैसे दुहराई थीं, इसकी कोई सीमा नहीं;—और आँसुओंके साथ कितनी झर गई थीं, उसकी भी कोई हद नहीं।

"बहूजी?"

अभी अभी सबेरा हुआ था; अचलाने चौंककर देखा कि रघुवीर किसीके प्रवेश करनेकी प्रतीक्षामें सदर दरवाजा खोलके खड़ा है।

"क्या है रघुवीर?" कहते ही जिसके साथ अचलाकी चार आँखें हो गईं वह था महिम!

एक बार वह काँप उठी, और दूसरे ही क्षण उसकी दृष्टि नीची हो गई। दरवाजेके पास एक क्षणके लिए महिमके भी पाँव नहीं उठे; यहाँ इस तरहसे अचलाके साथ उसकी भेंट हो जायगी, इस बातकी उसे आशा नहीं थी। परन्तु, दूसरे ही क्षण वह धीरे धीरे पास आकर खड़ा हो गया और अत्यन्त मृदुकंठसे उसने पूछा—सुरेशकी अब कैसी तबीयत है?

अचलाने मुँह नहीं उठाया, न बात कही, सिर्फ सिर हिलाकर शायद यही जताना चाहा कि उसे कुछ भी नहीं मालूम।

मिनट-भर स्थिर रहकर महिमने सुरेशके माथेपर हाथ रखा तो सुरेशने आँखें खोल दीं। उन ज्योति-हीन सुर्ख आखोंकी तरफ देखकर महिमके गलेसे सहसा कोई बात ही नहीं निकली। थोड़ी देर बाद उसने कहा—कैसी तबीयत है सुरेश?

"अच्छी नहीं,—अब चल दिया। तुम आओगे, यह मैं जानता था,—मेरे सामने आकर बैठ जाओ।"

महिम उठकर सुरेशके पाँयते बैठ गया। बोला—डेहरीमें डाक्टर है, मेरे इक्केमें किसी तरह—

सुरेशने सिर हिलाते हुए कहा—नहीं, अब खींचातानी मत करो—मजूरी भी हाथ न लगेगी। मुझे quietly (=शान्तिसे) जाने दो।

"लेकिन अभी तक तो—"

"हाँ, अभी तक होश है, पर बीच-बीचमें गाफिल हो जाता हूँ। अपने जीवनको मैं गरीब दुखियोंके काममें न लगा सका, लेकिन सम्पत्ति मेरी उन्हींके काममें लगनी चाहिए, महिम। इसीसे तकलीफ देकर तुम्हें इतनी दूर खींच लाया हूँ, नहीं तो मरते समय क्षमा माँगकर काव्य रचनेकी प्रवृत्ति मुझमें नहीं थी।"

महिम चुप रहा। सुरेश कहने लगा—उन बातोंपर मेरा विश्वास भी नहीं है, और न मुझे पसन्द ही है। एक दिनकी क्षमापर मुझे कोई लोभ भी नहीं है। हाँ, सुनो, मेरा एक वसीयतनामा है। अचलाको मैंने कुछ भी नहीं दिया,—उसे और भी अपमानित करनेको मेरे हाथ नहीं उठे। पर हाँ, जरूरत समझो तो थोड़ा बहुत दे देना।

महिम व्याकुल होकर बोल उठा—अब क्यों मुझे इसमें सान रहे हो सुरेश?

सुरेशने कहा—ठीक साननेके लिए ही तुम्हें साना नहीं जा सकता महिम! जिसके लोभ नहीं, जिसके न्याय-अन्यायका विचार है—सहसा ऊपरको दृष्टि उठाकर बोला—रात-भरसे तुम जगी बैठी हो अचला,—जाओ, मुँह-हाथ धोओ जाकर। मुनियाकी मा सब बता देगी,—जाओ।

अचलाके उठ जानेपर सुरेश कहने लगा—सिर्फ एक बातके लिए मुझे बड़ा-भारी दुःख होता है। अचला तुम्हें कितना प्यार करती थी, सो मैंने भी नहीं समझा, तुमने भी नहीं समझा और वह खुद भी नहीं समझ सकी। उसका प्रेम तुम्हारी गरीबीके साथ ऐसी उलझनमें पड़ गया कि,—खैर जाने दो। ऐसी

सुन्दर चीजको मैंने मिट्टीमें मिला दिया,—न तो खुद पा सका, न दूसरेको पाने दिया। लेकिन, क्या किया जाय?—बुआजीको जरा देखना-भालना,—उन्हें बड़ा-भारी शोक होगा।

बुढ़िया मुनियाकी मा दवाकी शीशी लेकर सामने आ खड़ी हुई तो वह झुँझलाहटके साथ बोल उठा—नहीं नहीं, अब दवा-अवा नहीं चाहिए। जरा पानी दो।—मैंने एक नाटक लिखना शुरू किया था महिम, मेरे ड्रायरमें है,—पढ़ सको तो पढ़ना।

महिमसे उसके चेहरेकी तरफ देखा नहीं जा रहा था, वह नीचेको निगाह किये सब सुन रहा था। अब आँख उठाकर उसके कुछ कहनेकी कोशिश करते ही सुरेशने रोकते हुए कहा—अब नहीं महिम, जरा सो जाऊँ। खाने-पीनेका सब इन्तजाम मौजूद है, मगर वह तो तुम लोगोंको अच्छा नहीं लगेगा—और उसने आँखें मींच लीं।

महिम क्षण-भर चुप रहकर आहिस्तेसे बोला—मेरा एक अन्तिम अनुरोध तुम रखोगे सुरेश?

"क्या?"

"तुमने भगवानकी बात कभी नहीं सोची, उनकी बात—"

"मुझे अच्छी नहीं लगती।" कहकर सुरेश मुँह विकृत करके करवट लेकर सो गया। महिम जी-जानसे अपने अदम्य दीर्घ निःश्वासको रोककर चुप हो गया।

४३

राम बाबू घर नहीं थे। दूसरे दिन बक्सरसे लौटकर जब उन्होंने महिमकी चिट्ठी पढ़ी तो मझौली रवाना होनेमें एक क्षणकी भी देर नहीं की। रास्ते-भर घोड़ेको निर्दयता-पूर्वक दौड़ाकर अधमरा करके जब मझौली पहुँचे, तब दिन छुप रहा था। पुलिसका दारोगा समझकर एक दूकानदारने स्वयं उन्हें रास्ता बतलाकर नन्दू पाँड़ेके मकानपर पहुँचा दिया, और जब वे इक्केसे उतरे तो उसने घोड़ेकी लगाम थाम ली। दूकानदारसे उन्हें मालूम हो गया कि अचला भी आई है। सदर दरवाजा खुला था। घरके भीतर पहुँचते ही वे समझ गये कि मामला खतम हो गया। दो घंटे हुए, सुरेशकी मृत्यु हो गई है। खाटपर नीचेसे ऊपर तक ढकी हुई उसकी लाश पड़ी है, और पास ही पाँयतेकी तरफ अचला चुपचाप बैठी है।

अकस्मात् इस दृश्यको वृद्ध राम बाबूसे देखा न गया—अरी अम्मा!—कहकर उच्छ्वासित शोकसे वे रो पड़े। अचलाने एक बार मुँह उठाकर देखा, और फिर नीचेको सिर झुकाये वह चुपचाप बैठी रही। राम बाबूका आर्त कण्ठस्वर सिर्फ उसके कानोंमें गया, पर भीतर नहीं पहुँचा।

महिम घरके भीतर लकड़ियाँ तलाश कर रहा था, रोनेकी आवाज सुनकर बाहर निकल आया। बोला—सुरेश अभी कुछ देर हुई जाता रहा, राम बाबू! आप आ गये, अच्छा ही हुआ। नहीं तो अकेले बड़ी दिक्कत उठानी पड़ती।

राम बाबू चुपचाप आँखें पोंछने लगे। वे क्या करें, क्या कहें, कैसे इस लड़कीके आँखोंके सामने इस हृदयभेदी काममें सहायता करनेके लिए आगे बढ़ें,—उनकी कुछ समझमें नहीं आया।

महिमने कहा—नदी ज्यादा दूर नहीं है, रघुवीर कुछ लकड़ियाँ ले गया है, और भी थोड़ी-सी लकड़ी मिल गई है,—उसे भेजकर हम तीनों जने मिलके अरथी ले चलेंगे। और क्या उपाय है? गाँवमें आदमी ही नहीं हैं,—और होते भी, तो कोई बंगाली मुरदेको छूता नहीं।

राम बाबू इस बातको जानते थे। अचलासे छिपाकर उन्होंने चुपकेसे पूछा—हम दो जने, और तीसरा कौन है?

महिमने कहा—रघुवीर भी शायद मदद कर सकता है।

सुनकर राम बाबू चंचल हो उठे, बोले—नहीं नहीं, ऐसा हरगिज नहीं हो सकता। ब्राह्मणकी अरथी और किसीको मैं छूने नहीं दे सकता। नदी जब कि ज्यादा दूर नहीं है, तो हम ही दोनों जनोंको, जैसे बने, ले जाना होगा।

"अच्छी बात है, सो ही सही" कहकर महिम फिर भीतर जाकर लकड़ी तलाश करने लगा; और राम बाबू वहीं बरामदेके एक किनारे मुँह फेरकर खूँटीके सहारे चुपचाप बैठे रहे।

उनकी काफी उमर हो चुकी है। अपने लम्बे जीवनमें उन्होंने बहुत-सी मौतें देखी हैं, बहुतसे गंभीर शोकोंमेंसे उन्हें धीरे धीरे चलना पड़ा है। दुःसह दुःखके जो स्वर एक एक करके उनकी हृदय-वीणामें बँध चुके हैं, आजकी इस घटनाने उस तारपर आघात करके मानो उसे बेसुरा बजा दिया। एक दिन यह सुरमा ही 'ताऊजी' कहकर उनकी छातीपर पछाड़ खाकर गिर पड़ी थी, उस चित्रको वे भूले नहीं हैं। आज भी उनका पितृ-स्नेह मानो उसी वस्तुके लोभसे भीतर ही

भीतर घुमड़ने लगा। उसे वे कैसे सान्त्वना दें, उन्हें नहीं मालूम। उसे प्रबोध देने लायक संसारमें कहीं कुछ है, सो भी उन्हें नहीं मालूम। फिर भी उनका शोकातुर मन मानो बार बार यही चाहने लगा कि एक बार लड़कीको छातीसे लगाकर कहे, कि डर क्या है बिटिया ! अभी तो मैं जिन्दा हूँ !

परन्तु वह स्वर बजा कहाँ ! उनकी उस तृष्णाको मिटानेके लिए कोई भी तो एक कदम आगे बढ़कर नहीं आया ! सुरमा तो उसी तरह चुपचाप बैठी रही, उसने भी तो उसी तरह दूरतम अनात्मीयताका व्यवधान डालकर अपनेको पृथक् बनाये रखा !

दुःखके दिनोंमें, विपत्तिके दिनोंमें, इन लोगोंकी अनेक दुर्जेय वेदना और नीरव मार्मिक पीड़ाके पाससे उन्हें चलना पड़ा है; और प्रच्छन्न रहस्यके इंगितने बीच-बीचमें उन्हें कोंचा भी है,—परन्तु किसी दिन उन्होंने अपनेको आहत नहीं होने दिया। सम्पूर्ण संशयको स्नेहके आवरणसे ढककर बाहरके आकाशको उन्होंने निर्मल मेघ-मुक्त कर रखा था; परन्तु आज, सद्य-विधवाका यह अत्यन्त अपरिचित निष्ठुर धैर्य उनके इतने दिनोंके छिपाये हुए स्नेहको चीर कर उसे कलुषताके वाष्पसे भर देने लगा।

सूर्य अस्त हो गया। महिमने उधरका काम एक तरहसे खतम करके पास आकर कहा—राम बाबू, अब तो ले चलना चाहिए। फिर अचलाकी तरफ देखकर कहा—तुम मुनियाकी माके पास जाकर बैठो, हम लोगोंको लौटनेमें शायद ज्यादा देर न लगेगी।

अचलाने कुछ भी नहीं कहा। राम बाबू किसी कदर अपनेको सम्हालकर खड़े हो गये और उन्होंने सिर हिलाया। अचलाके आनत मुँहकी तरफ देखकर उन्होंने गलेको साफ करते हुए रुँधे हुए स्वरमें कहा—बिटिया, कहते हुए तो मेरी छाती फटी जा रही है, लेकिन स्त्रीका अन्तिम कर्तव्य तो तुम्हींको करना होगा। तुम्हींको तो मुखाग्नि—

कहते कहते वे फूट-फटकर रोने लगे।

अचला अपने सूखे मुँह और उससे भी ज्यादा सूखी आँखोंसे वृद्धकी तरफ क्षण-भर स्थिर होकर देखती रही, फिर शान्त मृदु कंठसे बोली—मुखाग्निकी जरूरत हो, तो मैं दे सकती हूँ। हिन्दूधर्ममें इसका अगर वास्तविक कोई फल हो तो, नहीं तो फिजूलमें मैं नहीं देना चाहती। मैं इनकी स्त्री नहीं हूँ।

राम बाबूपर एकाएक वज्र-सा टूट पड़ा, उन्होंने पलक-हीन नेत्रोंसे देखते हुए अन्तमें आहिस्तेसे पूछा—तुम सुरेशकी स्त्री नहीं हो ?

अचलाने पहलेकी तरह अविचलित स्वरमें कहा—वे मेरे पति नहीं ।

पलक मारते ही राम बाबूको समस्त घटनाएँ याद आ गईं । उनके घर आश्रय लेनेसे लेकर उस दिनकी उस मूर्च्छा तककी सारी बातें बिजलीकी तरह उनके मनमें बार बार चक्कर काटने लगीं और फिर उनके मनमें कहीं संशयकी छाया तक बाकी न रही । यह कौन है, किसकी लड़की है, क्या जात है इसकी,—हो सकता है कि वैश्य हो,—उन्होंने इसे बिटिया कहा है, मा कहा है, इसका छुआ खाया है,—यहाँ तक कि ठाकुरजी तकको नैवेद्य चढ़ाया है । इन सब बातोंकी याद करके मारे घृणाके मानों उनका सारा शरीर क्लेदसे भर गया, और जिस स्नेहने उन्हें इतने दिनोंसे श्रद्धा, माधुर्य और करुणासे अभिषिक्त कर रखा था, मरुभूमिपर जल-कणकी भाँति वह कहाँ गायब हो गया, उसका आभास तक न रहा ।

परन्तु सिर्फ वे ही नहीं, महिम भी स्तम्भित हुआ खड़ा था; उसने चकित होकर कहा—जब कि यह होनेका ही नहीं, तो चलिए, हम लोग ले चलें ।

“ चलिए । ” कहकर वे स्वप्न-चालितकी भाँति आगे बढ़े । उनकी अपनी दुर्घटनाके आगे और सब दुर्घटनाएँ छायाकी तरह बिलकुल म्लान हो गईं,—उनके दोनों कानोंमें सिर्फ एक आवाज बज रही थीः जाति गई, धर्म गया, यह मानव-जन्म ही व्यर्थ हो गया, वृथा चला गया ।

सुरेशकी अन्त्येष्टि क्रिया जैसे तैसे समाप्त करनेमें ज्यादा समय नहीं लगा । शुरूसे अन्त तक राम बाबूने एक भी शब्द नहीं कहा और लौटनेके बाद सीधे इक्का तैयार करनेको हुक्म दे दिया ।

महिमने पूछा—आप क्या अभी तुरत जा रहे हैं ?

राम बाबूने कहा—हाँ । मुझे सबेरेहीकी गाड़ीसे काशी जाना होना, अभीसे न जानेसे गाड़ी नहीं मिलेगी ।

उनके मनका भाव महिमसे छिपा नहीं था; और प्रायश्चित्तके लिए ही वे काशी दौड़े जा रहे हैं यह भी वह समझ गया । इसीसे अत्यन्त संकोचके साथ उसने कहा—मैं परदेसी आदमी हूँ, इधरका मुझे कुछ मालूम नहीं । दया करके इनके जानेकी अगर कोई—

अपनी बात वह खतम भी न कर पाया कि अचलाको साथ ले चलनेके प्रस्तावसे राम बाबू आगकी तरह जल उठे—दया ? आप क्या पागल हो गये हैं महिम बाबू ?

महिमने उनकी बातका प्रतिवाद नहीं किया। भय और विनयके साथ उसने कहा—शायद दो-तीन दिनसे कुछ खाया-पीया भी न होगा। इस मृत्युपुरीमें ऐसी भयानक असहाय अवस्थामें छोड़कर चले जाना—

इस बार भी उसे पूरी बात कहनेका मौका नहीं मिला। आचारनिष्ठ ब्राह्मणका जन्मगत संस्कार चोट खाकर प्रतिहिंसासे क्रूर हो उठा था, इसीसे वे तीव्र श्लेषके साथ कह उठे—अच्छा! आप भी तो ब्राह्मसमाजी हैं, मैं भूल गया था; लेकिन महाशयजी, आप कितने ही बड़े ब्रह्मज्ञानी क्यों न हों, मेरे सर्वनाशका अगर आप अन्दाजा लगा सकते, तो इस कुलटाके विषयमें दया-मायाकी बात जबानपर भी न लाते। इतना कहकर वे इक्केपर बैठ गये, और बोले—खैर, ब्रह्मज्ञानकी अब जरूरत नहीं,—जान बचानी हो तो आ जाइए, जगह हो जायगी।

महिमने चुपकेसे नमस्कार किया। न तो सर्वनाशके परिणामपर बहस की, और न अपनी जान बचानेके लिए उनका निमंत्रण ही स्वीकार किया। उनके चले जानेपर उसने छाती फाड़के एक गहरी साँस ली और रह गया।

सर्वनाशका अन्दाज! ठीक है!

भीतर बैठी हुई अचला भी इक्का जानेके शब्दसे यह जान गई। और, क्यों वे भीतर नहीं आये,—एक शब्द भी नहीं कह गये, यह भी अत्यन्त स्पष्ट था।

अब तक सुरेशकी अनिवार्य मृत्युने जिस भयानक दुश्चिन्ताका कारण बनकर एक अन्तराल रच रखा था, वह भी नहीं रहा। अब महिम अत्यन्त सामने,—अत्यन्त पास आकर खड़ा होगा, परन्तु अब उसके मनने किसी भी तरह हूँकारा नहीं भरना चाहा। अपने लिए लज्जा अनुभव करनेमें भी मानो वह क्लान्तिसे भर उठी।

महिमने आकर देखा कि वह मिट्टीके तेलकी ढिबरी सामने रखे चुपचाप बैठी है। बोला—अब तुम क्या करोगी?

"मैं?" कहकर अचला उसके मुँहकी तरफ देखती हुई न जाने क्या क्या सोचने लगी। अन्तमें बोली—मेरी तो कुछ समझमें नहीं आ रहा है। तुम जो हुक्म दोगे, सो करूँगी।

इस अप्रत्याशित वाक्य और व्यवहारसे महिम विस्मित हो गया, शंकित हो गया। इस तरह वह एक बार भी नहीं चितई। यह दृष्टि जैसी सीधी थी, वैसी ही स्वच्छ। इसके भीतरसे उसके हृदयका बहुत कुछ मानो स्पष्ट दिखाई दे गया। वहाँ भय नहीं, चिन्ता नहीं, कल्पना नहीं,—जहाँ तक दृष्टि जाती है, भविष्यका

आकाश धू-धू कर रहा है। उसका कोई रंग नहीं, कोई मूर्ति नहीं, कोई प्रकृति नहीं,—बिलकुल निर्विकार है, बिलकुल शून्य है !

अत्याचार-पीड़ित, अपमानित, क्षत-विक्षत नारी-हृदयके इस चरम वैराग्यको वह पहचान नहीं सका। एकके अभावने दूसरे हृदयको ऐसा निःस्व सर्वशून्य कर दिया है, ऐसी कल्पना करके उसका सम्पूर्ण मन कड़ुवाहटसे भर गया। परन्तु अपने दुःखसे संसारके दुःखका भार उसने कभी बढ़ाना नहीं चाहा, और यही कारण है कि अपनेको अपनेमें थाम रखना उसका हमेशाका अभ्यास रहा है। इस डरसे कि कहीं उसकी यह हृदय-भरी तिक्तता उसके कंठस्वरसे बाहर न छलक पड़े वह दूसरी ओर दृष्टि करके कुछ देर मौन रहा; उसके बाद स्वाभाविक स्वरमें बोला—मैं क्यों तुम्हें हुक्म दूँगा अचला, और क्यों तुम भी उसे माननेको मजबूर होओगी ?

"पर तुम्हारे सिवा और तो कोई है ही नहीं,—और कोई तो मेरे साथ बात भी नहीं करेगा !" इतना कहकर अचला उसी तरह एकटक महिमके मुँहकी तरफ ताकती रह गई।

महिमने कहा—क्या तुम यही मुझसे उम्मीद करती हो ?

शायद, यह प्रश्न अचलाके कानों तक नहीं पहुँचा। वह अपनी बातके सिलसिलेमें अपने आप कहने लगी—तुम्हें खो देनेके बादसे भगवानसे मैं कितनी प्रार्थना कर रही हूँ कि हे ईश्वर, अब मुझसे नहीं सहा जाता,—तुम मेरी मिट्टी समेट लो। पर उन्होंने भी नहीं सुना, तुम भी नहीं सुनना चाहते ! अब मैं क्या करूँ ?

महिम कुछ जवाब न देकर बाहर चला गया; परन्तु इस निराशापूर्ण कण्ठस्वरने, इस निरभिमान निःसंकोच निर्लज्ज वाक्यने फिर उसके चित्तको दुबिधामें डाल दिया। इस स्वरको कानोंमें लिए हुए वह बाहरके आँगनमें जाकर टहलता हुआ यही सोचने लगा कि अब क्या किया जाय ? अपने बोझसे वह आप ही दबा जा रहा है, उसपर, उसीके सिरपर सुरेश जो अपनी सुकृति और दुष्कृतिका भारी बोझ लाद कर अभी अभी दुनियासे कूच कर गया, उसे वह कहाँ जाकर उतारे ?

रघुवीर बड़ी मेहनत करनेके बाद खबर ले आया कि डिहरीके रास्तेमें करीब तीन कोसकी दूरीपर कल सबेरे एक हाट लगेगी, कोशिश करनेसे वहाँ बैलगाड़ी मिल सकती है।

महिमको अत्यन्त व्यग्र होते देख उसने संकोचके साथ कहा—वह खुद तो

भी जा सकता है, पर इस गाँवमें शायद कोई डरके मारे आनेको तैयार न होगा। गर बहूजी वहाँ तक जरा—

अचलाने सुनते ही कहा, " चलो। " और उसी वक्त उठके खड़ी हो गई उसके पैर लड़खड़ाने लगे,—गिरने ही वाली थी कि महिमके हाथ बढ़ाते ही तने उसे जोरसे पकड़कर अपनेको सम्हाल लिया। परन्तु लज्जा और विरक्तिके र महिमका सारा शरीर संकुचित होने लगा, अपने हाथको खींच लेनेकी कोशिश ते हुए उसने कहा—आज न हो तो रहने दो।

" क्यों ? अभी तो तुमने कहा कि यहाँ रहना ठीक नहीं ! और, डिहरीसे ी मँगवाकर जानेमें भी तो कलका दिन बीत जायगा ? "

" लेकिन तुम जो बहुत कमजोर— "

ाने हाथ नहीं छोड़ा था, न अब छोड़ा। सिर्फ सिर हिलाकर कहा—नहीं, ो। अब मैं कमजोर नहीं हूँ, तुम्हारा हाथ पकड़कर जितनी दूर कहो, जा सकूँगी।

" चलो। " कहकर महिम रघुवीरको आगे करके चल दिया। वह मन ही साँस लेता हुआ अपनेसे आप ही हजारों बार पूछने लगा—इसका अन्त हाँ होगा ? यह यात्रा रुकेगी कब और कैसे रुकेगी ?

४४

ोहरीवाले मकानमें पहुँचकर अचलाने उस मोटे लिफाफेको निकालकर हा—यह है उनका वसीयतनामा।

महिमने हाथ पसारकर उसे ले लिया। उसे याद आया कि इसीमें महिमकी ट्ठी है। चिट्ठीमें कौन-सा अचिन्तनीय वर्णन लिखा हुआ है, किस दुर्गम हस्यके मार्गका इशारा दिया हुआ है,—इसी वक्त जान लेनेके लिए उसके मनके ीतर आँधी-सी उठने लगी; परन्तु अपनी उस इच्छाको उसने शान्त मुखसे मन करके लिफाफा जेबमें रख लिया।

अचलाने कहा—तुम क्या आज ही डिहरीसे चले जाओगे ?

" हाँ, यहाँ रहनेमें अब मुझे सुविधा न होगी। "

" मुझे क्या हमेशा यहीं रहना होगा ? "

महिम क्षण-भर मौन रहकर बोला—तुम क्या और कहीं जाना चाहती हो ?

अचलाने कहा—कलसे मैं सिर्फ यही सोच रही हूँ। सुना है, विलायतकी

तरफ मुझ जैसी अभागिनोंके लिए आश्रम हैं ।—वहाँ क्या होता है, मुझे
मालूम, पर इस देशमें क्या वैसा कोई—

और कहते ही कहते उसकी बड़ी बड़ी आँखोंमें आँसू भर आये । आज
पहल उसकी आँखोंमें आँसू दिखाई दिये ।

महिमकी छातीमें करुणाका तीर चुभ गया । मगर उसने धीरेसे उत्तर दिय
मुझे भी नहीं मालूम, पर तलाश कर सकता हूँ ।

"कभी तुम्हें चिट्ठी लिखूँ, तो तुम उसका जवाब नहीं दोगे ?"

जरूरत हो तो दे सकता हूँ । मगर मुझे सामान ठीक करके स्टेशन पहुँ
देर हो जायगी,—मैं चल दिया ।

अचलाने अपने अन्तिम दुःखको आज मन ही मन पतिके चरणोंमें सम
निवेदन करके वहींपर जमीनसे मस्तक छुआकर प्रणाम किया, और उसक
जानेपर दरवाजेके पास चौखट थामे चुपचाप खड़ी रही ।

रास्तेमें जाते जाते महिम सोच रहा था : राम बाबूके घर अब एक क्ष
नहीं टिका जा सकता, और इस शहरमें अन्यत्र भी कहीं एक दिनके लि
टिकना असम्भव है । जैसे भी हो यहाँसे आज उसे चल ही देना होगा ।
सिवा, अपने लिए भी उसे आज ऐसे किसी एकान्त स्थानकी जरूरत है
दो घड़ी स्थिरतासे बैठकर सिर्फ इतना ही जाननेका नहीं कि इस लिप्तमें
है, बल्कि अपने आपपर दृष्टि डालकर जरा विचार करनेका मौका मिल सके

अचलाको तिल तिल करके प्यार करनेका पहला इतिहास आज उसके
अस्पष्ट है । इस लड़कीको केन्द्र करके उसके जीवनके ऊपरसे जो तूफा
गया है वह प्रलयकी तरह असीम है, उसकी कोई उपमा नहीं । और,
सहिष्णुताकी शक्ति भी विधाताने उसे ठीक हिसाबसे नहीं दी । यही वजह
उसका घर जब बाहर और भीतरसे जल उठा तब वह जहाँका तहाँ खड़ा ख
भस्म हो गया,— जरा-सी चिनगारी तक उसने संसारमें न बिखेर पाई । परन्तु
उसकी शक्तिकी पुकार सिर्फ सहनेके लिए ही नहीं हुई,—सामंजस्य करनेके
हुई है । आज एक बार अपने जमा-खर्चका खाता बगैर मिलाये काम न च
—कहीं न कहीं जरा निर्जन एकान्त स्थान आज उसे मिलना ही चाहिए ।

घर पहुँचकर अपनी चीज-वस्त उसने झटपट बाँध ली । पाँच बजेकी गा
सिर्फ घंटे-भरकी देर है । राम बाबूको काशीसे लौटनेमें शायद देर लगेगी;

...मैं वे प्रायश्चित्तके लिए ही गये हैं, और कह गये हैं कि बगैर उसके वे ...न-जल भी न छुयेंगे। इसलिए उनसे भेंट करके विदा होना सम्भव नहीं। इस ...र्तव्यको एक संक्षिप्त पत्रमें पूरा करनेके लिए वह कागज-कलम लेकर बैठा। ...ो एक पंक्ति लिखनेके बाद ही उनके क्रुद्ध मुँहसे निकले हुए उग्र व्यंग-वाक्योंकी ...से याद आ गई; और उसके साथ और एक जनीकी आँसुओंसे अस्पष्ट रुँधे ...ए कण्ठकी कातर प्रार्थना भी उसके कानोंमें गूँज उठी। तन्द्रामें वेदनाकी ...रह अब तक उसने अपने चैतन्यको सम्पूर्णतः जाग्रत भी नहीं कर रखा था, और ...ोने भी नहीं दिया था,—परन्तु राम बाबूके उन वाक्योंने मानो धक्का देकर उसकी मग्नता तोड़ दी।

इस वृद्ध व्यक्तिके साथ उसका परिचय ज्यादा दिनका न था; परन्तु उनकी ...या, उदारता और भद्रता,—उनकी अकपट भक्ति और धर्मनिष्ठाकी बहुत-सी ...तें उसने सुन रखी थीं। उस परिचयने, अब अत्यन्त अकस्मात् ही उसकी बन्द ...आँखोंको मानो एक सम्पूर्ण अपरिदृष्ट दिशाकी ओर आँख पसारकर देखनेके लिए ...शारा किया।

इस वृद्धने अचलाको सुरमा बिटिया और मा कहकर सम्बोधित किया है। ...स लड़कीके सिवा उन्होंने कभी किसी परगोत्रीयके हाथका छुआ अन्न नहीं ...लिया, इस बातको उन्होंने स्वयं ही महिमसे स्नेहके साथ कहा था। इसलिए, ...र्वनाश उनका किधरसे कहाँ पहुँचा है,—इसका अन्दाज लगाना महिमके ...लिए कठिन न था। मगर, इस समय वह यही बात मन ही मन दुहराने लगा ...कि अचलाके अपराधका विचार तो खैर पीछे कर लिया जायगा,—परन्तु इस ...आचारनिष्ठ ब्राह्मणका यह धर्म कैसा सच्चा धर्म है कि जो मामूली एक लड़कीकी ...तारणासे एक क्षणमें धूलमें मिल गया? जो धर्म अत्याचारीके आघातसे अपनेको ...और दूसरेको नहीं बचा सकता, बल्कि अपनेको ही मृत्युसे बचानेके लिए जिसे ...पनी सारी शक्तियाँ दिन-रात उद्यत रखनी पड़ती हैं, वह कैसा धर्म है? और ...नव-जीवनमें उसकी आवश्यकता किस जगह है? जिस धर्मने स्नेहकी मर्यादा ...हीं रखने दी, जिस धर्मने निःसहाय आर्त नारीको मृत्युके मुँहमें डाल जानेमें ...रा भी दुबिधा नहीं की, चोट खाकर जिस धर्मने इतने बड़े स्नेहशील वृद्धको भी ...चंचल और प्रतिहिंसासे ऐसा निष्ठुर कर दिया, वह कैसा धर्म है? जिसने ...अंगीकार किया है वह कौन-सी सत्य वस्तुको ढो रहा है? जो धर्म है वह तो

वर्मकी तरह आघात सहनेके लिए ही है।—यही तो उसकी अन्तिम परीक्षा है।

उसे सहसा खयाल आया—तो क्या उसका इस तरह भाग जाना,—लेकिन इस चिन्ताको भी उसने सहसा दोनों हाथोंसे ढकेलकर अलग कर दिया और कलम उठा ली। उसके बाद जल्दीसे चीज-वस्त सम्हालकर वह स्टेशनकी तरफ चल दिया।

गाड़ी आनेपर जिस डब्बेका दरवाजा खोलकर महिम चढ़नेकी तैयारी करने लगा, उसी दरवाजेसे एक वृद्ध-से सज्जन एक विधवा स्त्रीका हाथ पकड़कर नीचे उतर पड़े।

वृद्धने कहा—अरे, महिम यहाँ कैसे ?

मृणालने महिमके पाँवोंके पास सिर रखकर प्रणाम किया और कहा—भइया, जा कहाँ रहे हो ?

और दोनोंने विस्मित होकर देखा कि महिम गाड़ीमें जा बैठा है।

महिमने कहा—मैं कलकत्ते जा रहा हूँ। 'सुरेश बाबूका मकान' कहनेसे ही इक्केवाला ठीक जगहपर पहुँचा देगा। वहाँ अचला है।

केदार बाबू किंकर्तव्य-विमूढ़की भाँति एकटक देखते हुए खड़े रहे। महिमने कहा—सुरेश तो मर गया। अचलाने मुझसे किसी आश्रमकी बात पूछी थी मृणाल, मगर मैं उसका जवाब नहीं दे सका। तुमसे शायद उसे कोई उत्तर मिल भी सकता है।

मृणालने उसके मुँहकी तरफ एकटक देखते हुए सिर्फ इतना ही कहा—मिलेगा क्यों नहीं भइया ! मगर, मेरी शिक्षा तो सब तुम्हींसे ली हुई है। उसके लिए आश्रम कहो चाहे आश्रय कहो,—कहाँपर है इसकी खबर मैं भाभीको दे सकती हूँ;—मगर वह भी तो तुम्हारा ही दिया हुआ होगा।

महिम कुछ बोला नहीं। शायद अपनेको उसने इस तीक्ष्ण-दृष्टि रमणीसे छिपानेके लिए ही अपना मुँह फेर लिया।

गाड़ीकी सीटी बज उठी; और मृणालने वृद्धका स्खलित दाहना हाथ अपने हाथमें लेते हुए कहा—चलो बापूजी, हम लोग जायँ।

Govt. ... School
AJMER
LIBRARY
Class No.
Accession No. ज्ञा ११
Book No.
Date

समाप्त

राजकीय मॉडल माध्यमिक बालिका विद्यालय
अजमेर
पुस्तकालय

देय तिथि	देय तिथि

नोट—पुस्तक निश्चित तिथि पर न लौटाने पर 5 पैसे प्रतिदिन दण्ड देना होगा।

पुस्तकाध्यक्षा